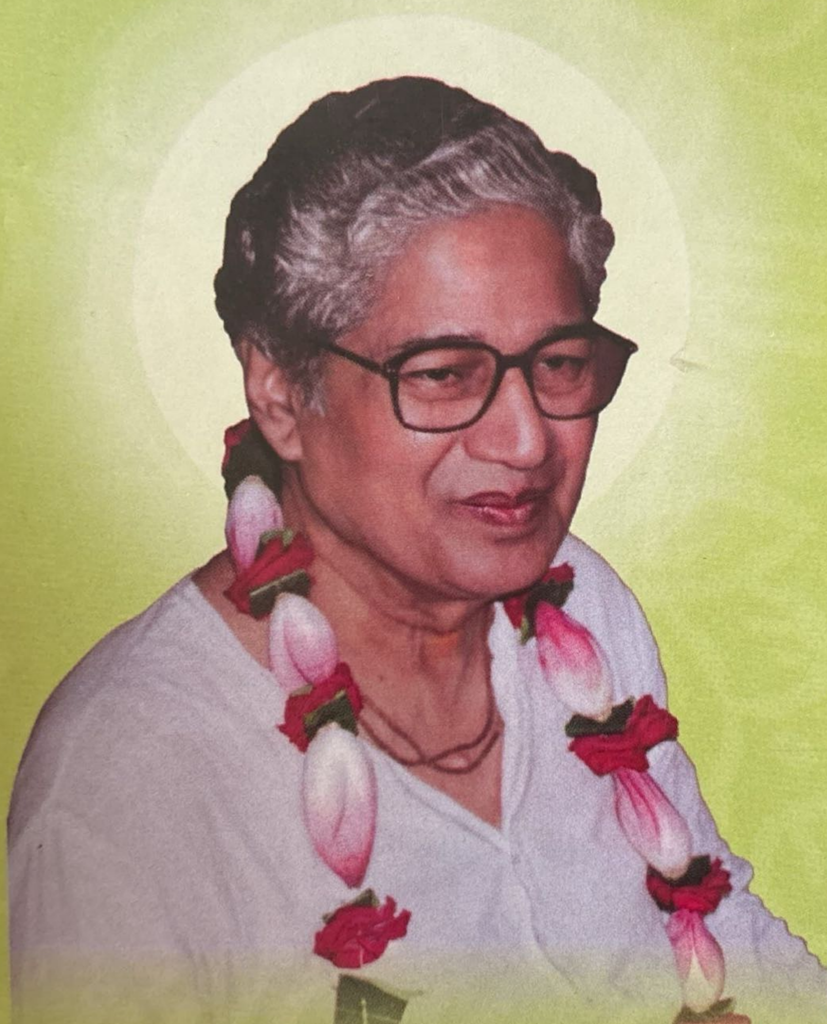
ब्रजानुरागी

श्री घनश्यामजी 'ठाकुरजी'



जीवन चरित्र

दो शब्द

रसवारिधि निमग्न परम पूज्य श्रीमहाराजजी (पूज्य बालकृष्ण दासजी महाराज) के परमप्रिय शिष्य श्रीठाकुरजी (श्रीघनश्याम जी) एक महान विभूति थे। इनका व्यक्तित्व निराला ही था। यह तो वहीं से भक्ति के संस्कारों से सुसज्जित होकर आए थे। ये संत, महापुरुषों के हाथों का खिलौना थे, त्याग-वैराग्य रूपी श्रृंगार से सुशोभित तथा कठोर साधनों से सुगठित थे।

मैंने इनके दर्शन सन् १९४७ में रामकुञ्ज में ठाकुर स्वरूप में किए थे। बाद में ये विरक्त होकर वृन्दावन में श्रीमहाराजजी के चरणों में आ गए। सूक्ष्म रूप से खान-पान, नित्य नियम पूर्वक साढ़े तीन लक्ष (महामन्त्र) नाम जप यही इनकी दिनचर्या थी। एक मैली साफी तथा बनियान में ही रहते। पूज्य महाराजजी तथा पूज्य राधाबाबा इनकी रहनी से तो बहुत प्रसन्न थे किन्तु इनकी वेशभूषा से प्रसन्न नहीं हुए। दोनों महापुरुषों ने इन्हें आज्ञा दी कि सफेद खादी की धोती-कुर्ते में, सादे वेश में रहो। इस आज्ञा का पालन करते हुए ये आजीवन खादी की धोती-कुर्ते में ही रहे एवं नियमित कठोर साधन करते रहे।

पूज्य महाराजजी के निकुञ्ज गमन के पश्चात इन्होंने अपनी रहनी एकदम एकाकी बना ली। कुटिया पर चले जाते अथवा तमाल कुञ्ज में रहते। छः वर्ष इनकी दशा क्या रही, बस-

स्थावर जङ्गम देखे न देखे तार मूर्ति
सर्वत्र हय तार इष्टदेव स्फूर्ति॥

इनके जीवन चरित्र को प्रकाशित करने का आग्रह परिकरजनों द्वारा बहुत दिनों से किया जा रहा था। प्रस्तुत ग्रन्थ से हमारे इसी उद्देश्य की पूर्ति हो रही है। इसमें श्री ठाकुरजी के जीवन का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया गया है। उनके जीवन से सम्बन्धित अनेक प्रसंग पूर्व में गीता वाटिका गोरखपुर से प्रकाशित 'महाभावोदधि श्रीपोद्दारजी', 'वाटिका के पत्र-पुष्प', 'वाटिका वेणु' आदि ग्रन्थों में वर्णित हैं। 'वेणु विनोद कुञ्ज' वृन्दावन से प्रकाशित 'चरित वैभव' एवं 'स्मृति सौरभ' नामक ग्रन्थों में भी इनके जीवन के अनेक प्रसंगों का वर्णन आया है। अनेक प्रसंग ऐसे हैं जो अभी तक प्रकाश में नहीं आए हैं। इन सबको यथासंभव एक स्थान पर उपलब्ध कराने की चेष्टा की गई है।

ग्रन्थ को शीघ्रता से प्रकाशित करने हेतु बाबा मनोहरदास जी का विशेष आग्रह था। उन्होंने ही गीता जयन्ती (मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी) पर ग्रन्थ विमोचन की तिथि निश्चित की थी। इसीबीच वे एकाएक अस्वस्थ हो गए और निकुञ्ज गमन कर गए जिससे उनकी प्रत्यक्ष उपस्थिति का आभाव हो गया है तथापि उनके संकल्पानुसार यह ग्रन्थ नियत तिथि पर आपके समक्ष प्रस्तुत है।

पूज्य महाराजजी के परिकर द्वारा संकलित यह सामग्री पाठकों के अध्यात्मिक उत्थान में सहायक होगी ऐसा विश्वास है। ग्रन्थ रचना में जिन-जिन महानुभावों ने सहयोग प्रदान किया है वे सभी पूज्य महाराजजी के निजजन ही हैं एवं धन्यवाद के पात्र हैं। मंगल कामनाओं सहित

रमा देवी

वेणु विनोद कुञ्ज

वृन्दावन

श्री...जी* के अभिन्न कलेवर

श्री घनश्याम जी श्री..जी के दूसरे अंग के रूप में ही रहे। रात दिन श्री...जी की परिचर्या ही इनका साधन रहा। श्री...जी की रुग्णावस्था में तो इनकी सेवा देखते ही बनती थी। अपने सुख एवं शरीर की इन्होंने तनिक भी परवाह नहीं की। यह सब करते हुए भी इनकी मानसिक साधना दृढ़ रूप से, सजगता से एवं सहज चलती रही। ये अध्यात्म में ऊपर से ऊपर बढ़ते ही गए एवं अपनी स्वरूप स्थिति में स्थित हो गये। ये अपने सिद्ध सखी स्वरूप में प्रतिष्ठित हो गए एवं लीला साम्राज्य का अनुभव प्राप्त करते रहे।

जागतिक प्रपंच इन्हें स्पर्श नहीं कर सका। श्री...जी के निकुंजगमन के पश्चात् सभी उत्तरदायित्व का निर्वाह इन्होंने कुशलता से किया। सबसे मिलते जुलते हुए भी इनका मन सबसे अस्पर्शित ही रहा। विरह की अगाधता और उधर लीला साम्राज्य में इनकी स्थिति, दोनों ही देखते बनती थी। 'रूपरसिक' छाप से लीला सम्बन्धी अनेक पदों की रचना इन्होंने की है। पद बड़े सरस एवं भावभरे हैं।

श्री...जी से तो इन्हें सब कुछ मिला। श्री...जी ने अपनी रसनिधि इन्हें पूर्ण रूप से ही दी। ये उनके अभिन्न कलेवर ही हो गए थे। श्री...जी के लिए इनका रोम-रोम समर्पित था। श्री...जी ने भी इन्हें अपना यन्त्र ही बना लिया था। कोई भी कार्य हो, समस्या हो, इन्हीं के माध्यम से इनसे ही प्रेरणा स्वरूप से करवाते। किसी के प्रश्नों का उत्तर स्वयं न देकर इनसे ही दिलवाते। ये जो भी उत्तर देते वह यथार्थ व लोगों को सन्तोष देने वाला ही होता था।

इनका अहं श्री...जी में विलीन हो गया था।

मनोहरदास

वेणु विनोद कुञ्ज, वृन्दावन

---

* "स्मृति सौरभ" ग्रन्थ में प्रकाशित पूज्य बाबा मनोहरदास जी के लेख से उद्धृत।

* परम पूज्य श्री बालकृष्णदास जी महाराज

सच्चे स्नेही

श्रीघनश्याम जी हमारे छोटे भाई थे परन्तु उन्होंने एक बड़े भाई की भूमिका निभाई। हमारे सारे परिवार को जोड़ा और श्रीधाम वृन्दावन लाकर बसा दिया। हमको पूज्य श्री बालकृष्णदास जी महाराज के श्रीचरणों का आश्रय प्रदानकर जीवन के लिए एक सुदृढ़ आधार दिया। वे हमारे सच्चे हितैषी व सच्चे स्नेही थे। आज हम जो कुछ भी हैं उनके कारण ही हैं हमारा पूरा परिवार सदा उनका ऋणी रहेगा।

श्रीराम शर्मा
रासाचार्य
(राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित)

। नमन् ।

जिनके मन की हर वृत्ति पर,
पूज्य चरण का था अधिकार।
निज सुख वाञ्छा शून्य सरल था,
जीवन का हर इक व्यवहार॥

जिनका गायन अति हि करुण था,
हृदय वेदना का उद्गार।
उन करुणा सागर के चरणों में,
नत हैं हम बारम्बार ॥

जिनके दर्शन सुप्त प्राण में,
करते थे जीवन संचार।
जिनकी श्रीमुख वाणी से,
झरती थी सुधा स्नेह की धार॥

पीड़ा सहकर भी करते जो,
मधुर हास्य रस की बौछार।
उन करुणा सागर के चरणों में,
नत हैं हम बारम्बार ॥

चरण किञ्कर-आनन्द

हे! अकथनीय, हे! अवर्णनीय, हे! हृदय आह्लाद, हे! सुन्दर, आपकी परम रसमयी सुधाधारा में निमज्जित प्लावित रहूँ प्रतिक्षण, बस यही अभिलाषा है।

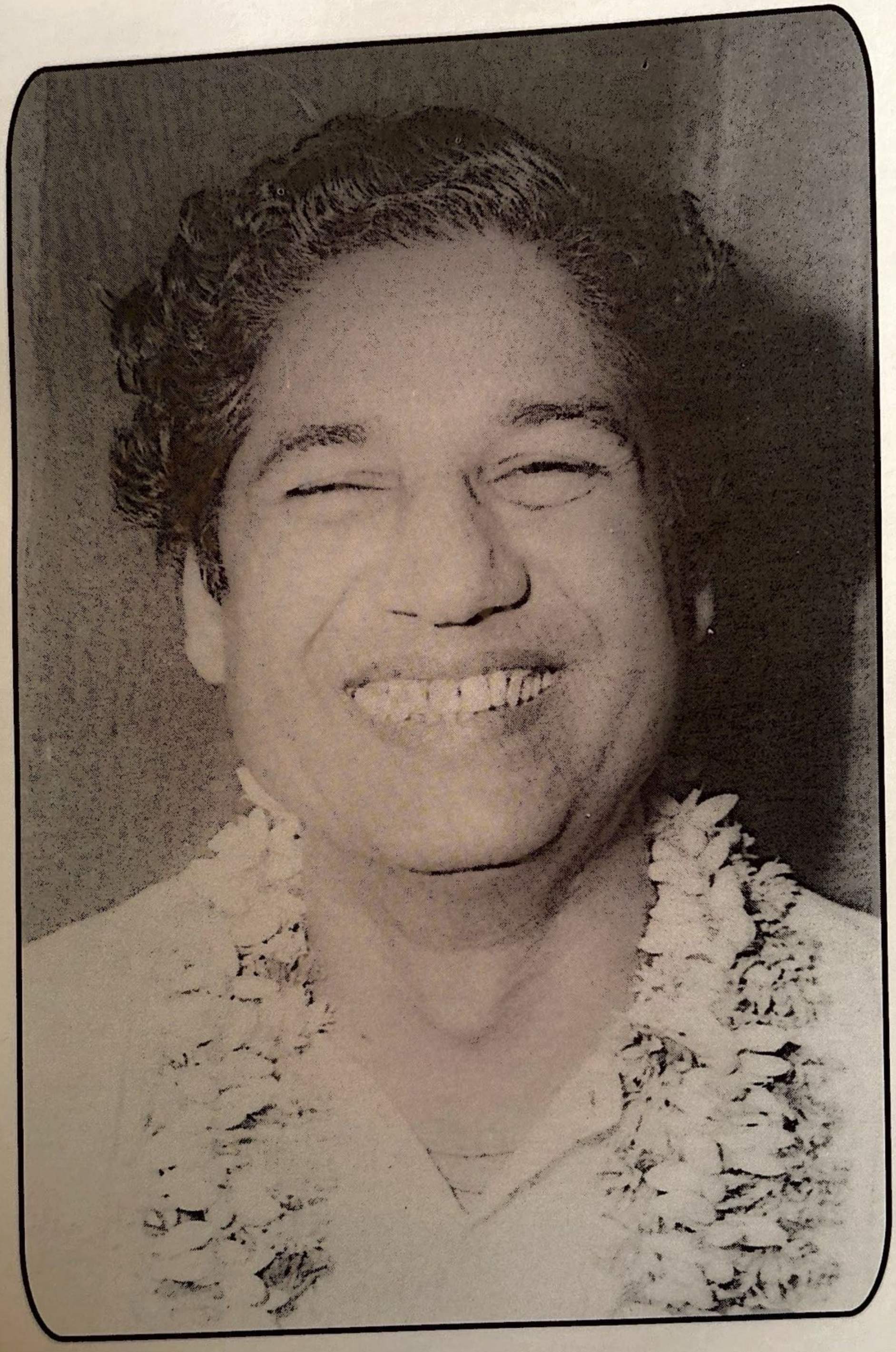
... घनश्याम

अनुक्रमणिका

श्री राधाकृष्णाभ्याम् नमः



दम्पति किशोर



प्रसन्न वदन

१ जन्म एवं बाल्यकाल

भवसागर में डूबे हुये जीवों पर करुणा करने के लिये भगवान के संकल्प से समय-समय पर इस धराधाम पर महापुरुषों का आगमन होता है। इन महापुरुषों के साथ उनके पार्षदगण भी अवतरित होते हैं। ये पार्षदगण महापुरुषों की जागतिक लीला में सहयोग देते हैं और अपनी-अपनी भूमिका निभाकर पुन: उनकी नित्य सेवा में उपस्थित हो जाते हैं। जगत के अनेक सौभाग्यशाली जीव इन महापुरुषों से आकर जुड़ते हैं और निज स्वरूप का साक्षात्कार प्राप्त कर सदा-सदा के लिए दिव्यातिव्य अक्षय भगवत लीला में सम्मिलित हो जाते हैं।

भगवद् धाम से आये हुये ऐसे ही एक भगवद् प्राप्त सिद्ध महापुरुष थे परमपूज्य श्री बालकृष्णदासजी महाराज* जिन्होंने रसमार्ग की उच्चतम अवस्थाओं का अनुभव प्राप्त किया और उसे अपने आश्रितजनों में बांटा। इस प्रकार उनके लिए एक सुगम पथ का निर्माण किया।

इन्हीं के एक प्रधान शिष्य 'श्रीठाकुरजी' हमारे चरित्र नायक हैं जिनका पूरा नाम श्रीघनश्याम शर्मा है। इनका समग्र जीवन महद्जनों की सेवा में समर्पित हुआ इन्होंने अपने स्वत्व को पूर्णरीत्या पूज्य गुरुदेव के श्रीचरणों में विलीन कर दिया। पूज्यश्री ने भी अपने इस सुयोग्य शिष्य को हीरे की भाँति तराशकर अति बहुमूल्य बना दिया।

'शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते' उक्ति के अनुसार

* परम पूज्यश्रीबालकृष्णदास जी महाराज का जीवन चरित्र 'चरित वैभव' नामक ग्रन्थ में प्रकाशित है।

श्रीठाकुरजी का जन्म एक पवित्र ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनके पिता पण्डित श्रीलक्ष्मीनारायणजी शर्मा एक विद्वान ज्योतिर्विद् ब्राह्मण थे। इनमें स्वाभाविक रूप से त्याग एवं तप की वृत्ति थी। किशोरावस्था में ही ये विरक्त रूप से घर छोड़कर भारतवर्ष के प्रमुख तीर्थस्थलों का पैदल ही दर्शन कर आए थे। एकान्त में भगवद्चिन्तन की तल्लीनता में इनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होती रहती थी। प्रारब्धवश भविष्य में इन्होंने गृहस्थाश्रम स्वीकार किया था। ये अति मधुर कंठ से श्रीरुक्मिणीमङ्गल, गंगालहरी एवं श्रीमद्भागवत आदि ग्रंथों का गायन-प्रवचन किया करते थे। आसपास के लगभग चालीस गाँव के लोग इन्हें अपने आचार्य के रूप में मानते थे। कथा कहना, विद्या अध्ययन-अध्यापन एवं कृषि आदि कार्य इनकी जीविका के साधन थे। ज्योतिष-विद्या में भी ये निष्णात थे।

इन्हीं के सबसे छोटे पुत्र के रूप में भाद्रकृष्ण एकादशी सम्वत् १९९२ तद्नुसार २४ अगस्त सन् १९३५ की मंगलमयी प्रभात बेला में अलीगढ़ जिले की खैर तहसील के 'घाँघौली' नामक ग्राम में श्रीठाकुरजी का जन्म हुआ। माता-पिता ने अपने इस सुन्दर पुत्र का नामकरण 'घनश्याम सुन्दर' किया। श्रीठाकुरजी की जन्मकुण्डली के ग्रह-नक्षत्रों को देखकर इनके पिताजी ने कहा- 'यह बालक कोई सन्त पुरुष है जो अपनी अधूरी योगसाधना पूरी करने हमारे यहाँ आया है। अपनी साधना पूरी करके यह पुनः अपने गन्तव्य पर पहुँच जाएगा। इसके लिए किसी को चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।'

अलौकिक भक्तरत्न को जन्म देकर माता श्रीमती जावित्री देवी की

कोख आज धन्य हुई। बालक के जात संस्कारादि कर्म विधिवत् सम्पन्न हुए। ग्राम की स्त्रियों ने मंगलमय बधाईगान से पण्डित लक्ष्मीनारायणजी के घर को औत्सविक उल्लास से भर दिया। पण्डितजी ने भी अत्यन्त प्रमुदित होकर सभी समागत अतिथियों का आदर-सत्कार किया। लोगों ने बालक का मुखदर्शन किया और उसे अनेक आशिर्वाद दिए।

सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत।
श्री रघुबीर परायण जेहि नर उपज विनीत।।

आज इनका कुल पवित्र हुआ जहाँ ऐसे भगवद् भक्त ने जन्म लिया। भरद्वाज गोत्रीय इनके पूर्वज मथुरा जिले के बाजना ग्राम के निकट सकतपुर ग्राम के निवासी थे। बाद में श्रीठाकुरजी के प्रपितामह पण्डित हरिनामजी शर्मा सपरिवार नौहझील तहसील के पास 'घाँघोली' नामक ग्राम में जाकर बस गए थे। इस ग्राम में बहुत ही धार्मिक वातावरण था। प्राय: सन्त-महात्माओं का वास बना रहता था।

श्रीहरिनाम शर्माजी के पुत्र पण्डित मदनगोपालजी शर्मा थे जिनका मात्र ३५ वर्ष की अल्पायु में ही देहावसान हो गया था। पण्डित मदन गोपाल जी के पुत्र पण्डित लक्ष्मीनारायण जी शर्मा को ही श्रीठाकुरजी के पिता होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

नन्हा शिशु 'घनश्याम सुंदर' जन्म के समय जब लेटा रहता था तब वह अपने पैरों पर पैर चढ़ाकर सुखासन की मुद्रा बना लेता। यह देखकर माता को बड़ी चिंता होती कि कहीं इसके पैर ऐसे ही मुड़े न रह जाएँ।

तब पण्डित लक्ष्मी नारायणजी शर्मा कहते कि चिन्ता मत करो, यह कोई योगी है, जो अपनी अधूरी योग साधना को पूरी कर रहा है। इसके पैर तो पूरी तरह ठीक हैं। वात्सल्यमयी माता अपने बालक के पैरों को सीधा करके देखती तथा पैरों में हलचल होते देखकर आश्वस्त हो जातीं।

बालक का गौरवर्ण, सुन्दर रूप, घुँघरारे केश व चपल चेष्टाएँ सभी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती थीं। भाई-बहनों में सबसे छोटे होने के कारण ये सबके लाड़ले थे। कुछ बड़े होने पर अपने अग्रज के साथ खेल-कूद में ही इनका पूरा दिन बीतता। रोना तो जैसे ये जानते ही नहीं थे। सर्वथा निर्भय होकर पूरे गाँव में घूमा करते थे। एकबार इनके हाथ से दूध का बर्तन छूटकर गिर गया और सारा दूध फैल गया जब मैय्या नाराज होकर इन्हे पकड़ने दौड़ी तब ये कहीं जाकर छिप गये और सायंकाल तक छिपे रहे। मैय्या बड़ी व्याकुल हो गई और लालटेन लेकर इन्हें ढूँढ़ने निकली, काफी देर बाद इन्हें भिटौरे के भीतर छिपे हुए पाया।

घर में दूध-दही की कमी तो थी नहीं। नित्य प्रातःकाल जब मैय्या दही बिलोती और माखन के लोंदे (लोनी) को उछालकर मट्ठे का निस्सारण करती तब तत्काल न जाने कहाँ से आकर घनश्याम लोनी तोड़कर भाग जाते। माँ ने बहुत प्रयत्न किया और कहतीं- 'लाला! वैसी ही लोनी घर में रखी है। तू उसे ले लेता। यों लोनी छीनकर क्यों भागता है?' तब ये हँसते हुए कहते- 'मैय्या मुझे तो ऐसे ही खाने में अच्छा लगता है।' जब मैय्या गाय का दूध काढ़ती तब सीधे थन के पास मुख ले जाकर ये कहते- 'मैय्या दूध की धार मेरे मुख में कर दें'। मैय्या वैसा ही करती। सीधे गाय के थन से काढ़ा दूध पीकर ये कहते कि दूध बड़ा

मीठा है। घनश्याम सुन्दर की मधुर क्रीड़ाओं को देखकर माता को अतिसय सुख प्राप्त होता।

अभी ये मात्र साढ़े तीन वर्ष के ही हुए थे कि इनके पिताजी का देहावसान हो गया। जब इनके पिताजी रुग्णशैय्या पर अवस्थित थे तब अपने तीनों पुत्रों को आगे कर इनकी माँ उनके निकट गयीं और उनसे पूछा कि इन बच्चों का जीवन निर्वाह कैसे होगा ? इनके पिताजी ने बड़े पुत्र (श्रीनवलकिशोर शास्त्री) की ओर इशारा करते हुए कहा कि इन्हें संस्कृत पढ़ाना। ये अध्ययन-अध्यापन के द्वारा अपना जीवन निर्वाह कर लेंगे तथा शेष दोनों पुत्रों की ओर संकेत करते हुए कहा कि इनका जीवन तो भजन-कीर्तन करते हुये निभ जायेगा। इसके बाद इन्होंने अपनी धर्मपत्नी से कहा कि कैसी भी परिस्थिति हो, तुम कभी भी किसी के सामने हाथ न पसारना। यदि कोई तुम्हें कुछ दे तो समझना कि वह तुम्हारा धर्म बिगाड़ रहा है। उसे स्वीकार करने पर तुम्हारी गरिमा घटेगी। तुम भले ही अपने परिवार का पोषण 'शिलोञ्छवृत्ति'* द्वारा कर लेना पर किसी के सामने हाथ न पसारना। भगवान् तुम्हारा मंगल करेंगे। श्रीमती जावित्रीदेवी ने अश्रुपूरित नेत्रों से अपने बीमार पति को चिरविश्राम के लिये अनुमति दी।

श्रीठाकुरजी के पिताजी को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था कि

---

*शिलोञ्छवृत्ति :- ,खेत कट जाने के बाद खेत में गिरे हुए अन्न को संग्रह करके उसी से जीवन निर्वाह करना। "अन्याभ्यामेव जीवेत शिलैर्वा..." एवं "शिलोञ्छवृत्या परितुष्टचित्तो धर्मं महान्तं विरजं जुषाण :..." आदि श्लोकों द्वारा शिलोञ्छवृत्या ब्राह्मण गृहस्थ अथवा सन्यासियों सभी के लिए मोक्षदायी कही गई है--श्रीमद्भा० 11/17/43

मैं अमुक दिन जाऊँगा, जो अक्षरशः सत्य हुआ। इन्होंने मात्र ४२ वर्ष की अल्पायु में ही अपने नश्वर कलेवर का परित्याग कर दिया। अब बच्चों के पालन–पोषण का भार इनकी माता पर आ गया। घर में अर्थाभाव की विषम परिस्थिति उत्पन्न हो गई। श्रीठाकुरजी के सबसे बड़े भाई, पिताजी की आज्ञानुसार संस्कृत अध्ययन हेतु वृन्दावन चले गए। शेष दो बड़ी बहन व एक बड़े भाई माता के पास ही रहे। माता ने बड़े परिश्रम से बच्चों का पालन–पोषण किया। अत्यन्त सरल व भक्तहृदया माता ने बचपन से ही बच्चों को स्वावलम्बी बनाया। उनके अन्दर भक्ति व आत्मसम्मान के उन्नत संस्कार डाले। वे सदा बच्चों को सच्चाई पूर्वक जीवन जीने की प्रेरणा देती रहीं।

*****

२ रासमण्डली में प्रवेश

सन् १९४० की बात है। श्रीठाकुरजी के चचेरे मामा स्वामी श्रीचेतरामजी ने इनकी माँ से उनके दोनों छोटे पुत्रों को अपनी रासमण्डली के लिए माँगा और यह आश्वासन दिया कि इन बच्चों को संगीत आदि की शिक्षा देकर योग्य बनाएँगे तथा उचित पारिश्रमिक भी देंगे। माँ ने भी यह उचित समझा और अपने बड़े पुत्र नवल किशोर की सम्मति से दोनों बालकों को चचेरे भाई स्वामी श्रीचेतरामजी के समीप शिक्षा-दीक्षा हेतु भेज दिया। श्रीचेतरामजी ने रासमण्डली में बच्चों को शामिल कर लिया परन्तु बच्चों को उनकी प्रतिभा के अनुरूप पारितोषिक न मिलता तथा व्यवस्थित भोजन-वस्त्रादि भी उपलब्ध नहीं कराये जाते।

ममतामयी माता गाँव से ५० किमी. पैदल चलकर जब कभी अपने बालकों से मिलने श्रीधाम वृन्दावन आती तो कई बार बच्चों से भेंट न हो पाती। उनसे यह कहा जाता कि तुमसे मिलने पर बच्चे मोहवश तुम्हारे साथ जाने की जिद्द करेंगें जिससे इनका भविष्य नहीं बन पाएगा। बालक खिड़की के भीतर दूर से ही माता को देख लेते। माँ भी नेत्रों में आँसू भरकर चुपचाप सब सहन करके वापस गाँव लौट जाती थीं।

रासमण्डली में प्रवेश के समय श्रीठाकुरजी की अवस्था मात्र पाँच वर्ष की थी। ये कभी 'छोटी सखी' (नीकी सखी) बना दिए जाते तो कभी बालकृष्ण स्वरूप बनते। कभी श्रीकृष्ण के विनोदी सखा 'मनसुखा' का चरित्र निभाते। मनसुखा का अभिनय करने में ये अत्यन्त

निपुण थे। लोगों को हँसा-हँसाकर निहाल कर देते थे।

श्रीठाकुरजी जिस किसी भी पात्र का चरित्र निभाते थे, उसमें अत्यधिक तन्मय हो जाते थे। अभिनीत पात्र के चरित्र से इस हद तक इनकी तदाकारता हो जाती थी कि ये स्वयं को साक्षात् वह पात्र ही मानने लगते थे। इनका जीवन्त अभिनय चरित्र को मूर्त कर देता था। जो भी पाठ-संवादादि इन्हें दिया जाता ये उसे तुरन्त कंठस्थ कर लेते थे। इनकी धारणाशक्ति अत्यन्त तीव्र थी।

ठाकुरजी अत्यन्त संवेदनशील व भावुक स्वभाव के थे। एकान्त इन्हें विशेष प्रिय लगता था। गेरुआ वेषधारी महात्माओं को देखते ही इनके मन में उनके प्रति सम्मान व श्रद्धा का भाव उत्पन्न हो जाता था। साधु-महात्माओं के निकट जाने में इन्हें तनिक भी संकोच नहीं होता था।

रासमण्डली के स्वामी मामा चेतरामजी का व्यवहार इन बालकों के प्रति बहुत स्नेहपूर्ण नहीं रहा। इधर वृन्दावन में इन दोनों भाइयों के सुमधुर कंठ एवं भावपूर्ण लीलानुकरण की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। अनेक रासाचार्य इन्हें अपनी मण्डली में रखना चाहते थे। लगभग पाँच वर्ष श्रीचेतरामजी की मण्डली में रहने के बाद श्रीठाकुरजी अपने अग्रज श्री श्रीरामजी के साथ स्वामी श्रीछोटेकुंजबिहारी की मण्डली में आ गए। यहीं पर 'घनश्याम सुंदर' रासबिहारी ठाकुर स्वरूप बनने के कारण रासप्रेमियों के मध्य 'ठाकुर घनश्याम' अथवा 'ठाकुरजी' के नाम से बुलाये जाने लगे। इनके बड़े भाई 'श्रीराधाजी' का स्वरूप बनने के कारण 'श्रीजी' नाम से जाने जाते थे। इस समय श्रीठाकुरजी की अवस्था मात्र १० वर्ष की थी तथा अग्रज श्री श्रीरामजी १४ वर्ष के थे।

उनदिनों एकदिन में कई-कई जगह रासलीला हुआ करती थी। प्रत्येक रासदर्शन में ठाकुर घनश्याम बिना विश्राम किये अति उल्लासपूर्वक नव-नवीन भंगिमाओं एवं सरस भावपूर्ण अनुकरण द्वारा रासप्रेमियों का मन मोह लेते। रासप्रेमी भक्तजन इनके अद्भुत नृत्यकला कौशल को देखकर आश्चर्यचकित रह जाते थे। नट-कला में भी श्रीठाकुरजी अत्यन्त निपुण थे। हाथों में बाँस का डण्डा लेकर हवा में लटकती रस्सी पर बिना सहारे चलना तो इनके बाँए हाथ का खेल था।

धीरे-धीरे दोनों भाइयों की गणना अच्छे स्वरूपों में होने लगी। तत्कालीन रासमण्डलियों के प्रख्यात स्वामी लक्ष्मणजी, स्वामी मेघश्यामजी, श्रीबृजलालजी बौहरे, स्वामी प्रियाशरणजी आदि बहुधा रास में इस विशेष उत्सुकता के साथ पधारते कि देखें कैसे ये दोनों बालक इतने सुरीले तान-आलाप लेते हैं। इनके भावभरे अनुकरण को प्रत्यक्ष देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न होते।

रासलीला के आयोजन पूरे भारतवर्ष में जहाँ-तहाँ होते रहते थे। सभी स्थानों पर इनकी स्वरूपाई की मुक्त कंठ से प्रशंसा होती थी।

पान में सिंदूर का कुचक्र

दोनों भाइयों की उभरती प्रतिभा को देखकर कुछ लोग इनसे ईर्ष्या रखने लगे थे। उन लोगों ने मिलकर एक षड़यंत्र रचा कि कैसे भी हो इन बालकों की बढ़ती ख्याति को रोका जाए। ईर्ष्यालुओं की कुयोजना का शिकार हुए 'श्रीठाकुरजी'। किसी ने चुपके से घातक सिन्दूर को पान में मिलाकर इन्हें खिला दिया। पान खाने के कुछ देर बाद ही इन्हें गले से कुछ भी निगलने में कठिनाई होने लगी। इनका स्वर भर्राने लगा।

धीरे-धीरे गला पूरी तरह बैठ गया। अब ठाकुरजी को रासलीला में संवाद बोलने व गाने में भी कठिनाई होने लगी। लोगों को समझते देर न लगी कि अवश्य ही किसी ने पान में कोई हानिकर वस्तु खिला दी है। लेकिन तब तक काफी विलम्ब हो चुका था। अन्ततः इन्हें अस्पताल में भर्ती कराया गया। वृन्दावन के पानीघाट पर स्थित श्रीरामकृष्णमिशन अस्पताल में इनके गले का ऑपरेशन हुआ। मेथॉडिस्ट हास्पिटल की महिला डॉक्टर बर्चर ने इनके गले में चिपकी सिंदूर की परतों को निकाला।

अभी अस्पताल से छुट्टी भी नहीं मिली थी कि एक नर्स की नासमझी से विपत्ति खड़ी हो गई। उसे जब यह मालूम पड़ा कि यह बालक रासमण्डली में ठाकुर बनता है एवं बहुत ही मधुर गाता है तब उसने श्रीठाकुरजी से एक भजन सुनाने को कहा। श्रीठाकुरजी के मना करने पर कुछ भय दिखाया। भोले-भाले बालक ठाकुर घनश्याम ने भय व संकोचवश जैसे ही गाना शुरू किया वैसे ही मुख से रक्त आने लगा। सूचना मिलते ही डॉक्टर बर्चर तुरन्त आयी और उस नर्स को खूब फटकार लगाई। भगवद् कृपा से समुचित चिकित्सा व्यवस्था का प्रबन्ध था, जिससे गले मे पर्याप्त सुधार हो गया। आवाज में भी पहले जैसी स्वाभाविकता आने लगी। कुछ दिनों बाद वे पुनः रासमण्डली में वापस आकर पूर्ववत् लीला अनुकरण करने लगे।

गायत्री मंत्र दीक्षा

रासमण्डली जब भी कलकत्ता शहर जाती तो वहाँ छः-छः माह तक रुक जाती थी। एकबार ऐसे ही लम्बे प्रवास में मण्डली के आठ स्वरूपों



स्वरुपाई की
ठाट



बाल्यावस्था में
श्रीठाकुरजी



सखी स्वरुप में
'श्रीठाकुरजी'



सखा स्वरुप में
'श्रीठाकुरजी'



रासविहारी स्वरुप में 'श्रीठाकुरजी'



रासमंच पर श्रीरासविहारी स्वरुप में विराजित

का एक साथ उपनयन संस्कार किया गया। इनमें श्रीठाकुरजी भी थे। आचार्यत्व कार्य का निर्वाह वहाँ के एक प्रसिद्ध पण्डित श्रीबाबूलालजी वैद्य ने किया था। श्रीठाकुरजी को गायत्री मंत्र का दान इनके सबसे बड़े भाई पण्डित नवलकिशोरजी शास्त्री ने किया था।

नियमित रूप से त्रिकाल संध्या करने के फलस्वरूप श्रीठाकुरजी का व्यक्तित्व ब्रह्मचर्य तेज से चमक उठा। इनकी वाणी में एक विशेष प्रभाव आ गया। यदि ये किसी को कुछ कह देते तो वह बात प्राय: सत्य घटित हो जाती थी। दो-तीन घटनाएँ ऐसी हुई जिसमें इन्होंने कुछ बात बोली और वह सत्य हो गई। यह जानकर रासमण्डली के कार्यकर्ता इनसे भय खाने लगे कि इनको कभी नाराज नहीं करना, नहीं तो ये क्रोध में कुछ बोल देंगे और वह बात सत्य हो जायेगी। पण्डित श्रीबाबूलालजी वैद्य गायत्री सिद्ध पुरुष थे। उन्हें जब यह बात बताई गई तो उन्होंने श्रीठाकुरजी के मस्तक पर हाथ रखा और नेत्रों से नेत्र मिलाकर इन्हें समझाया के इससे अपने तेज की हानि होती है इसलिए किसी को भी कुछ न कहा करो। उनके समझाने पर श्रीठाकुरजी ने अपनी वाणी पर संयम कर लिया।

कुछ दिनों बाद रासमण्डली की परम्परा के अनुसार सभी बालकों की वैष्णवी दीक्षा निम्बार्क सम्प्रदाय में करा दी गई और श्रीठाकुरजी भी छोटी अवस्था में ही निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए।

वृन्दावन में रासलीला

श्रीयमुनातट की स्वच्छ धवल बालुका पर चहुँओर बिखरे पुष्पों व वृक्षावलियों पर बैठे पक्षियों के कलरव से, कोकिल-काकली एवं

मयूरों के नृत्य से वृन्दावन की शोभा देखते ही बनती है। तमाल व कदम्ब के वृक्षों की लम्बी-लम्बी कतारें, उज्वल नीलवर्णीय श्रीयमुनाजी की धारा एवं जहाँ-तहाँ साधु महात्माओं की भजन कुटियाओं के दर्शन करने मात्र से परम शान्ति एवं आनन्द का अनुभव होता है। शारदीय पूर्णिमा का अवसर हो या सावन की हरियाली तीज का अवसर हो अथवा रंगीली होली की धूम मची हो, वृन्दावन के मन्दिरों, सन्तों की कुटियाओं व आश्रमों में जहाँ-तहाँ रासलीला के आयोजन हुआ ही करते हैं।

उन दिनों रासलीलाओं की भेंट मात्र आठ आने होती थी। एक रुपए की भेंट तो उस समय बहुत अधिक मानी जाती थी। रास के स्वरूपों की बड़ी गरिमा थी। वे सादे वेष में भी यदि बाजार की गलियों से गुजर रहे होते थे, तो प्रेमीजन उनके सम्मान में उठकर खड़े हो जाते थे और उन्हें प्रणाम करते थे। साधु-महात्माओं एवं रसिक सन्तों की आज्ञानुसार ही स्वामीजन रासलीलाओं का मर्यादित रूप से मंचन करते थे। ऐसे में रासदर्शन का अनुभव बड़ा विलक्षण होता था। साधु-सन्तों व रास-रस-रसिक प्रेमीभक्तों के मध्य रस की ऐसी सरिता बहती कि लोग अपने आप की सुधि भूल जाते थे।

रासमंडली प्रायः दावानल कुंड के पास की बगीची, उड़िया बाबा के आश्रम अथवा श्रीबिहारी की बगीची में ठहरा करती थी। सघन वृक्षावलियाँ, कोमल रज के प्राङ्गण, शीतल जल के कुंडों को देखकर श्रीठाकुरजी बहुत आनन्दित होते थे। जब कभी श्रीउड़िया बाबा आश्रम में रास का आयोजन होता तो रासमंच पर परमपूज्य श्रीउड़ियाबाबा महाराज विराजते थे। इसके अलावा पूज्य श्रीहरिबाबाजी महाराज श्री

श्रीरासबिहारी सरकार की सेवा में उपस्थित रहकर पूरी रासलीला के मध्य पंखा झलते रहते थे। पूज्या माँ आनन्दमयी, पूज्य सन्त श्रीरघुनाथदासाचार्यजी, पूज्यपाद पण्डित श्रीगयाप्रसादजी, पूज्य स्वामी श्रीअखंडानंदजी, सन्तप्रवर फूलचोर बाबाजी, परमपूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराज आदि प्रसिद्ध सन्त भी समय-समय पर रासस्थल की शोभा बढ़ाते थे। इन सन्त विभूतियों की उपस्थिति में लीला की दिव्यता और अधिक बढ़ जाया करती थी। स्वरूपों में भी उल्लास भर जाता था।

पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज तो प्रायः रासलीला दर्शन के मध्य समाधिस्थ ही रहते थे। वे नेत्र निमीलित किए बैठे रहा करते थे तब बालकृष्ण स्वरूप बने हुए श्रीठाकुरजी इनके पेट में अँगुली गड़ाते हुए कहते कि 'बाबा तू सोय रह्यौ है?' पूज्य उड़ियाबाबा नेत्र खोलकर इनकी ओर देखकर मुस्कुरा देते थे।

कभी-कभी जब बाललीला के प्रसङ्ग में माता यशोदा इन्हें पकड़ने के लिए दौड़तीं तब ये भागकर मंचासीन पूज्या माँ आनन्दमयी की गोद में बैठ जाते थे। माँ उन्हें अपने आँचल में छिपाते हुए श्रीयशोदामैय्या से कहतीं 'किष्णों एखानै नाई'। वे लाड़ में भरकर स्वयं अपने हाथों से चाँदी के पात्रों में श्रीठाकुरजी को भोग पवाती थीं। पूज्य श्रीहरिबाबा तो सभी स्वरूपों के साथ कभी-कभी श्रीयमुना स्नान के लिए भी जाते थे। श्रीठाकुरजी ने शुक ताल में इनसे ही तैरना सीखा था।

रासबिहारी स्वरूप बनना श्रीठाकुरजी के लिए वरदान सिद्ध हुआ। अनेकानेक सिद्ध सन्तों का सङ्ग, साधु-महात्माओं का दरस-परस प्राप्त होता रहता था। स्वभाव से ही अन्तर्मुखी एवं एकान्तप्रिय श्रीठाकुरजी के

मनोमूल में इन महान् विभूतियों के प्रति अत्यन्त श्रद्धा का भाव उपजाता था। उनके पवित्र जीवन को देखकर स्वयं भी वैसा ही जीवन जीने की इच्छा उत्पन्न होती थी।

एकबार श्रीउड़ियाबाबा आश्रम में स्वामी श्रीछोटेकुञ्जबिहारीजी की रासलीला का आयोजन था। श्रीठाकुरजी रासबिहारी स्वरूप बने थे। रासलीला के विश्राम के बाद सभी स्वरूप निकट के कुंड में कूद-कूदकर नहाने लगे। उन्हें नहाते-नहाते बहुत देर हो चुकी थी। इन स्वरूपों के प्रति अत्यन्त श्रद्धा रखने वाले पूज्य पण्डित श्रीगयाप्रसादजी महाराज भी उस समय वहाँ उपस्थित थे। वात्सल्यमूर्ति श्रीपण्डितजी को स्नेहाधिक्य में यह आशंका हो गई कि कहीं इन बालकों को सर्दी न लग जाए। यह सोचकर उन्होंने सभी स्वरूपों को जल से बाहर निकल आने के लिए आग्रह किया। एक-एक करके सभी स्वरूप बाहर निकलने लगे। परन्तु नन्हे श्रीठाकुरजी अपने एक-दो साथियों के साथ पानी में खेलते ही रहे। तब पूज्य पंडित जी ने इन्हें इस कार्य से निवारित करने के लिए क्रोध की मुद्रा बनाई और एक छोटी सी सौंटी (छड़ी) लेकर आए और डाँटते हुए उन बालकों से बाहर निकलने को कहा। सभी बालक डर के मारे बाहर आ गए थे परन्तु ठाकुरजी उनकी क्रोधभरी मुद्रा देखकर भयग्रस्त हो गए और थर-थर काँपने लगे। श्रीठाकुरजी सोचने लगे के ये सन्त तो लीला में कितना आँसू बहाते हैं अब इनका यह कैसा स्वरूप है? श्रीठाकुरजी को भयभीत देखकर पूज्य पण्डितजी का चित्त दयार्द्र हो गया। उन्होंने हाथ से छड़ी फेंक दी और दौड़कर श्रीठाकुरजी को हृदय से लगा लिया। हृदय से लगाते ही वे फफक-फफककर रोने लगे कि बाल गोपाल को मेरे द्वारा इतना भय हो

गया।

श्रीठाकुरजी को कभी-कभी एकदिन में तीन-तीन जगह रासलीला करनी होती थी। कभी ब्रह्मनिवास तो कभी साधुमाई आश्रम, कभी रामकुँज, टोपीकुँज तो कभी दिल्ली वाली धर्मशाला, दावानल कुंड आदि-आदि अनेक स्थानों में रासलीलाओं के आयोजन होते थे। प्रत्येक स्थान पर श्रीठाकुरजी का वैसा ही भावपूर्ण अभिनय व मधुर गान रहता एवं बिना थके वैसी ही नृत्य की सुन्दर मुद्राएँ रहती, जिसे देखकर रासप्रेमी चमत्कृत रह जाते थे।

हरिद्वार में रासलीला

हरिद्वार के निकट कनखल में 'चैतन्यदेव की कुटिया' नामक एक आश्रम में रासलीला का आयोजन हुआ। इस आश्रम में निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना करने वाले सन्यासियों का जमावड़ा बना रहता था। सभी महात्माओं ने ज्ञानपरक 'उद्धवलीला' करने का आग्रह किया। लीला प्रारंभ हुई। एक प्रसङ्ग में श्रीकृष्ण विरह में सन्तप्त ब्रजाङ्गनाओं का मार्मिक दृश्य था। ब्रजबालाओं को उद्धवजी के ज्ञानोपदेश शूलवत् कष्टदायी प्रतीत हो रहे थे। परस्पर वाद प्रतिवाद की झड़ी लगी थी। श्रीकृष्ण प्रेमोन्माद में गोपियाँ अलौकिक भावदशा को प्राप्त हो रही थीं। वातावरण में अत्यन्त गम्भीरता छाई हुई थी। आज श्रीठाकुरजी सखीवेष में थे। इनका मन भी प्रसङ्गानुसार उन संवादों में तन्मय हो रहा था। अपने संवाद को कहने की बारी आई तो उन्होंने यह पद गाया-

हे उद्धव !

यह तन जो कोऊ फेरि बनावै।

तऊ न नंदनंदन तजि मधुकर और कछू मन भावे।।

जो या तन की करे किन्नरी और नसनि को तार।
आठौं याम मधुर धुनि निकसे सुन्दर श्याम मुरार।।

जो या तन की त्वचा काढ़ि कै सुन्दर दुन्दुभि साजै।
मधुर उतङ्ग सप्त स्वरन में लाल लाल ही बाजै।।

छूटे प्राण मिले तन माटी द्रुम लागै तिहिं ठाम।
'सूरदास' फलफूलनि साखो लेत उठे हरि नाम।।

यह पद अभी पूरा भी नहीं हो पाया था कि पद के भावों मे डूबते हुए सखी स्वरूप बने श्रीठाकुरजी अन्तिम पंक्ति के उच्चारण के साथ ही मंच पर धड़ाम से गिर पड़े और मूर्च्छित हो गए। इनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। गिरते समय ये एक चौकी से टकरा गए थे जिसमें एक नुकीली कील लगी हुई थी जो इनके कपोल के आर-पार घुस गई। रक्त बहने लगा। अचानक हुई इस घटना को देखकर सभी स्तब्ध रह गए। एकदम कोई समझ न पाया कि क्या हुआ। कुछ ही क्षणों में लीला को विश्राम देकर श्रीठाकुरजी के उपचार का उपक्रम होने लगा और डॉक्टर बुला लिए गए।

इधर अर्धमूर्च्छा में पड़े-पड़े श्रीठाकुरजी के मुख से लगातार उसी लीला की तन्मयता में; हे प्राणवल्लभ! हे प्राणवल्लभ! ये शब्द उच्चारित हो रहे थे। इसे देखकर वहाँ के निर्गुण निराकार उपासक महन्तश्री का हृदय करुणा से विगलित हो गया। वे अत्यन्त व्याकुल हो उठे और श्रीठाकुरजी के निकट आकर उपस्थित लोगों से बोले- 'आप

सब लोग इनका बाह्य उपचार करने में तो लगे हुए हैं पर इनकी मनोदशा को कोई समझ नहीं रहा है। आप देखते नहीं हैं कि इनके मुख से लगातार हे प्राणवल्लभ! हे प्राणवल्लभ! उच्चरित हो रहा है। इनको इनके प्राणवल्लभ से तुरन्त मिलवाइए!' महन्त जी की ऐसी भावपूर्ण बात सुनकर सभी अवाक् रह गए। तुरन्त रासबिहारी ठाकुर स्वरूप को सखी स्वरूप बने श्रीठाकुर जी से मिलाया गया। श्रीठाकुरजी ने रासबिहारी स्वरूप को कसकर आलिङ्गन कर लिया। तत्पश्चात् लोगों ने प्रयासपूर्वक उनको अलग किया और घाव का इलाज करवाया, उस समय कपोल में कुल १७ टाँके आए थे।

इस घटना के बाद से स्वामी श्रीछोटेकुञ्जबिहारीजी ने संकल्प कर लिया कि अब आगे से वे उद्धव लीला, अक्रूर गमन लीला, अनुराग लीला आदि विरह प्रधान लीलाओं का मंचन नहीं कराएँगे। इन सभी निकुँज लीलाओं में श्रीठाकुरजी को विशेष तन्मयता हो जाती थी। लीला के बाद भी वे घंटों तद्भाव भावित रहा करते थे। उनका भोजन छूट जाता था। वे जाकर एकान्त में पड़े रहते। इनकी ऐसी स्थिति हो जाने के कारण दो साधु (श्रीबनवारीशरण बाबा एवं श्रीतपसीजी महाराज) को इनकी सेवा में नियुक्त किया गया। वे साधु सजगता पूर्वक श्रीठाकुरजी की सेवा किया करते थे। रासलीला के विश्राम हो जाने पर ये साधु इन्हें संतों के जीवन चरित्र, श्रीरामचरितमानस आदि ग्रन्थों से सुन्दर प्रसङ्ग सुनाया करते थे।

श्रीठाकुरजी शुरू-शुरू में सबसे छोटे होने के कारण छोटी सखी बना करते थे। छोटी सखी बनते समय इनकी 'निकी सखी' के नाम से ख्याति हो गई थी। उस समय महारास लीला के प्रसङ्ग में इन्हें यह

भावपूर्ण संवाद बोलना पड़ता था–

'हे प्राणवल्लभ! बहुत कही, बहुत कही और कछू कहनो होय तो और कहि लेओ! यह हमारो माथो आपके आगे है। इन वचनन रूपी बाण ते हमकूँ क्यूँ छेदो हो! हमे पीड़ा होय है। यदि आपकूँ हम मारनी ही हैं तो एक तलवार लाय के हमारी नार के दो टूक करि देओ। याही ते हमने माथो नीचो कियो है।' इस संवाद को बोलते-बोलते इनकी हिलकियाँ बँध जाती। तब शीघ्रता से इनका श्रृङ्गार उतार दिया जाता, नहीं तो प्राय: ये मूर्च्छित ही हो जाते थे।

कुछ बड़े होने पर ये ठाकुर स्वरूप बनने लगे। विरह लीला के बाद यदि स्वामीजी उनसे होली लीला के लिए कहते तो वे सजी हुई गुलाल की थालियों को यह कहकर एक ओर सरका देते कि होली लीला के लिए कोई उमंग भी तो होनी चाहिए। इन्हें निरन्तर यह आवेश बना रहता कि 'मैं श्रीकृष्ण हूँ और मैं जो कहूँगा वह होगा ही'। यदि वे किसी को आवेश में आकर कुछ कह देते तो वह बात सत्य घटित हो जाती थी। इससे इनकी अन्य स्वरूपों से एक अलग पहचान बन गई थी।

श्रृङ्गार बढ़ा दिए जाने के बाद भी इनमें रासबिहारी स्वरूप का आवेश बना रहता, जिससे अनेक रास प्रेमी भक्त इनके आसपास बने रहते। अनेक विरक्त साधू-महात्मा इनके निकट बैठकर विलक्षण शान्ति का अनुभव करते थे। एक महिला संत (श्रीसंतोष बहिन जी) ने बताया के रासलीला के उपरान्त जब ये विश्राम कर रहे होते थे उस समय इनके मुख पर परिलक्षित अपूर्व सात्विकता व भोलेपन को देखकर उन्हें असीम शान्ति का अनुभव होता था। वे रासलीला देखने न जाकर जब श्रीठाकुरजी विश्राम कर रहे होते उस समय पहुँचतीं और श्रीठाकुरजी

जब श्रीयमुना स्नान के लिए जाते तो बालुका पर उनकी उन्मुक्त क्रीड़ा व चहल-कदमी को देखने पहुँच जातीं।

लीला के मध्य संवाद बोलने में यदि कभी कोई भूल हो जाती तो श्रीठाकुरजी डर जाते और स्वामीजी की डाँट ना पड़े इसलिये अपने गोपालजी के आगे बैठकर दो माला श्रीगायत्री मंत्र की करते और बाद में होता भी ऐसा ही कि स्वामीजी इन्हें कुछ भी न कहते।

भावग्राही श्रीठाकुरजी में सरलता, विनम्रता, निर्भयता, एकान्तप्रियता, करुणावशता एवं परदुखकातरता आदि गुण बाल्यकाल से ही विद्यमान थे। धीरे-धीरे इनके आस-पास भक्तों का एक समूह इकट्ठा होने लगा। इनकी स्वरूपायी में लीला-दर्शन से प्रभावित होकर अनेक गृहस्थों ने बाद में भगवदपथ का आश्रय लिया। कई लोग विरक्त होकर ब्रजवास करने लगे।

जयपुर में रास का आयोजन

सम्वत् २००६ के आषाढ़ मास की बात है। जयपुर में श्रीनिम्बार्कपीठाधीश्वर श्री श्रीजी महाराज का आगमन होने वाला था। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के पूर्वाचार्यों द्वारा जयपुर जाना अनेक वर्षों से बंद था। लगभग ८० वर्ष बाद पीठासीन आचार्य किशोर वयस के श्रीश्रीराधासर्वेश्वरशरण देवाचार्यजी महाराज की पधरावनी होने वाली थी। इस हेतु यहाँ के 'महाराजा कालेज' में एक भव्य समारोह का आयोजन किया गया। इस मांगलिक अवसर पर रासलीला का कार्यक्रम भी रखा गया था। जगद्‌गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्री श्रीजी महाराज का नगर में यह प्रथम आगमन था। इस हेतु अगवानी करने

सभी भक्त स्टेशन पहुँचे थे।

रासलीला के स्वरूप भी स्टेशन पहुँचे। सभी में यह होड़ सी मची थी कि कौन सर्वप्रथम श्रीसर्वेश्वरप्रभु को मालाधारण कराएगा। इस होड़ में श्रीठाकुरजी भी शामिल थे। तब इनकी अवस्था मात्र १२ वर्ष की ही थी। ये भी बड़े उत्साह से माला लेकर भक्तों की भीड़ में खड़े थे और उत्सुकता पूर्वक ट्रेन आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। जैसे ही ट्रेन प्लेटफार्म पर पहुँची सम्पूर्ण वातावरण जय-जयकार से गूँज उठा, तभी भीड़ के बीच अत्यन्त स्फूर्ति से घुसते हुए श्रीठाकुरजी ने 'श्रीजी' महाराज को सबसे पहले माला धारण करा दी। इनकी इस स्फूर्ति व ललक से प्रभावित होकर श्री 'श्रीजी' महाराज ने इन्हें अपने साथ ही बैठा लिया और आयोजन स्थल तक ले गए। कुछ लोग भ्रम में पड़ गए कि इनमें से कौन नव पदासीन आचार्य हैं। यद्यपि 'श्रीजी' महाराज अवस्था में कुछ बड़े थे तो भी बहुत से भक्तों जिन्होंने श्रीजी महाराज को पहले नहीं देखा था, ठाकुर जी को ही 'श्रीजी' महाराज समझकर मालाएँ धारण करा दी।

******

३ गोरखपुर में रासलीला

सन् १९४८ में श्रीठाकुरजी के अग्रज श्रीश्रीरामजी ने प्रसिद्ध सारंगी वादक पंडित श्रीहरिबल्लभजी शर्मा के साथ मिलकर एक पृथक रासमंडली का गठन किया। श्रीठाकुरजी की स्वरूपाई, श्रीश्रीरामजी के गायन एवं पंडित श्रीहरिबल्लभजी शर्मा के उत्कृष्ठ सारंगी वादन से सुसज्जित इस मंडली ने शीघ्र ही रासमंडलियों के मध्य अपना स्थान बना लिया।

सन् १९४९ में मण्डली गोरखपुर गई। आयोजकों ने मण्डली के लोगों को एक घोड़ा-बघ्घी रखे जाने वाले दालान में ठहराया। जो कि रासमण्डली की गरिमा के अनुरूप न था। लीला का आयोजन अन्य स्थान पर था। सुविख्यात संत एवं 'कल्याण' पत्रिका के संपादक परमपूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (श्रीभाईजी) भी आयोजक के निमंत्रण पर रासलीला दर्शन हेतु पधारे थे। यहीं पर श्रीठाकुरजी की इनसे प्रथम भेंट हुई। रासलीला के प्रथम दिवस जब मंच से पर्दा हटाया गया तो सामान्य साज-सज्जा में ही विराजमान श्रीरासबिहारी एवं श्रीजी स्वरूप को देखकर जनसमुदाय का मन मुग्ध हो गया। प्रथम दिवस की रासलीला देखने के बाद आयोजकों को अपराध बोध हुआ तब दूसरे दिन उन्होंने रासमण्डली के ठहरने के लिए एक अच्छे स्थान पर व्यवस्था की। द्वितीय दिवस की रासलीला में रासेश्वर स्वरूप बने श्रीठाकुरजी ने लावनी तर्ज में गाना प्रारम्भ किया-

धरि धरि के अवतार, भूमि को भार हरैय्या मैं ही तो हूँ।।

नंद को लाला मातु जसोदा को प्यारो कन्हैया मैं ही तो हूँ।
मथुरा में लियो जनम चिर ब्रजमंडल को बसैया मैं ही तो हूँ।।

इन पंक्तियों को सुनते ही पूज्य श्रीभाईजी को विशेष भावोद्दीपन हुआ। उनके नेत्रों से अश्रु झरने लगे। वे संवरण करने की चेष्टा करते तो भी लीलारस के प्रवाह मे पुनः बह जाते। इनकी ऐसी भावपूर्ण दशा देखकर श्रीठाकुरजी का ध्यान इनकी ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। पहले तो उन्होंने पूज्य श्रीभाईजी को एक साधारण सेठ ही समझा था; परन्तु इनके हृदय के समुज्वल भावों को देखकर एवं लोगों द्वारा संत के रूप में इन्हे सम्मानित होता देखकर श्रीठाकुरजी भी इनके प्रति विशेष श्रद्धान्वित हो गए।

यद्यपि १९४३ में पूज्य श्रीभाईजी के पैतृक स्थान रतनगढ़ में ये रासलीला करने गए थे और वहाँ पूज्य श्रीभाईजी के दर्शन भी हुए थे परन्तु अत्यन्त छोटी अवस्था होने के कारण उन्हें वह बात विस्मृत सी हो गई थी। इनके लिए तो श्रीभाईजी से भेंट का यह प्रथम अवसर ही कहा जा सकता है। एकदिन पूज्यभाईजी के साथ उनके सानिध्य में ही रहकर साधना करने वाले ब्रजभाव के उच्चकोटि के उपासक पूज्य श्रीराधाबाबा लीला दर्शन हेतु पधारे। इनका जीवन त्याग, तितिक्षा एवं अनेक दिव्यानुभूतियों से भरा हुआ था। गैरिक वसनावृत तेजस्वी महात्मा को आज लीलादर्शन हेतु उपस्थित देखकर श्रीठाकुरजी को बड़ी प्रसन्नता हो रही थी। वस्तुतः राधाकृष्ण की दिव्य लीलाओं के दर्शनों के सच्चे पारखी तो ये संतजन ही हैं। इन संतों की भावपूर्ण मुद्राओं को देखकर श्रीठाकुरजी का मन इनकी ओर खिंचता चला गया।

परमपूज्य श्रीराधाबाबा भी रासलीला मंच पर उपस्थित श्रीरासेश्वरी–रासेश्वर के दर्शन कर परम आनन्दित हुए। उन्हें ऐसा भान हुआ मानो उनके हृदयाराध्य ही नेत्रों के समक्ष प्रकट हो गए हैं। वे चकित–विस्मित से लीला अवलोकन करते रहे। इनका हृदय युगलसरकार की अद्भुत छवि का दर्शन करके एक विशेष विमुग्धता व आनन्द का अनुभव कर रहा था। ये बारम्बार स्वरूपों को निहारते रहे एवं अधिकाधिक मुग्धता को प्राप्त होते रहे। कुछ सचेत होकर उन्होंने मन ही मन संकल्प किया कि मुझे जिस चिन्मय स्वरूप का दर्शन हो रहा है, इसे मैं सत्य तभी मानूँगा जब ठाकुर स्वरूप बना यह ब्रजवासी बालक रास के आरम्भ में 'बन्यौ मोर मुकुट नटवर वपु..' यह पद गावे।

मंद मुसकान एवं मधुर भंगिमाए दर्शाते हुए श्रीठाकुरजी ने उसी पद का गान आरम्भ कर दिया, जबकि समाजियों द्वारा दूसरी बंदिश छेड़ी गई थी, जिसे अस्वीकार कर श्रीठाकुरजी ने श्रीराधाबाबा के संकल्पानुसार ही पद गाया–

बन्यौ मोर मुकुट नटवर वपु, कमल नयन श्याम सुंदर,
बाँकी भौंह टेढ़ी पाग, घूंघरवारी अलकैं।।
पीत वसन मोती माल, हिए पदिक कंठलाल,
हंसनि बोलनि गावनि, गंडनि श्रवन कुंडल झलकैं।।
कर पद भूषण अनूप, कोटि मदन मोहन रूप,
अद्‌भुत वदन चन्द्र देखि, गोपी भूलि पलकैं।।
कहे 'भगवान हित रामराय' प्रभु, ठाढ़े रासमण्डल मधि,
राधे सों बाँह जोटि किए हिए प्रेम ललकैं।

इन पंक्तियों को सुनकर पूज्य बाबा भावविभोर हो गए। रास के विश्राम के पश्चात् अत्यन्त कठिनता से वे भावों का संवरण कर सके।

दूसरे दिन ठीक समय पर पूज्य भाईजी के साथ पूज्य राधाबाबा पुनः लीला दर्शनार्थ पधारे। आज भी पूज्य बाबा के मन में संकल्प उठा कि रासबिहारी अमुक पद्धति से मंच पर किसी सुगन्धित पुष्प या चूर्ण को बिखेरते हुए नृत्य करें। इधर मंच का पर्दा उठा और रासनृत्य प्रारम्भ करने से पूर्व ही श्रीठाकुरजी ने पुष्पों की माँग की। बिना किसी पूर्व योजना के पुष्पों की माँग को सुनकर समाजी व स्वामी सभी अचंभित रह गए। शीघ्र ही डलिया भर पुष्पों की व्यवस्था की गई। उन पुष्पों को अत्यन्त कलात्मक रीति से चतुर्दिक बिखेरते हुए श्रीठाकुरजी ने उसी पद्धति से नृत्य प्रारंभ किया। अपने संकल्पानुसार ऐसा होता देखकर पूज्य राधाबाबा आश्चर्य में पड़ गए। इनका रोम-रोम पुलकित हो गया। उन्होंने पुनः सोचा कि आज पद की तीसरी पंक्ति से 'बन्यौ मोर मुकुट..' वाला पद गाएँ। श्रीठाकुरजी के द्वारा वैसा ही किया गया।

अब तो सम्पूर्ण रासलीला के मध्य मन ही मन पूज्य राधाबाबा ने कईबार संकल्प किए और अपने भावों को मूर्त होते देखा। रासबिहारी स्वरूप बने श्रीठाकुरजी पूज्य बाबा के मनोगत भावों के अनुसार ठीक वैसा ही अनुकरण करते जाते थे। यह सब देखकर बाबा स्तब्ध हो गए।

पूज्य बाबा के मानस पटल पर दो वर्ष पूर्व की वह बात प्रकाशित हो गई जो कि इनके प्रति इनके प्राणाराध्य श्रीकृष्ण ने सांकेतित की थी- 'दो वर्ष पश्चात् मैं तुम्हारे निकट रासबिहारी स्वरूप से समुपस्थित होऊँगा। मेरा यह संदेश विस्मृत मत करना।'

उस समय ध्यानकाल में प्राप्त अपने इष्ट के संदेश को सुनकर वे विचार में पड़ गए- 'जैसी लीलामय की इच्छा कर्तुम-अकर्तुम-अन्यथाकर्तुम समर्थ ईश्वर जब जो चाहें जैसा करना चाहें वैसा ही करें। उनकी मात्र बलिहारी है। पर आज क्या उसी भगवद् संकेत की अभिव्यक्ति हो रही है?'

विचारमग्न बाबा के सामने आज सबकुछ प्रत्यक्ष घटित हो रहा था। पूज्य बाबा का रससिक्त मन ठाकुरस्वरूपधारी इस ब्रजवासी बालक के चरणों में लुंठित हो जाना चाह रहा था, तो कभी उसे हृदय से लगा लेने को कर रहा था। अत्यन्त कठिनता से उन्होंने मन के स्वच्छन्द वेग को रोका और रासलीला के विश्राम हो जाने पर अपनी कुटिया में वापस लौट आए। यहाँ आकर पूज्य बाबा कई घंटे निश्चेष्ट अवस्था में पड़े रहे। बाद में कुछ सचेत होने पर उन्होंने अपने निकटस्थ प्रियजन 'कल्याण' सम्पादकीय मण्डल के सहसंपादक श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी से कहा- 'गोस्वामीजी रासमण्डल का जो चिन्मय दृश्य उस समय मेरे नेत्रों के सामने अभिव्यक्त हो रहा था वह सर्वथा वाणी का विषय नहीं है। रासबिहारी स्वरूप बना वह ब्रजवासी बालक इतनी सुन्दर भावभंगिमाएँ प्रस्तुत कर रहा था, जो सर्वथा भावराज्य में ही सम्भव है। मैं जो भी संकल्प कर रहा था, उसे उस बालक द्वारा मूर्त करते देख रहा था। मैं सत्य कहता हूँ कि उस दिन लीला का सारा नियंत्रण सर्वथा मेरी भावना के अनुसार ही हो रहा था। इस तथ्य को मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं जानता है।'

पूज्य राधाबाबा की शैय्या पर चिन्मय सज्जा

जबतक गोरखपुर में रासलीला का आयोजन होता रहा तब तक प्रतिदिन नियम से पूज्य श्रीभाईजी, पूज्य राधाबाबा, श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी एवं पूज्य श्रीभाईजी के परिवारीजन रासदर्शन हेतु वहाँ पधारते रहे। पूज्य राधाबाबा के आने का हेतु कुछ और होता था। वे तो अपने इष्टको ही मानों अपने स्थूल नेत्रों के समक्ष ब्रजवासी बालक के रूप में नृत्य करते पाते थे।

प्रतिदिन रासदर्शन के मध्य इन महापुरुषों के मुखमण्डल पर उत्थित सात्विक भावपूर्ण मुद्राओं व अश्रुपात को देखकर श्रीठाकुरजी को अत्यन्त सुख का अनुभव होता था। अब श्रीठाकुरजी भी पूज्य श्रीभाईजी एवं पूज्य राधाबाबा के प्रति आकर्षित होने लगे थे।

इसीबीच रास के आयोजकों में से एक श्रीठकुरीबाबू ने रासमंडली को घुमाने की दृष्टि से 'गीतावाटिका' ले जाने का विचार बनाया जो कि गीताप्रेस के प्रधान संपादक संत श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (श्रीभाईजी) का निवास स्थान था। यहीं पर सिद्धसंत पूज्य श्रीराधाबाबा भी निवास करते थे। भावप्रतिमा स्वरूप इन विभूतिद्वय की तपस्थली के रूप में 'गीतावाटिका' भक्तों के मध्य सुविख्यात थी। सभी रासमंडली वाले इन संतो के दर्शनार्थ गीतावाटिका पधारे। वाटिका की रमणीयता एवं तपोवनीय दिव्यता ने सभी को आकर्षित कर लिया। वाटिका के पीछे आम, जामुन, इमली, पीपल, अमरुद, कदली आदि वृक्षों की भरमार थी। यहीं पर चतुर्दिक लीची के वृक्षों से आवृत एक जीर्ण-शीर्ण कुटिया में पूज्य श्रीराधाबाबा भजन करते थे।

आसपास ढेरों पक्षी मधुर कलरव करते हुए इधर-इधर फुदकते रहते थे।

अत्यन्त शान्त सघन वनक्षेत्र में स्थित, सात्विक वातावरण वाले इस देवोपम स्थान को देखकर सभी ब्रजवासी बहुत प्रसन्न हुए। श्रीठाकुरजी और श्रीजी स्वरूप भी यहाँ पधारे थे। इन दोनों के आकर्षण का केन्द्र थे पूज्य श्रीराधाबाबा अतः ये दोनों गीतावाटिका आने के बाद बिना किसी को बताए चुपचाप पूज्य बाबा की कुटिया का पता पूछते हुए उसी ओर अग्रसर हो गए। मण्डली के अन्य सदस्य पूज्य भाईजी से मिलने उनके कक्ष की ओर चल दिए।

श्रीठाकुरजी व श्रीजी स्वरूप पूज्य बाबा की कुटिया पर पहुँच गए और खिड़की से झाँककर देखा- पूज्य श्रीराधाबाबा शैय्यापट्ट पर विश्राम की मुद्रा में स्थित हैं। इनके दक्षिण श्रीहस्त में तुलसी माला एवं वामहस्त में गिनती के लिए कमलाक्ष की माला सुशोभित हो रही है। मुख से नामस्मरण चल रहा है एवं नेत्रकोरों से अश्रु प्रवाहित हो रहे हैं। श्रीठाकुरजी को पूज्य श्रीराधाबाबा की यह भावपूर्ण मुद्रा अत्यन्त प्रिय लगी। दोनों ही स्वरूप चकित-विस्मित से यह दृश्य देखते रहे। श्रीठाकुरजी को न जाने क्यों पूज्य श्रीराधाबाबा एकदम अपने आत्मीयजन से लग रहे थे। उन्होंने निःसंकोच भाव से कुटिया के किवाड़ की कुंडी खटखटायी।

किसी साधना-निमग्न साधू को इस प्रकार विक्षेप नहीं करना चाहिए यह भाव इनके मन में आया ही नहीं। हृदय की आत्मीयता व निर्मलप्रेमभाव ने शिष्टाचार रूपी औपचारिकता को पूर्णतः ढक लिया। आहट सुनकर पूज्य बाबा ने कुटिया का द्वार खोला तथा अभ्यागत बाल

अतिथियों को सम्मुख पाकर चकित रह गए। पूज्य बाबा ने दोनों को अपने शैय्यापट्ट पर आसीन कराया और स्वयं भूमि पर बैठ गए। निकटस्थ एक सेवक द्वारा दो सुगन्धित पुष्प माला मँगवाकर उन्हें धारण करवाया और स्वयं किसी अनिर्वचनीय भाव में तल्लीन हो गए। श्रीठाकुरजी एवं श्रीजी स्वरूप भी मंत्रमुग्ध से बाबा की भावदशा का अवलोकन करते रहे। इसमें कितना समय व्यतीत हुआ, इसका किसी को भी पता न चला।

इधर मण्डली के अन्य सदस्य पूज्य श्रीभाईजी के पास बैठे-बैठे इन दोनों स्वरूपों के आगमन की प्रतीक्षा करते रहे। जब यह पता चला कि दोनों श्रीजी व ठाकुरस्वरूप पूज्य बाबा के निकट विराजमान हैं, तब पूज्य भाईजी ने पूज्य बाबा को वहीं आ जाने के लिए संदेश भिजवाया।

संदेश प्राप्त होते ही पूज्य बाबा, श्रीजी व श्रीठाकुरजी के साथ उस ओर चल दिए। श्रीठाकुरजी ने कुछ देर तो उनका अनुगमन किया परन्तु कुछ दूर जाकर चुपके से लौट पड़े और आस-पास बगीचे में घूमकर कुटिया के अंदर आ गए। जहाँ पूर्व की रखी हुई पुष्पमालाओं एवं चयनित पुष्पों के द्वारा पूज्य बाबा के शैय्यापट्ट पर बड़ी कलात्मकता से सुन्दर पुष्पों की संरचना कर दी और पुनः बाहर आकर अपने संगी साथियों में मिल गये। पूज्य श्रीभाईजी ने सभी मंडली वालों का यथायोग्य स्वागत-सत्कार किया और आदरपूर्वक विदा कर दिया।

जब पूज्य श्रीराधाबाबा अपनी कुटिया पर वापस लौटे तो शैय्यापट्ट पर बड़ी कलात्मक रीति से सजायी गई पुष्प संरचना को देखा। उन्हें यह देखकर अति विस्मय हुआ कि यह संरचना उनकी मानसिक भावना में प्रिया-प्रियतम के सेज पर की गई फूलों की संरचना से हूबहू मेल खा

रही थी। इसके किसी भी भाग में अंशमात्र की भी त्रुटि नहीं थी। बाबा ने मन ही मन सोचा कि रासबिहारी स्वरूप में क्या सचमुच अन्तर्यामित्व है जो कि ये मेरे भावराजय की वस्तु को भी जान गए? क्या साधारण ब्रजवासी बालक के वेश में मेरे प्राणाराध्य ही पधारें हैं? इस प्रकार की अनेकों विचार लहरियाँ इनके मानस में कौंध गईं। ये जड़वत् से खड़े उस अपूर्व चिन्मय पुष्प संरचना को देखते रहे।

चपत लगाने का विचार

'कल्याण' पत्रिका के सहसंपादक गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी अतिसय सरलचित्त एवं भक्तहृदय व्यक्ति थे। पूज्य श्रीभाईजी एवं पूज्य बाबा के प्रति वे पूर्ण समर्पित थे। संस्कृत, हिन्दी व अंग्रेजी भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान् होने के साथ-साथ वे अनेकानेक सद्गुणों का भण्डार थे। ये गीतावाटिका के निकट ही निवास करते थे।

इनका श्रीठाकुरजी के प्रति बड़ा ही वात्सल्य भाव था। रासलीला के विश्राम हो जाने पर, ये श्रीठाकुर जी को अपने कंधे पर बैठाकर विश्राम स्थल तक ले जाते थे। श्रीठाकुरजी श्रृंगार धारण किए हुए ही उनके कंधे पर बैठजाते एवं तरह-तरह की चपलता किया करते, कभी पैरों को हिलाते, कभी वंशी बजाने की मुद्रा बनाते तो कभी गोस्वामीजी का शीश सहलाते। इस प्रकार बाल-सुलभ चेष्टाओं के द्वारा श्रीगोस्वामीजी को वात्सल्य सुख प्रदान करते।

एकदिन रास के बाद श्रीठाकुरजी सहित सभी स्वरूपों को श्रीगोस्वामीजी के यहाँ भोजन प्रसाद पाना था। गोस्वामीजी एवं उनकी धर्मपत्नी अत्यन्त हर्षित होकर भाँति-भाँति की पाक-सामग्रियाँ तैयार

कर रहे थे। उनका मन प्रसन्नता से भरा हुआ था। वे मन ही मन इस भाव से भावित थे कि 'आज साक्षात् ब्रज के ठाकुर ही भोजन आरोगने आ रहे हैं। यह ठाकुर स्वरूप ब्रजवासी बालक कोई साधारण नहीं है। इसमें मेरे गुरुतुल्य पूज्य बाबा को अपने हृदयाराध्य इष्टदेव श्रीकृष्ण की स्फूर्ति हुई है। इस बालक का मन कितना पवित्र एवं उज्वल है कि इसके निर्मल चित्त में पूज्य बाबा के मानसिक संकल्प तत्क्षण मूर्त होते गए। मेरा अहोभाग्य है कि जो ऐसे पुण्य पवित्र ब्रजवासी ब्राह्मण बालकों के चरण मेरे घर पर पड़ रहे हैं।' इसी प्रकार अनकों विचार लहरियों में वे डूब-उतरा रहे थे कि इतने में श्रीठकुरीबाबू की बग्घी द्वारा सभी स्वरूप व समाजीगण वहाँ पधारे। आम्रपल्लव से समलंकृत घट को अपने शीश पर रखकर द्वार पर खड़े होकर श्रीगोस्वामीजी ने सभी अतिथियों का स्वागत किया। घर को पहले से ही अत्यन्त मनोहर रूप में सजा दिया गया था। द्वार पर कदली खम्भ व तौरण बाँधे गए थे। जहाँ-तहाँ बंदनवार सजाए गए थे। सभी ब्रजवासी ब्राह्मणों का पाद प्रक्षालनकर शास्त्रीय विधि से स्वस्तिवाचन पूर्वक पूजन किया गया। तत्पश्चात् सुस्वादु भोजन प्रस्तुत किया गया। श्रीगोस्वामीजी ने बड़े ही मनुहार पूर्वक अपने हाथों से सभी को भोजन पवाया। अंत में वस्त्र व माला-चंदन आदि सामग्री यथासामर्थ्य समर्पित करते हुए सभी को विदाई दी।

इधर विदाई हो ही रही थी कि 'श्रीजी' स्वरूप गीतावाटिका में पूज्य श्रीराधाबाबा के पास चले गये। यह बात किसी को भी पता न चली। अधिक समय बीत जाने पर जब उनकी खोज हुई तो मालूम हुआ कि श्रीजीस्वरूप पूज्य बाबा के निकट हैं। इधर वापस अपने डेरे पर पहुँचने

के लिए श्रीठाकुरजी बड़े ही उतावले हो रहे थे। वे बग्घी पर बैठकर 'श्रीजी' की प्रतीक्षा करते रहे।

पूज्य बाबा ने उन्हें अपने निकट बैठा लिया है। अभी और देर हो सकती है, यह सुनकर श्रीठाकुरजी को आवेश हो गया और श्रीकृष्णावेश में कहने लगे– 'श्रीजी क्या बाबा के बाप की हैं जो मेरे बुलवाने पर भी बाबा उन्हें नहीं भेजते।' इनकी तमतमाती हुई अधिकार पूर्वक कही गई वाणी को अन्य लोगों ने भी सुना। बाद में 'श्रीजी' के आ जाने पर सभी मंडली वाले अपने स्थान को विदा हो गये।

श्रीठाकुरजी द्वारा आवेश में कही इस बात को पूज्य राधाबाबा ने बड़ी ही गंभीरता से लिया। इनदिनों वे श्रीराधाजी की सहोदरा छोटी बहन मञ्जुश्यामा के स्वरूप में स्वयं की अवस्थिति मानते थे। पूज्य बाबा अहर्निश इसी भाव में डूबे रहते थे इसीलिए वे इस विचार में पड़ गए कि अपनी सहोदरा बड़ी बहन के ऊपर छोटी बहन से अधिक किसका अधिकार हो सकता है। ठाकुर ने ऐसी बात कैसे कही कि 'श्रीजी' क्या बाबा के बाप की हैं? यदि उन्हें मेरे भावराज्य का पूरा परिज्ञान है तो उन्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। यदि उन्होंने परिहास में ही यह बात कही है तो मैं इसका जवाब उनके कपोल पर चपत लगाकर पूछूँगा। इसका स्पष्टीकरण अवश्य होना चाहिए। इसप्रकार अनेकों भावपूर्ण विचार लहरियों में डूबते हुए पूज्य बाबा ने तुरन्त रासमंडली वालों के ठिकाने पर जाने का निर्णय लिया और पूज्य श्रीभाईजी की कार में बैठकर उनके ठिकाने की ओर रवाना हो गये।

अपने डेरे पर पहुँचकर सभी ब्रजवासी विश्राम कर रहे थे। केवल श्रीठाकुरजी बाहर चबूतरे पर टहल रहे थे। तभी लाल रंग की एक कार

चबूतरे के पास आकर रुकी। वहाँ खड़े कुछ अन्य लोगों ने आवाज लगाई कहा- 'स्वामीजी आए हैं' जिसे सुनकर श्रीठाकुरजी का ध्यान उधर गया। उन्होंने दौड़कर पूज्य बाबा की कार का दरवाजा खोला और अपने हाथों से सहारा देकर उन्हें नीचे उतारा। श्रीठाकुरजी का स्पर्श प्राप्त करते ही पूज्य बाबा रोमाञ्चित हो गए। इतने में श्रीठाकुरजी उनकी ओर देखते हुए तपाक् से बोले-'बाबा! सबसे पहले आप मेरे कपोल पर चपत लगाइए।' श्रीठाकुरजी के मुख से अपने मन की बात सुनकर पूज्य बाबा हत्प्रभ रह गए। वे सोचने लगे कि मेरे मन में यही विचार तो चल रहा था, इसका इन्हें कैसे आभास हो गया। अवश्य ही इस बालक के कलेवर में मेरे हृदयाराध्य श्रीकृष्ण कोई विचित्र लीला-कौतुक कर रहे हैं। इस प्रकार भावना में डूबते-उतराते इनकी देह शिथिल सी हो गई। उन्होंने मन ही मन अपने इष्टदेव को प्रणाम किया और निकट के एक कमरे में कुछ देर विश्राम करने के पश्चात् पुनः गीतावाटिका लौट आये।

उच्छिष्ट प्रसाद का दान

एकदिन की लीला में वनविहार का दृश्य था। बगीचे में इस लीला का आयोजन किया गया था। इससे दृश्य बड़ा ही सुन्दर बन पड़ा था। पूज्य श्रीराधाबाबा भी लीलादर्शन हेतु पधारे थे। इनकी अलौकिक दृष्टि साक्षात् दिव्य वृन्दावन की ही भावना से भावित थी। उन्हें ऐसा ही भान हो रहा था कि साक्षात् नन्दनन्दन मेरे समक्ष क्रीड़ारत हैं, यह वही चिन्मय वृन्दावन है किन्तु मैं अपनी इस भावना को तभी सत्य समझूँगा जब स्वयं रासबिहारी श्रीठाकुरस्वरूप अपना दिव्य उच्छिष्ठ प्रसाद मुझे प्रदान करें।

इधर यह विचार पूज्य बाबा के मानस में कौंधा ही था कि तत्काल रासबिहारीस्वरूप बने श्रीठाकुरजी ने अमरूद के वृक्ष में चढ़कर अमरूद तोड़ा और उसका कुछ भाग खाकर शेष बाबा के उत्तरीय में डाल दिया। अपने मन की बात तत्काल सत्य होती देखकर पूज्य बाबा अति प्रसन्न हुए और तुरन्त उस उच्छिष्ठ प्रसादी अमरूद को खा लिया। उन्हें बाह्य लोकाचार का ध्यान नहीं रहा क्यों कि उनके दृष्टिपथ में नीलमणि श्रीकृष्ण का साक्षात् चिन्मय बिहार ही सम्पन्न हो रहा था। वहीं पर विधि-निषेध की सनातनी मर्यादा को ध्यान में रखने वाले पूज्य संत सेठ जयदयालजी गोयन्दका के अनुगत जन भी उपस्थित थे। उनके द्वारा यह बात पूज्य सेठजी तक पहुँच गई। पूज्य सेठजी इस बात से कुछ अप्रसन्न हुए किन्तु पूज्य बाबा एवं पूज्य श्रीभाईजी से मिलने पर उनकी उच्च भावनिष्ठा को देखते हुए वे संतुष्ट हो गए।

श्रीठाकुरजी के मानस पर इसबार के गोरखपुर प्रवास का अत्यन्त विचित्र प्रभाव पड़ा। सिद्ध सन्तों की रहनी, उनकी भावनिष्ठा, सात्विक दशाएँ, उनका प्रेमपूर्ण सरल निस्पृह व्यवहार आदि को इतने निकट से दर्शन करने का उनका यह प्रथम अवसर था। यहाँ के भक्तिपूर्ण वातावरण के सूक्ष्म परमाणुओं ने श्रीठाकुरजी के निर्मल चित्त में अपनी गहरी छाप छोड़ी।

रीवाँ में रासलीला

एकबार रीवाँ में रासलीला का भव्य आयोजन हुआ। रासमण्डली को 'वैद्यनाथ रामसहाय अग्रवाल' नामक धर्मशाला में ठहराया गया था। रासलीला में श्रीठाकुरजी रासबिहारी स्वरूप बनकर सबका मन मोह रहे

थे। नित्यरास के पश्चात् श्रीठाकुरजी धर्मशाला के ऊपरी मंजिल में स्थित एक कमरे में जाकर विश्राम करते थे। धर्मशाला के मालिक श्रीरामेश्वरप्रसादजी अग्रवाल श्रीठाकुरजी पर विशेष श्रद्धा रखने लगे थे। इनके भावपूर्ण लीलानुकरण, अन्तर्मुखी स्वभाव व एकान्तप्रियता आदि गुणों से वे अत्यन्त प्रभावित थे। श्रीठाकुरजी के सानिध्य लाभ की इच्छा से नित्यप्रति उनकी चरणसेवा किया करते थे।

एकदिन चरणसेवा के अवसर पर वे अपने साथ एक सत्संग की पुस्तिका भी ले गए। इस पुस्तिका के कुछ अंशो को पढ़कर उन्होंने श्रीठाकुरजी को सुनाया। पुस्तिका में वर्णित उपदेशों एवं लीलाओं को सुन एवं पढ़कर श्रीठाकुरजी अत्यन्त प्रभावित हुए। गोचारण सम्बन्धी लीला को पढ़कर उन्हें जिज्ञासा हुई कि जिन्हें इस लीला की अनुभूति हुई है वे महापुरुष कौन हैं ? क्या वे अभी धराधाम पर विद्यमान हैं ? इसके पूर्व श्रीठाकुरजी ने अनेक लीलाप्रसंग सुने थे परन्तु इस पुस्तिका में वर्णित लीलानुभूति तो सर्वथा विलक्षण थी।

श्रीठाकुरजी के मन में उन सन्तश्री का परिचय प्राप्त करने की तीव्र उत्कण्ठा जाग्रत हुई। जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि ये सन्त श्रीधाम वृन्दावन में ही निवास करते हैं तो वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उसी क्षण मन ही मन निश्चय कर लिया कि अब इन्हीं सन्तश्री को अपने गुरु रूप में वरण करेंगे। पुस्तिका में वर्णित गोचारणलीला इसप्रकार थी–

"गोधूलिबेला चहुँओर अलबेला संभ्रम पृथ्वी आकाश धूलि में डूबे हुए हैं। परमोज्वल नीलमणि की अङ्गकान्ति वन बेली सघन छाया को चीरती हुई गो–गोपाल–वृन्द को प्रकाशित करती हुई वन से ब्रजकी ओर स्वच्छन्द फैलती हुई अपनी मधुरता की धूम मचा रही है।"

"हाँ! यह वही नित्यप्रति का सा गोचारण श्रीगोपाललालजी का श्रीबरसाने से होते हुए नन्दगाँव की ओर जाने का है किन्तु एक विचित्र बात यह थी कि श्रीकृष्ण गोपालवृन्द से सुशोभित जब श्रीभानुभवन की गली से होते हुए निकले तो उनकी दृष्टि ऊपर झरोखे में विराजमान सखीवृन्द अलंकृत श्रीराधेजू की दृष्टि से एक होती है। उसीक्षण श्रीराधेजू की वेणी से निकलकर एक नीलकमल का फूल नीचे की ओर जहाँ श्रीकृष्ण गम्भीर गति से जा रहे हैं, गिर पड़ता है परन्तु वह वहीं ठीक श्रीकृष्ण के मुकुट से संस्पर्शित होकर एक श्याम तमाल की डाल में ही अटक गया। जिसे केवल श्रीकृष्ण ने ही देखा था। सब सखा नन्दगाँव की ओर जाती हुई गौवों के साथ तन्मय हैं। श्रीकृष्ण के विशाल कमलनयन श्रीराधाजू के अंजन अंकित नयनों से एक हो जाते हैं। वेणी से निकलकर आनेवाला विशाल दल वाला कमलपुष्प स्वयं उनके हस्तगत हो जाता है। उसे वे अपने मुकुट पर धारण करते हुए प्रेमगम्भीर अस्तव्यस्त स्थिति में अपने को अव्यक्त रखते हुए आगे चल रहे हैं। उस पुष्प का पता लगाने के लिए कुछ सखियाँ झरोखे से नीचे गली में आकर गोपाल-गौ-वृन्द के बीच में से निकलकर संकेत दिलाकर सहर्ष वापस लौटती हैं। श्रीराधा भी इस झरोखे से निकलकर दूसरी दिशा के झरोखे में स्थित होकर सखीवृन्द सहित, घूमकर जाने वाले गो-गोपाल-वृन्द सहित श्रीकृष्ण को देख रही हैं। तभी संकेतवट से आगे जानेवाले इस महाधूर्त ग्वालमंडल ने उस पुष्प को पहचान लिया और तुरन्त श्रीकृष्ण को रोक लिया और कहा श्रीकृष्ण से विनोद करते हुए, अरे! हम लोगों ने अब पहचाना कि हमें गौ चराते हुए छोड़कर वृषभानु बाबा के बगीचे में जहाँ प्रेमसरोवर है, वहीं निकल गया था। ये

उसी सरोवर का कमलपुष्प धारण किया हुआ है मुकुट में। हाँ! हाँ! हमने परख लिया अब तो पकड़े गए कहते हुए जोरों से हँसने लगे। श्रीकृष्ण तो भाव में मतवाले होकर चले जा रहे हैं। जब से उस दृष्टि से दृष्टि एक हुई थी, जब से वह कमलपुष्प मुकुट में धारण किया था तब से वे उसी भाव में थे। ग्वाल-बाल समझ रहे हैं कि ये हमारी बातों से सकुच रहे हैं व प्रेमगम्भीर हो गए हैं। कमलपुष्प के धारण करते ही उनका श्रृंगार और ही रंग में दिखने लगा। सबको लुभाने लगा। उसी मस्ती में नन्दगांव चले आए।"

लीलाप्रसंग को पढ़ने के बाद श्रीठाकुरजी प्राय: उन सन्तश्री के चिन्तन में रहने लगे। उनके दर्शनों की तीव्र लालसा हृदय में धारणकर वे उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

गोरखपुर में पुनः दिव्य लीलानुकरण

रीवाँ से रासमण्डली का गोरखपुर जाने का कार्यक्रम बना। जहाँ 'श्रीकृष्ण निकेतन' नामक स्थान में रासमण्डली को ठहराया गया। यहाँ पर फूलों का एक सुन्दर बगीचा था जहाँ मीठे फलों की वृक्षावलियाँ भी थीं। ब्रजवासी बालकों को यह स्थान अत्यन्त प्रिय लगा। वे उन्मुक्त होकर वहाँ खेला करते। एकदिन श्रीठाकुरजी अपने साथियों के साथ पुष्प-चयन कर अपने पीत परिधान में इकट्ठा कर रहे थे। इसीसमय श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी के साथ पूज्य श्रीराधाबाबा वहाँ पधारे और पुष्पचयन के इस दृश्य को दूर से ही खड़े होकर देखते रहे। श्रीठाकुरजी की स्वच्छन्द क्रीड़ा एवं बाल-सुलभ सौन्दर्य ने उन्हें अन्तर्मुखी कर दिया। उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी।

श्रीठाकुरजी अब उनके लिए साधारण ब्रजवासी बालक नहीं थे। अब तो उनके रूप में बाबा को अपने हृदयाराध्य ही स्फुरित होते थे। कुछ देर बाद भाव संवरण होने पर वे वापस गीतावाटिका की अपनी कुटिया आ गए।

इस बार श्रीराधाबाबा ने कतिपय गम्भीर लीलाओं को चयनित कर अभिनीत करने का आशय जताया। रासमण्डली द्वारा, जिन्हें गोपनीय रूप से सीमित परिवेश में अभिनीत कराया गया। प्रथम लीला 'गुणीजन लीला' थी, जिसके दर्शक चुने हुए मात्र ग्यारह-बारह व्यक्ति ही थे। यह लीला मध्यरात्रि में अभिनीत हुई। पूज्य बाबा ने अपनी भावना के मानचित्र के आधार पर रासमण्डप का निर्माण करवाया। मध्यभाग में प्रियाप्रियतम का सिंहासन विराजित किया गया। मण्डप के चारो ओर दीपक जगमगा रहे थे। समाजियों ने रेशमी वस्त्र एवं सुन्दर साफा (पाग) धारण कर रखा था।

इसीप्रकार बाद में कुछ अन्य लीलाओं का भी अनुकरण कराया गया जिसके दर्शकों के रूप में गिने-चुने इक्कीस व्यक्ति ही थे। लीला प्रारम्भ होने से पूर्व मुख्यद्वार में ताला लगा दिया जाता था। कुल सोलह लीलाओं का मंचन करवाया गया। इस अवधि में वहाँ का वातावरण ऐसी दिव्यता से ओतप्रोत था कि स्वयं रासबिहारीस्वरूप श्रीठाकुरजी, अन्य स्वरूप व समाजीगण लीला के समय तथा पश्चात् भी एक विचित्र भाव दशा का अनुभव करते। श्रीठाकुरजी लीला के बाद कई-कई घण्टों बेभान दशा में अपने बिस्तर में पड़े रहते। उन्हें खाना पीना न सुहाता। लीलाप्रसंगों में मन तन्मय रहता।

पूज्य श्रीराधाबाबा का सत्संकल्प

'महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्यो अमोऽघश्च'। महापुरुषों का सङ्ग दुर्लभ अगम्य एवं अमोघ होता है। किसी भाग्यवान को ही ऐसे संतों का दर्शन व संग प्राप्त होता है। पूर्व सुकृत के फलस्वरूप यदि किसी को उनके दर्शन प्राप्त भी हो जाएँ तो भी उनके प्रति हृदय में श्रद्धा एवं समर्पण का भाव नहीं हो पाता। परन्तु ऐसे महापुरुषों के प्रति यदि एकबार श्रद्धा उदित हो गई फिर तो साधक के आत्यन्तिक कल्याण में कोई सन्देह नहीं रह जाता। वे महापुरुष अपनी कृपादृष्टि से उसे पात्र बना देते हैं। परमपूज्य श्रीराधाबाबा ने श्रीठाकुरजी के अंत:करण की निर्मलता को झाँककर देख लिया था। पूज्य बाबा के मन में श्रीठाकुरजी के प्रति एक सत्संकल्प उठा–'जिस बालक की देह में मुझे अपने हृद्‌याराध्य के दर्शन हुए हैं। कितना अच्छा हो कि यह भविष्य में भी भगवदोन्मुखी बना रहे। अभी इसमें किञ्चिन्मात्र भी सांसारिकता का स्पर्श नहीं हुआ है।' पूज्य बाबा के द्वारा किये गये इसी सत्संकल्प के प्रभाव से श्रीठाकुरजी शीघ्र ही वैराग्यपथ पर आरूढ़ हो गए।

******

४ बाबा श्रीबनवारीशरण को दिव्यानुभूति

बाबा श्रीबनवारीशरणजी एक तितिक्षु एवं विरक्त महात्मा थे। अपने साधु जीवन के प्रारम्भ में इन्होंने नागा महात्माओं का संग किया था। उनके साथ झुंड में जहाँ-तहाँ विचरण किया करते थे। ग्रीष्मकाल में पंचाग्नि का सेवन करते थे तो शीतऋतु में ठंडे जल में पड़े रहा करते थे। संयोगवश एकबार इनको रासलीला के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इससे प्रभावित होकर ये श्रीरासबिहारी सरकार की सेवा में रहने लगे। रासबिहारीस्वरूप श्रीठाकुरजी के प्रति इनकी इष्टदेव की भावना हो गई थी। श्रीठाकुरजी की स्वरूपायी में बाबा श्रीबनवारीशरणजी को अनेक अनुभूतियाँ हुई। जिनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है-'एकबार बाबा श्रीबनवारीशरणजी ब्रह्ममुहूर्त में उठकर अपने इष्ट की मानसिक सेवा कर रहे थे। उसी क्रम में वे मानसिक भावना द्वारा अपने इष्ट को जगा रहे थे। अपनी मानसिक भावना में ये श्रीठाकुरजी का ही इष्ट रूप से चिन्तन किया करते थे। उस दिन इनकी मानसिक भावना इतनी प्रगाढ़ हुई कि श्रीठाकुरजी जो भीतर कक्ष में शयन कर रहे थे, अन्दर से किवाड़ खोलकर अर्धनिद्रा की अवस्था में डगमगाते हुए बाहर आ गए और वहीं बिछी हुई दरी पर पुनः सो गए। बाबा श्रीबनवारीशरणजी ने जब अपनी आखें खोली तो उन्होंने ठाकुरजी को अपने निकट देखा। वे चौंक उठे कि श्रीठाकुरजी बाहर कैसे आ गए? कुछ देर बाद श्रीठाकुरजी की नींद टूटी तो उन्होंने श्रीबनवारी बाबा को डाँटते हुए कहा-'तुम मुझे यहाँ क्यों ले आए, क्या मुझे सोने नहीं दोगे?'

यह सुनकर श्रीबनवारी बाबा ने दीनतापूर्वक कहा कि सरकार आप स्वयं ही यहाँ आए हैं। मैं आपको यहाँ कैसे लाता! आपके कक्ष के किवाड़ तो अन्दर से बंद थे! आप स्वयं ही चलकर यहाँ आए हैं।

बाद में अपनी मानसिक सेवा वाली बात उन्होंने श्रीठाकुरजी से कह दी कि मैं मानसिक भावना में इष्ट की मूर्ति के रूप में आपका ही ध्यान करता हूँ और उसी रूप से मैं अपनी नित्य की सेवा में अपने इष्ट को जगा रहा था पर मुझे क्या पता था कि उसके प्रभाव से आप जागकर यहाँ आ जाएँगे! श्रीठाकुरजी इनके चिन्मयचिन्तन एवं प्रगाढ़ भक्तिभावना को देखकर बहुत प्रभावित हुए।

इसीप्रकार एकबार रासलीला के मध्य रासबिहारीस्वरूप बने श्रीठाकुरजी को बड़ी जोर की प्यास लगी। उन्होंने श्रीतपसीजी से जो उनकी सेवा में थे, जल माँगा। बाबा श्रीबनवारीशरणजी उस समय बुखार से पीड़ित होने के कारण लीला स्थल से दूर अपने कक्ष में विश्राम कर रहे थे। अचानक उनको ऐसा आभास हुआ मानो श्रीठाकुरजी उनसे पानी माँग रहे हैं। उन्होंने तत्क्षण मानसिक भावना में ही श्रीठाकुरजी को जल से भरा गिलास लाकर दिया, जिसे श्रीठाकुरजी ने पी लिया। इधर प्रत्यक्ष रूप से मंच पर उपस्थित श्रीठाकुरजी को जब जल लाकर दिया गया तो श्रीठाकुरजी ने यह कहते हुए जल लौटा दिया कि अब मेरी प्यास बुझ गई है। बाद में एक चर्चा में श्रीबनवारी बाबा ने श्रीठाकुरजी को बताया-'मुझे अपने कक्ष में लेटे-लेटे अचानक ऐसा लगा कि आप प्यासे हैं तब मैंने मानसिक भावना में ही आपको जल पिला दिया था।' उनकी बात सुनते ही श्रीठाकुरजी समझ गए कि श्रीबनवारीशरण बाबा द्वारा की गई मानसिक सेवा का ही यह चमत्कार

था जो उनकी प्यास अचानक बुझ गई।

ऐसी ही एक घटना उस समय की है जब श्रीठाकुरजी स्वरूपाई से उतर चुके थे और श्रीधाम वृन्दावन में रहकर भजन किया करते थे। उनदिनों बाबा श्रीबनवारीशरणजी श्रीगोवर्धनधाम में रहकर भजन कर रहे थे। एकदिन श्रीठाकुरजी को वृन्दावन में भजन करते समय अचानक उच्चाटन हुआ। वे बिना किसी पूर्व योजना के खिंचे-खिंचे श्रीगिरिराज गोवर्धन की ओर चल पड़े। वहाँ वे सीधे श्रीबनवारी बाबा की कुटिया पर गए। जाकर देखा कि श्रीबनवारी बाबा को बुखार का प्रकोप है और तीन दिन से उन्होंने कुछ भी नहीं खाया है। अत्यन्त दुर्बल हो गए हैं। ठाकुरजी को देखते ही वे उनसे लिपट गए और फफक-फफककर रोने लगे। अपना सारा हाल बताते हुए उन्होंने कहा कि मैं निरन्तर आप की ही याद कर रहा था। श्रीठाकुरजी ने उनका यथोचित उपचार कराया।

श्रीठाकुरजी के प्रति इनकी अनन्यनिष्ठा व प्रगाढ़ भावना का परिणाम था कि श्रीठाकुरजी इनकी मानसिक भावना से प्रत्यक्षतः प्रभावित हो जाते थे। ठाकुरजी भी इनके प्रति वैसा ही सम्मान व प्रेमभाव रखते थे। एकबार किसी व्यक्ति के द्वारा यह सुनकर कि श्रीठाकुरजी अब पूज्य श्रीमहाराजजी (पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराज) की नकल करने लगे हैं, इन्होंने कहा कि मैं आपके सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि मेरे सामने उनकी निन्दा न करिये। मेरी टूटी-फूटी सी श्रद्धा है, इसीसे मेरा काम होना है। बस आप कृपा कीजिए कि मेरी यह श्रद्धा बनी रहे।

श्रीठाकुरजी के प्रति इनकी अनन्य निष्ठा का एक अन्य उदाहरण

निम्नलिखित हैं-

एकबार बाबा बनवारीशरणजी, श्रीठाकुरजी के साथ गीतावाटिका गोरखपुर गए हुए थे। पूज्य श्रीराधाबाबा को जब यह ज्ञात हुआ कि ये साधु श्रीठाकुरजी के प्रति साक्षात् ठाकुर की भावना रखते हैं तब वास्तविकता को जानने के उद्देश्य से पूज्य बाबा ने उन्हें अपने निकट बुलवाया और कहा-'देखिए प्रभु सच्चिदानन्दघन आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण मायाराज्य से परे की वस्तु हैं। उनका स्वरूप परमचिन्मय त्रिगुणातीत है। किसी मायिक कलेवर में उसकी अवधारणा करना ठीक नहीं है। भगवान् का वही नित्य चिन्मय स्वरूप ही सदा चिन्तनीय है। आप ठाकुर घनश्याम की सेवा करते हैं, उनमें आदर बुद्धि रखते हैं यह बात तो ठीक है परन्तु स्वरूपाई से उतरने के बाद भी आपकी उन्हें साक्षात् भगवद्स्वरूप मानने की भावना मुझे नहीं जँचती।'

पूज्य श्रीराधाबाबा की बात सुनकर बाबा श्रीबनवारीशरणजी ने अपना मत स्पष्ट करते हुए कहा-'पूज्यश्री ! आपकी बात बिलकुल ठीक है किन्तु ठाकुर घनश्यामजी के सम्बन्ध में मेरी मान्यता कुछ और ही है। ये साधारण ब्रजवासी बालकों से बहुत अलग हैं। इनमें मैने अनेक बार दिव्य आवेश देखा है। चाहे ये श्रृङ्गार धारण किए हों अथवा सहज बिना श्रृङ्गार के हों मैने कभी भी इनमें लौकिक जगत के प्रति आकर्षण नहीं देखा। जैसे मन्दिर की मूर्ति में प्रतिष्ठा एकबार ही की जाती है और एकबार हो गयी सो हो गई, ऐसे ही एकबार मुकुट धारण होने के बाद तो वहाँ ठाकुर प्रतिष्ठित हो ही गए। इनके मुख से निकली बात सदा सत्य होती है। पूज्य बाबा महाराज! मैं स्वयं अपने जीवन को देखता हूँ कि इनके सम्पर्क में आने के बाद मेरी भजननिष्ठा दृढ़ हुई है। इसके अलावा

एक बात और है वह ये कि जब ईश्वर सर्वव्यापी हैं और वे पाषाण प्रतिमा में भी प्रगट हो सकते हैं तो ठाकुर घनश्यामजी तो चेतन हैं, मेरे लिए क्या श्रीकृष्ण ठाकुर घनश्यामजी में स्फुरित नहीं हो सकते ? फिर इसमें संशय क्यों ? यदि यह भी माना जाए कि मेरी इस भावना में कोई त्रुटि है तो भी रासबिहारी स्वरूप की मुझे जो इस शरीर से साक्षात् सेवा प्राप्त हो रही है उस लाभ से मैं वंचित क्यूँ रहूँ ? पूज्यपाद यदि इसमें भी कोई अनुचित बात समझते हों तो मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हूँ।'

पूज्य श्रीराधाबाबा श्रीबनवारीशरणजी के तर्क को सुनते रहे तत्पश्चात् कुछ क्षण मौन रहकर वे बोले कि आपकी उज्वल निष्ठा को देखते हुए मुझे आपकी उपासना में कोई दोष नहीं दिखता। पूज्य बाबा के शब्दों से श्रीबनवारीबाबा को अत्यधिक संतोष हुआ।

एकबार श्रीठाकुरजी अपने नित्य संध्या-वंदन के पश्चात् श्रीतुलसीजी को जल अर्पित कर रहे थे, उसी अवसर पर बाबा बनवारीशरणजी ने श्रीठाकुरजी से अति विनयपूर्वक प्रार्थना करते हुए एक वचन देने को कहा कि वे आजीवन उन्हें अपने साथ ही रखें। श्रीठाकुरजी ने श्रीतुलसी माता को जल अर्पित करते समय उन्हें यह आश्वासन दिया कि वे उन्हें अपने से कभी अलग नहीं करेंगें, आजीवन उन्हें अपने साथ रखेंगे। पीछे-पीछे जब श्रीठाकुरजी विरक्त होकर परमपूज्य गुरुदेव श्रीबालकृष्णदासजी महाराज के श्रीचरणाश्रय में आ गए, तब बाबा श्रीबनवारीशरणजी भी पूज्यश्री महाराजजी के शरणापन्न हो गए।

इनके अलावा श्रीठाकुरजी के अन्य रासप्रेमी भक्त श्रीरामदासजी, श्रीगोवर्धनदासजी, श्रीसीतारामजी, श्रीरामसेवकजी, श्रीतपसीजी

श्रीविमलनारायणजी, श्रीप्रमिलाजी आदि भी पूज्य महाराजजी के चरणाश्रय में आ गए।

श्रीबनवारीशरणजी नित्यप्रति ब्रह्ममुहुर्त में तीन बजे उठकर भजन के लिए बैठ जाते थे। इनकी नेत्रज्योति वृद्धावस्था में पूरी तरह से खो गई और शरीर भी रुग्ण हो गया था फिर भी क्षत्रिय शरीर होने के कारण ये कभी भी दीनता को प्राप्त नहीं हुए। इनका जीवन पवित्र था। ये डटकर भजन करते थे। इनके पुराने समय के सङ्गी श्रीश्री१०८ सुदामादासजी महाराज, सन्त श्रीगणेशदासजी भक्तमाली महाराज जैसे वीतरागी महात्मा थे। ये सभी लोग एक संग बैठकर इष्ट गोष्ठी किया करते थे। इन्हे 'श्रीकृष्णकर्णामृतम्' के श्लोक कंठस्थ थे एवं पूज्यश्री महाराजजी के सत्संग की भी इन्हें अच्छी समझ थी। जीवन के अन्तिम समय में जब ये अत्यन्त रुग्ण रहा करते थे तब श्रीठाकुरजी इनकी हर सम्भव सँभाल किया करते थे। इनके पास बैठकर बालवत् विनोद किया करते, जिससे श्रीबनवारीशरणजी बाबा अपना कष्ट भूल जाते थे। अन्तिम समय तक दृष्टि न होने पर भी बाबा श्रीबनवारीशरणजी बिना किसी सहारे के अपनी दैनिक क्रिया करते रहे। इनका नियमादि यथारूप चलता रहा। श्रीवेणुविनोदकुञ्ज में ही इन्होंने अपने जीवन की अन्तिम श्वास ली।

*****

५

कलकत्ते में रास

सन् १९४६-४७ की बात है देश के विभाजन की प्रक्रिया शुरू हो गई थी। हिन्दुओं और मुस्लिमों के बीच द्वेष व हिंसा का दौर चल रहा था। खूनी दंगो की दहशत से लोग घर-बार छोड़कर सुरक्षित स्थानों को पलायन कर रहे थे। दंगे की लपटों से कलकत्ता शहर भी जल रहा था।

उन दिनों बेलूर (कलकत्ता) की एक कम्पनी नेशनल आयरन एण्ड स्टील के मालिक सेठ श्रीबद्रीदास अग्रवाल के यहाँ रासलीला का आयोजन चल रहा था। सेठ बद्रीदास ने पहली बार मात्र मनोरंजन की दृष्टि से ही रासलीला करवाई थी। उस लीला में श्रीठाकुरजी ने विनोदी सखा 'मनसुखा' का अनुकरण किया था। लीला का श्रीबद्रीदासजी पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे रास के प्रेमी हो गए। अब तो इनका नियम ही हो गया कि प्रतिवर्ष कलकत्ते में रासलीला करवाना। इनकी एक बस रासमण्डली को लाने ले जाने के लिए ही प्रयोग में ली जाती थी।

इसबार शहर का वातावरण कुछ बिगड़ा होने से उन्होंने रास का आयोजन अपने निवास की ऊपरी मंजिल में रखा था। रासलीला निर्विघ्न रूप से चल रही थी कि अचानक एकदिन जब रासमण्डली के स्वरूप अपने विश्रामस्थल को जाने के लिए वाहनों पर बैठ रहे थे, श्रीठाकुरजी बाल स्वभाववश पास खड़ी एक टैक्सी में जा बैठे। उन्होंने यह सोचा कि नित्य की भाँति यह टैक्सी भी लाने ले जाने वाले वाहनों में से एक है। वे उसमें निश्चिन्त होकर बैठे रहे। कार का ड्राइवर उन्हें लेकर चलता बना। इधर ठिकाने पर अन्य स्वरूपों के साथ श्रीठाकुरजी

को न पाकर सभी को चिन्ता हुई। खोजबीन करने पर उस कार का पता लग गया। यह सुनकर कि कार ड्राइवर मुस्लिम समुदाय का है सभी घबरा गए।

सेठ श्रीबद्रीदासजी ने तत्काल मुस्लिम समुदाय के अपने एक मित्र से सम्पर्क साधा, जो कसीदेकारी व जरी का कार्य करते थे और रासलीला हेतु पर्दे व पिछौरी आदि तैयार करते थे। ये सज्जन अपने समुदाय के बीच अच्छा-खासा प्रभाव रखते थे। इन्होंने रातो-रात श्रीठाकुरजी का पता लगा लिया। भगवाद् प्रेरणा से अपहरणकर्ता का मन भी परिवर्तित हो गया और देर रात बाद श्रीठाकुरजी अपने ठिकाने पर सुरक्षित पहुँचा दिए गए। इसप्रकार एक बड़ी दुर्घटना होते-होते टल गई।

इसी प्रवास में एकबार नौकाबिहार लीला का आयोजन भी हुआ जिसमें अत्यन्त अलौकिक चमत्कारपूर्ण घटना घटित हुई। श्रीगंगाजी के विशाल गर्भ में नौका पर लीला प्रारम्भ हुई। जिस नौका में श्रीठाकुरजी व श्रीजी स्वरूप विराजमान थे, उस नौका में एक छिद्र हो गया और उसमें पानी भरने लगा। अन्य सभी नौकाएँ काफी दूरी पर थीं। मल्लाह ने घबराकर श्रीबद्रीबाबू को सूचना दी की नौका में पानी भरता जा रहा है, किनारा दूर है, क्या करें। नाविक प्रयासपूर्वक पानी उलीच-उलीच कर बाहर फेंक रहा था। इधर सेठ बद्रीदासजी घबराने लगे और स्वयं को धिक्कारने लगे कि हाय! हाय! मुझ पापी के कारण इन सब ब्रजवासियों के प्राण जाएँगे। समाजी भी घबरा गए। समाज गायन तुरन्त बंद हो गया। श्रीबद्रीदासजी ने श्रीठाकुरजी से प्रार्थना की। अचानक आवेशित होते हुए श्रीठाकुरजी बोले-'निश्चित होकर लीला

होने दो!' उनके ऐसा कहते ही फिर से समाज गान होने लगा किन्तु सबके चेहरे मुरझाए हुए थे। हृदय में धुकधुकी बढ़ गई थी; परन्तु श्रीठाकुरजी के मुख पर प्रसन्नतायुक्त हँसी जगमगा रही थी। वे आनन्द से सिंहासन पर विराजमान थे। इतने में गंगाजी की एक लहर ऐसी उठी जिससे नौका किनारे आ लगी। इस दौरान नौका में काफी पानी भर चुका था। श्रीठाकुरजी ने सबसे कहा कि आप सब लोग नौका से शीघ्र उतर जाइए। सभी झटपट उतर गए और मृदंग आदि सभी साज भी उतार लिए गये। श्रीठाकुरजी वैसे ही सिंहासन पर बैठे रहे। श्रीबद्रीबाबू ने दौड़कर आपको अपनी भुजाओं में उठा लिया और नौका से बाहर ले आये। सभी के बाहर आते ही नौका जलमग्न हो गई और कहाँ गई पता ही न चला। इस आश्चर्यजनक घटना से सभी की श्रीरासबिहारी सरकार पर श्रद्धा बढ़ गई।

इन्ही दिनों परम पूज्य सन्त श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) एवं पूज्य श्रीराधाबाबा का कलकत्ता आगमन हुआ। ये दोनों सन्त श्रीज्वालाप्रसाद कानौड़ियाजी के मकान में ठहरे हुए थे। इन महान विभूतियों के गरिमापूर्ण व्यक्तित्व से श्रीठाकुरजी पहले से परिचित थे ही। दोनों ही सन्तों का इनपर विशेष अनुग्रह भी था। श्रीठाकुरजी अत्यन्त आतुरतापूर्वक इन सन्तद्वय से भेंट करने के लिए इनके प्रवास स्थान पर पहुँचे। पूज्य श्रीभाईजी, श्रीठाकुरजी से अत्यन्त स्नेहपूर्वक मिले और उन्हें पूज्य श्रीराधाबाबा के पास लिवा ले गए। पूज्य बाबा श्रीठाकुरजी को देखकर अति प्रसन्न हुए। श्रीठाकुरजी को अपने पास बैठा लिया तत्पश्चात् अपना मौन शिथिल करते हुए उनके भावी जीवन को लक्ष करते हुए, कई घण्टे एकान्त में चर्चा की। श्रीठाकुरजी को

विदा कर देने के बाद उन्होंने पूज्य भाईजी से अपना संकल्प बताया कि ठाकुरजी को किसी भी प्रकार से रासमण्डली के वातावरण से बाहर निकाला जाए और उचित शिक्षा आदि दिलाई जाए और ऐसी व्यवस्था की जाए कि भविष्य में इन्हे किसी प्रकार की कोई कठिनाई न हो और ये आदर्श जीवन व्यतीत कर सकें।

श्रीठाकुरजी की संगीत अभिरुचि

रासलीलाओं में समाजियों का विशेष स्थान है। गायन-वादन में प्राय: ध्रुपद-धमार आदि विभिन्न पद्धतियों का प्रयोग होता है। स्वामी व समाजियों द्वारा शास्त्रीय एवं लोकसंगीत में निबद्ध ब्रज के प्राचीन रसिकों की वाणियों का सुललित स्वरों में गायन किया जाता है। सह-वादकों के रूप में हारमोनियम, पखावज, तबला एवं सारंगी के कुशल वादकों की प्रधानता रहती है। उनदिनों सारंगी वादक संगत के साथ-साथ गायन भी किया करते थे।

श्रीठाकुरजी गायन में स्वभावत: पटु थे, फिर भी उन्होंने संगीत की विधिवत् शिक्षा ग्रहण की। अमृतसर के दुर्गियाना मन्दिर के रागी पण्डित श्रीमहादेवजी मिश्र एवं ब्रज के प्रसिद्ध कीर्तनिया व निपुण सारंगी वादक श्रीहरिवल्लभ जी से इन्होंने विधिवत् शास्त्रीय रागें सीखी थीं।

श्रीठाकुरजी ने अपनी तीव्र धारणाशक्ति के बल पर दो वर्षों का पाठ्यक्रम मात्र छ: माह में ही कंठस्थ कर लिया था और लगभग ढ़ाई-सौ राग-रागिनियों में निपुणता प्राप्त कर ली थी। कुछ रागें श्रीठाकुरजी को सिद्ध हो गई थीं। वे रागें गायन के समय मानों मूर्तिमान

हो जातीं और श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते।

गायन के साथ-साथ श्रीठाकुरजी का रुझान वादन की ओर भी था। इस हेतु इन्होंने सारंगी वाद्य को चुना। लगभग चालीस तन्तुओं के इस प्राचीन साज में स्वरों को श्रुतियों के आधार पर मिलाना पड़ता है जो कि अत्यन्त कठिन कार्य होता है किन्तु श्रीठाकुरजी शीघ्र ही इसके सभी अङ्गो से परिचित होकर एक निपुण सारंगी वादक बन गए। श्रीठाकुरजी को सारंगी की शिक्षा पण्डित हरिवल्लभजी शर्मा के द्वारा प्राप्त हुई। भावप्रवण संगीत में सारंगी वाद्य तो मानो प्राण घोल देता है। सरस हृदय श्रीठाकुरजी इसका नियमित अभ्यास करने लगे। श्रीधाम वृन्दावन के एक प्रसिद्ध रासाचार्य स्वामी लक्ष्मणजी महाराज श्रीठाकुरजी के सारंगीवादन की प्रशंसा करते हुए कहते कि घनश्याम के हाथ में बड़ी मिठास है।

रासलीला के विश्राम हो जाने के बाद श्रीठाकुरजी कई-कई घण्टे परिश्रमपूर्वक सारंगी का अभ्यास करते और इसमें इतने तल्लीन हो जाते कि अँगुलियों से रक्त बहने लगता था। इस अभ्यास से इन्हे काफी थकान हो जाती थी। इस प्रकार श्रीठाकुरजी ने अपनी संगीत साधना में पर्याप्त श्रम किया।

*****

६ वैराग्य का उन्मेष

कनखल हरिद्वार की बात है। एक प्रसिद्ध आश्रम में रासलीला का आयोजन था। प्राचीन ऋषि महर्षियों की अत्यन्त प्रिय इस तपोभूमि में आते ही श्रीठाकुरजी एकदम अन्तर्मुख हो गए। इनकी मनःस्थिति में परिवर्तन होने लगा। लीला की समाप्ति के बाद वे चुपचाप अपने कक्ष में चले जाते और गम्भीर विचारों में डूब जाते। वैराग्य के लक्षण इनमें दृष्टिगोचर होने लगे। इन्हें सारा संसार उजाड़ सा दिखाई देता था। ये किसी भी व्यक्ति को देखते तो वहाँ हड्डियों का ढाँचा दिखाई देता। वृक्ष की हरी पत्तियाँ सूखी व जालीदार दिखाई देतीं। इनका खाना-पीना बिलकुल छूट गया।

रासमण्डली के स्वामी इनके बड़े भाई श्रीरामजी को चिन्ता हो गई। उन्होंने तुरन्त गोरखपुर पूज्य श्रीराधाबाबा के पास समाचार भिजवाया। पूज्य बाबा ने जवाब भेजा कि चिन्ता की कोई बात नहीं है, मेरा ही संकल्प काम कर रहा है।

एकदिन अचानक श्रीठाकुरजी अपने ठिकाने से कहीं दूर चले गए। संध्या का समय हो आया फिर भी ये वापस नहीं लौटे। सेवक बाबा श्रीबनवारीशरणजी को समझते देर न लगी। उन्होंने श्रीठाकुरजी की मनःस्थिति को पहले ही भाँप लिया था। उनके मुख पर जागतिक उपरामता व वैराग्य के भाव स्पष्टतया परिलक्षित होते देखे थे। 'निश्चित ही ये कहीं एकान्त में जा बैठे हैं' ऐसा विचार करते हुए वे उनकी खोज में लग गए। आश्रम से कुछ दूरी पर उन्होने एक चट्टी

(पहाड़ी) पर श्रीठाकुरजी को विचारमग्न अवस्था में पाया। बहुत प्रकार से समझा-बुझाकर एवं सन्तों व भक्तों के दृष्टाँत सुनाकर बाबा बनवारीशरण जी श्रीठाकुरजी को वापस ला पाए।

श्रीठाकुरजी के मन में रासमण्डली के प्रति अरुचि हो गई थी। मण्डली का आन्तरिक वातावरण उनके स्वभाव के विपरीत था। अवसर मिलते ही वे समूह से अलग हटकर एकान्त में जा बैठते।

स्वरूपाई से उतरना

सोलह वर्ष की अवस्था में किशोरता का पदार्पण हो जाने से बालकों में प्रायः उम्र झलकने लगती है। उनकी स्वाभाविक बालसुलभ सुकुमारता में कुछ न्यूनता आ जाती है। कंठ में स्वर-भंगादि दोष आने लगते हैं। इन सभी कारणों से रासलीला की गरिमा के अनुरूप उन्हें स्वरूपाई से उतार दिया जाता है। उसके पश्चात प्रायः स्वरूप बालक गायन-वादन, श्रृंगार, साज-सज्जादि में सहयोग देने लगते हैं अथवा अन्य जीविकोपार्जन सम्बन्धी कार्यों में लग जाते हैं। रासमण्डली की इसी परम्परा के क्रम में श्रीठाकुरजी की स्वरूपाई भी उतरी।

स्वरूपाई से उतरने के बाद श्रीठाकुरजी को व्यक्तिगत सृजनात्मक कार्यों हेतु पर्याप्त समय मिलने लगा इनकी दिनचर्या प्रायः तीन भागों में बंट गई। प्रथम अंश तो भगवद् अर्चना एवं नित्य-नैमित्तिक कर्म में बीतता। इसके अन्तर्गत वे अपने सेवित विग्रह लड्डू गोपालजी की विधिवत् सेवा करते, स्नान, चंदन-पुष्प, भोगादि समर्पित करते थे। संध्या गायत्री, श्रीतुलसी अर्चन एवं नित्य पाठ का क्रम भी इस प्रथम चरण में सम्मिलित रहता था। दिनचर्या का द्वितीय भाग बाबा

बनवारीशरण जी के संग श्रीरामचरित मानस, भक्तमाल एवं महावाणी आदि भक्ति ग्रन्थों के स्वाध्याय में बीतता। शेष समय ये अपनी संगीत साधना में बिताते थे।

अब इनके व्यवहार में विशेष गम्भीरता आ गई थी। हंसी-मजाक व व्यर्थ की वार्ता करने वालों से दूर रहने लगे। परमपूज्य श्रीउड़ियाबाबा, परमपूज्य गयाप्रसाद जी महाराज, परमपूज्य श्री भाईजी (श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार), परमपूज्य श्रीराधाबाबा, पूज्या माँ आनन्दमयी जैसे सिद्ध महापुरुषों के दर्शनों का प्रभाव यह हुआ कि इनके हृदय में छिपे भक्ति के संस्कार जाग उठे।

आत्मनिर्भरता, दृढ़निश्चय आदि सद्गुणों ने भी सहजता से इनके हृदय में स्थान बना लिया। बालपन से ही इनमें पारिवारिक ममता-मोह का प्रभाव नहीं था और जागतिक भोग-विलास की सामग्रियों के प्रति भी इनमें विशेष आकर्षण नहीं था। कभी-कभी ये कौतूहलवश किसी वस्तु का संग्रह करते कि देखें इसमें ऐसी क्या विशेषता है। बाद में उसमें कोई विशिष्टता न देखकर दूसरों को दे दिया करते। सोने की पॉलिश वाली कीमती घड़ी, पारकर पेन, सोने की चैन, हार, कानों में पहनी जाने वाली हीरे की लौंग, अच्छे से अच्छा रेशमी वस्त्र आदि न जाने कितनी वस्तुएँ जो उन्हें भेंट में प्राप्त होती थीं उसे दूसरों को दे देते थे।

एकदिन श्रीठाकुरजी के अग्रज श्रीश्रीराम जी के पास गीतावाटिका गोरखपुर से श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी द्वारा लिखित पूज्य भाईजी का संदेश आया, जिसमें श्रीठाकुरजी के भावी जीवन को लेकर एक प्रस्ताव था। उसमें लिखा गया था, श्रीरामजी पूज्य श्रीभाईजी ठाकुर घनश्याम को विद्याध्ययन हेतु कलकत्ते में पंडित श्रीलक्ष्मीनारायण जी वैद्य के

यहाँ भेजना चाहते हैं। आशा है कि आप इसे अस्वीकार नहीं करेंगे।" पूज्य भाईजी की ऐसी इच्छा जानकर श्रीश्रीरामजी श्रीठाकुरजी को लेकर कलकत्ता रवाना हो गए और आदरणीय श्रीलक्ष्मीनारायण जी वैद्य के हाथों श्रीठाकुरजी को सौंप दिया।

श्रीलक्ष्मीनारायणजी वैद्य कलकत्ता शहर के एक सुप्रतिष्ठित वैद्यराज थे। कलकत्ते में इनकी बहुत बड़ी आयुर्वेदिक फार्मेसी थी। वैद्यक में निपुणता के साथ-साथ ये संस्कृत के भी अच्छे विद्वान थे। ये एक धर्मपरायण व्यक्ति थे। पूज्य श्रीभाईजी के प्रति इनकी बड़ी निष्ठा थी। पूज्य भाईजी की आज्ञा का यथावत् पालन करते हुए इन्होंने श्रीठाकुरजी को अपने यहाँ विद्याध्ययन हेतु रख लिया।

श्रीठाकुरजी की वैद्यक शिक्षा

श्रीठाकुरजी नित्यप्रति श्रीवैद्यजी के साथ उनके औषधालय में जाने लगे और उनके निर्देशानुसार वैद्यकी शिक्षा ग्रहण करने लगे। कलकत्ते जैसे विशाल एवं भीड़भाड़ से भरे नगर में, रासमंडली से अलग किसी गृहस्थ के यहाँ रहने का श्रीठाकुरजी के लिए यह एक नवीन अनुभव था। उन दिनों पूज्य श्रीभाईजी के दामाद आदरणीय श्रीपरमेश्वरप्रसाद जी फोगला वहाँ पर व्यापार किया करते थे। उन्होंने श्रीठाकुरजी को पहनने के लिये, शहर के अनुरूप वेशभूषा हाफ पैन्ट और कमीज बनवाकर दे दी। इनके कहने से श्रीठाकुरजी अब धोती कुर्ता के स्थान पर उन वस्त्रों को पहनने लगे। श्रीठाकुरजी को यह परिवर्तन प्रारंभ में बहुत ही असहज लगा लेकिन वे अपने को उस दिनचर्या में ढालने का प्रयास करने लगे।

गोरखपुर में पूज्यभाईजी को जब यह समाचार मिला कि ठाकुरजी

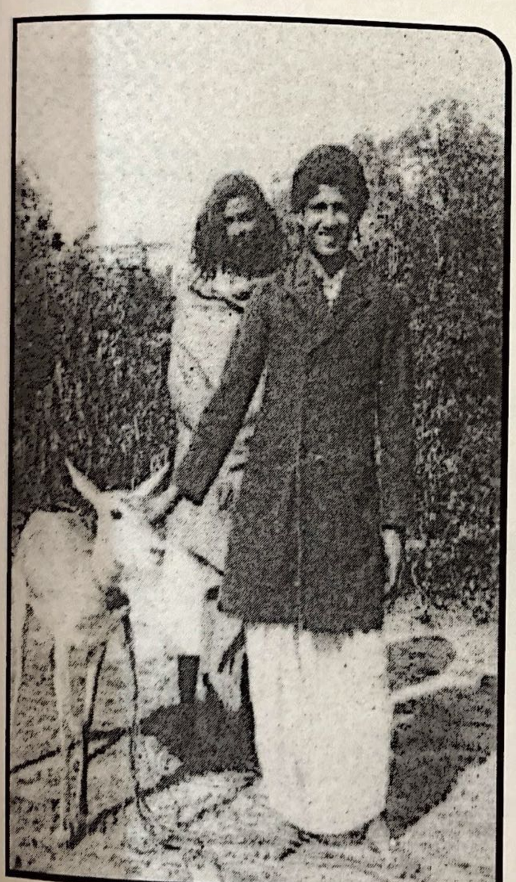
वैद्यक सीख रहे हैं तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई, किन्तु उनकी शहरी वेशभूषा पहनने की बात सुनकर उन्हें अच्छा नहीं लगा। उन्होंने श्रीठाकुरजी के लिये यह सन्देश भिजवाया कि तुम स्वाभाविक भारतीय वेशभूषा धोती कुर्ते में ही रहो। पूज्यभाईजी का सन्देश पाकर ठाकुरजी पूर्ववत् ही रहने लगे। श्रीठाकुर जी ने लगभग छः माह तक वैद्यक सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त किया तथा माध्यमिक स्तर का लिखना-पढ़ना सीखा। वैद्यक शिक्षा के अन्तर्गत नाड़ीज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त जब श्रीवैद्यजी ने आगे की शिक्षा के लिए शरीर के निचले भाग (पेट से पैर तक) के अंगों की प्रकृति, स्वभाव एवं उनसे सम्बन्धित रोगों के निदान व चिकित्सा के बारे में बताना प्रारम्भ किया तब श्रीठाकुरजी ने आगे कुछ भी सीखने में उत्साह नहीं दिखाया और कुछ उपराम से हो गये। वैसे भी कलकत्ते का कोलाहलपूर्ण वातावरण इन्हें नहीं सुहाता था।

वे प्रायः गंगातट की ओर निकल जाते और खड़े-खड़े लहरों की ओर एकटक निहारा करते थे। गंगातट के लिए उन्हें जिस मार्ग से होकर जाना पड़ता था, उस मार्ग में एक गली ऐसी भी थी जहाँ दुराचारी लोगों का आना-जाना लगा रहता था। वे शराब पीकर नशे में पड़े रहते थे और हल्ला-गुल्ला मचाते थे किन्तु ठाकुरजी एकदम निर्भीक होकर उनके बीच से निकल जाते। उन लोगों के जीवन को देखकर ठाकुरजी को बड़ा दुख होता था।

गंगाजी के किनारे भी मालिश कराने वाले सेठों का जमघट जुड़ा रहता था। यह सब दृश्य ठाकुरजी को अच्छे न लगते। वह सोचते कि **शरीर को इतना क्या पालना-पोसना; इससे तो तप कर लेना चाहिये।** और कभी-कभी पास की श्मशान भूमि के निकट चले जाते और

पूज्य महाराजश्री के
चरणाश्रय में





निधिवन में
पूज्य महाराजश्री के
साथ

धू-धूकरके जलती हुई चिताओं को दूर खड़े होकर देखा करते। इस प्रकार संसार की नश्वरता को देखकर गहरे चिन्तन में डूब जाते। इनके निर्मल हृदय में वैराग्य अग्नि प्रज्वलित हो उठी। जीविकोपार्जन के कार्य में लगे रहना अब इन्हें असह्य हो गया।

श्रीवैद्यजी के कोई पुत्र नहीं था, मात्र दो पुत्रियाँ ही थीं। उनकी धर्मपत्नी श्रीठाकुरजी के प्रति पुत्रवत् भाव रखती थीं। पुत्रियाँ भी श्रीठाकुरजी को अपना बड़ा भाई मानती थीं। श्रीठाकुरजी अपने संकोची स्वभाव के कारण परिवार के सदस्यों से बहुत कम ही बातचीत करते थे। भोजन करते समय भी अपनी आँखे नीचे करके बैठते थे। इनके इस व्यवहार को देखकर श्रीवैद्यजी व उनकी धर्मपत्नी इनसे बार-बार कहते कि आप यहाँ किसी प्रकार का संकोच न किया करें अपना ही घर समझकर रहें किन्तु श्रीठाकुरजी का मन यहाँ लगता नहीं था। इसीबीच श्रीराधाष्टमी महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए इन्हें गोरखपुर जाना पड़ा।

श्रीराधाष्टमी महोत्सव

रससिद्ध संत श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार प्रतिवर्ष वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाजी का जन्मोत्सव बड़े ही धूमधाम से अपने निवास स्थान गीतावाटिका गोरखपुर में मनाते थे उस उत्सव में पूज्य श्रीभाईजी एवं पूज्य राधाबाबा के द्वारा उनके जीवन की साधनात्मक अनुभूतियों एवं ब्रजभाव की बहुमूल्य रस-संपदा का उन्मुक्त वितरण होता था। इस उत्सव की छोटी से छोटी प्रक्रियाएं साधना के गंभीर रहस्यों से भरी होती थीं। श्रीठाकुरजी इस उत्सव में पूज्यश्री भाईजी की इच्छानुसार प्रतिवर्ष

विशेष रूप से उपस्थित होते थे। संपूर्ण कार्यक्रम में हर प्रकार से उनका सहयोग रहता था। संगीत वाद्य आदि की व्यवस्था से लेकर समय-समय पर गाए जाने वाले पदों का चयन साज-सज्जा आदि करने में श्रीठाकुरजी बड़े उत्साह से लगे रहते थे।

भाव के मूर्तिमान स्वरूप पूज्य श्रीभाईजी व पूज्य श्रीराधाबाबा को प्रसन्न करना ही श्रीठाकुरजी का एकमात्र लक्ष्य रहता था। इन दोनों संतों की शीतल, स्नेहिल दृष्टि व कोमल संस्पर्श को पाकर श्रीठाकुरजी निहाल हो जाते। श्रीठाकुरजी द्वारा पदगान प्रारंभ करते ही पूज्य राधाबाबा ध्यानस्थ हो जाते थे। इधर पूज्य श्रीभाईजी भी अर्धोन्मीलित नेत्र किए भावराज्य में डूब जाते थे। उपस्थित जन-समुदाय यह दृश्य देखकर आह्लाद से भर जाता। इसबार उत्सव के बाद श्रीठाकुरजी कुछ दिन गोरखपुर रुके। एकदिन उचित अवसर पाकर उन्होंने पूज्य बाबा से एकान्त में कहा-'मेरा मन अब जागतिक कार्यों में नहीं लगता। भजन करने की इच्छा होती है।' पूज्य राधाबाबा तो पूर्व से ही इनके लिए ऐसा संकल्प कर चुके थे कि इनका जीवन अध्यात्म की ओर बढ़े। इनकी बात सुनकर वे प्रसन्न हुए किन्तु इनके अन्दर वैराग्य की वृत्ति दृढ़ हो इस हेतु पूज्य बाबा ने इनसे कुछ दिन कलकत्ता में रहकर ही आत्मनिरीक्षण करने का निर्देश दिया। पूज्य राधाबाबा ने कहा- **'देखो ठाकुर, भगवद्‌पथ अत्यन्त कंटकाकीर्ण है। इस पथ पर चलने वाले के मार्ग में अनेक विघ्न आते हैं किन्तु तुम्हारे मन में भजन करने की लालसा है तो सबसे पहले तुम्हें रक्त सम्बन्ध का मोह मन से त्यागना होगा। जगत के नाते तो प्रत्येक जन्म में नए-नए बनते व बिगड़ते रहते हैं किन्तु हमारा श्रीकृष्ण से अनन्त जन्मों का सम्बन्ध है।** यदि सांसारिक भोगों की इच्छा

हो तो मैं तुम्हें गृहस्थ में जाने की सलाह दूँगा अन्यथा इस पथ पर चलना तो श्रेयस्कर है ही। पोद्दार महाराज तो तुम्हे आदर्श गृहस्थ के रूप में देखना चाहते हैं। यदि उन्होंने इसके लिए तुम्हें आदेश दिया तो तुम क्या करोगे?' श्रीठाकुरजी ने कहा- 'बाबा आपने ही बताया है कि श्रीभाईजी में विलक्षण अन्तर्यामित्व है, तब तो वे मेरे मन की बात समझ ही जायेंगे और मुझे गृहस्थ में जाने की आज्ञा ही क्यों देंगे? यदि उन्होंने आज्ञा दी भी तो मैं उनकी बात क्यों मानूँ जो मेरे मनोभाव को ही न जान सके।' इस उत्तर को सुनकर बाबा ठहाका लगाकर हँस पड़े। श्रीठाकुरजी को पूज्य श्रीभाईजी के पास ले जाकर बोले- 'देखिए आपका घनश्याम क्या कहता है' और उनसे सारी बात कह दी। भाईजी ने कहा- 'ठीक ही तो कहता है मैं इसे गृहस्थ में जाने के लिए कहूँगा ही क्यों?' इस बात को सुनकर ठाकुरजी आश्वस्त हो गए। इसबार मन में साधनात्मक लक्ष्य को ध्यान में रखते हुये श्रीठाकुरजी कलकत्ता के लिए रवाना हुए। कलकत्ते जाकर श्रीठाकुरजी ने सबमें भगवद्दर्शन की भावना का गहरा अभ्यास किया। वे बहुत कम बोलते थे। किसी रूप पर दृष्टि जाने पर उन्हें अस्थिपंजर ही दिखायी देता था। देह उन्हें मलमूत्र की थैली जान पड़ती थी। अच्छा खाना-पीना व शरीर को सजाना-सँवारना उन्हें बिल्कुल न सुहाता।

एकदिन श्रीठाकुरजी ने वैद्यजी से वृन्दावन जाने की इच्छा प्रकट की। वैद्यजी ने पूज्य श्रीभाईजी से पत्र द्वारा अनुमति माँगी। पूज्य श्रीभाईजी ने उत्तर लिखा- 'ठीक है ठाकुर को वृन्दावन भेज दीजिये और आप भी ठाकुर के साथ सपरिवार श्रीधाम वृन्दावन में जाकर वास कर सकते हैं क्योंकि आपके मन में भी बहुत दिनों से ऐसी इच्छा थी, सो

संयोग अच्छा बन पड़ा है।' वैद्यजी बहुत ही प्रसन्न हुए उन्होंने झटपट वृन्दावन जाने की तैयारी कर ली और ठाकुरजी के साथ श्रीधाम वृन्दावन निवास करने आ गये।

परमपूज्य महाराजश्री के चरणाश्रय में

श्रीधाम वृन्दावन आकर श्रीवैद्यजी ने सेठ विधिचन्द्र भालोटिया के मकान के गैराज में अपना आयुर्वेदिक दवाखाना खोला और सेवाकुञ्ज के निकट किराये पर मकान लेकर रहने लगे। संयोग से यह किराये का मकान उस गंगामंदिर के बगल में ही था, जिसमें परम पूज्य संत श्रीमहाराज जी (पूज्य श्रीबालकृष्णदास जी महाराज) निवास करते थे।

श्रीगंगामंदिर यमुनापुलिन के निकट राणापत घाट से लगा हुआ अति प्राचीन मंदिर था। इसमें भगवती गंगा की मनोहर प्रतिमा विराजमान थी। इस मंदिर में पहले प्रसिद्ध संत श्रीराधारमणचरणदास जी महाराज (पूज्य बड़ेबाबा जी) ने भी कुछ दिन रहकर भजन किया था। इन दिनों पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराज यहाँ निवास कर रहे थे। इन्हीं संत का अनुभूत लीला साहित्य, श्रीठाकुरजी ने रीवाँ में सेठ श्रीरामेश्वरप्रसाद जी अग्रवाल के यहाँ पढ़ा था और मन ही मन इन्हें गुरु रूप में वरण करने का निश्चय भी कर लिया था।

श्रीलक्ष्मीनारायणजी वैद्य को पूज्य श्रीमहाराजजी की उच्च भगवदीय स्थिति के बारे में वृन्दावन के अन्य साधकों के द्वारा पता लग गया था इसलिए वे कभी-कभी पूज्य श्रीमहाराजजी के दर्शनार्थ गंगा मन्दिर जाते थे। उन दिनों रीवाँ के सेठ श्रीरामेश्वरप्रसादजी अग्रवाल भी श्रीवृन्दावन वास कर रहे थे और प्रायः पूज्य महाराजजी के पास जाया

करते थे। एक दिन श्रीठाकुरजी इनसे मिले तो उन्होंने पूछा कि वे महापुरुष जिनका लीला साहित्य आपने मुझे पढ़ने को दिया था, वृन्दावन में कहाँ रहते हैं? श्रीरामेश्वरजी ने उन्हें बताया कि श्रीगंगामंदिर ही इन संत का निवास स्थल है तब श्रीठाकुरजी ने रामेश्वरजी से आग्रह किया कि कृपा करके उन संत का दर्शन करा दें। उचित अवसर पाकर एकदिन श्रीरामेश्वरजी उन्हें अपने साथ पूज्य श्रीमहाराजजी के दर्शन हेतु श्रीगंगामन्दिर ले गए। **श्रीठाकुरजी ने देखा कि ३५-३६ वर्ष की अवस्था के एक तेजस्वी महात्मा अपने आसन में विराजमान हैं। इनका वर्ण श्याम है। साधना में तपा हुआ इनका इकहरा शरीर अच्छी लम्बाई लिए हुए है। ये अपनी मस्ती में कुछ झूम से रहे हैं। इन्होंने घुटनों तक एक बहिर्वास व उत्तरीय धारण कर रखा है। ये अपने निकट बैठे हुए कतिपय साधकजनों से श्रीकृष्ण चर्चा कर रहे हैं। इनकी वाणी में अत्यन्त ओज है। श्रीमुख प्रफुल्ल है जिसमें रह-रहकर मंद मुसकान बिखर रही है। इनके नेत्रों में अद्भुत चमक है। श्रीठाकुरजी को श्रीगंगामन्दिर का वातावरण श्रीकृष्ण स्फूर्ति से भरा हुआ दिखाई दिया।**

प्रथम दर्शन में ही श्रीठाकुरजी का मन बलात् इनकी ओर आकृष्ट हो गया। इन संतश्री को श्रीठाकुरजी ने पूर्व में कई बार रास प्रेमियों के मध्य रासलीला में बैठे हुए देखा था किन्तु इन्हें निकटता से देखने का अवसर आज मिला। इनकी तितिक्षापूर्ण, एकान्तिक, शास्त्र-प्रशंसित रहनी का परिचय तो आज ही मिला। **जिस प्रकार के संत की खोज मन में थी वह आज पूरी हो गयी।** श्रीठाकुरजी अश्रुपूरित लोचनों से अपना मुख नीचा किए हुए मौनवत् बैठे रहे।

श्रीठाकुरजी को निकट आया देखकर महाराजश्री भी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने श्रीठाकुरजी को आदरपूर्वक एक ओर बिठाया। प्रथम मिलन के इस अवसर पर श्रीठाकुरजी को अपूर्व सुख का अनुभव हो रहा था। बाद में श्रीठाकुरजी को यह पता चला कि श्रीमहाराजजी की वंश परम्परा का सम्बन्ध श्रीरामानुज सम्प्रदाय की श्रीव्यंकट आम्नाय शाखा से है। स्वामी श्रीरामकृष्ण परमहंस देव की दिव्य देह द्वारा प्रत्यक्ष आदेश पाकर ये भगवद् साक्षात्कार हेतु विभिन्न तीर्थों व धार्मिक स्थानों से घूमते हुए नन्दगाँव की एकाँतिक गुफा में देह-गेह व देशकाल का भान भुलाकर अजस्र भजन कर चुके हैं। अब अनेक अनुभूतियों व भगवत् साक्षात्कार से संपन्न होकर स्थायी रूप से वृन्दावन में श्रीगंगामन्दिर में निवास कर रहे हैं। इन संत का साहित्य श्रीठाकुरजी ने पूर्व में पढ़ा था और इन्हें गुरु रूप से वरण करने का निश्चय भी कर लिया था। आज प्रत्यक्ष दर्शनों के बाद इनका मन पूर्ण रूप से इनके श्रीचरणों में समर्पित हो गया।

श्रीरामेश्वरप्रसादजी का श्रीठाकुरजी से प्राय: मिलना होता रहता था। दोनों जब भी मिलते तो परस्पर चर्चा का केन्द्र पूज्य श्रीमहाराजजी ही हुआ करते थे। क्रमश: श्रीठाकुरजी के मन में पूज्य श्रीमहाराजजी के सानिध्य का लोभ बढ़ता ही गया। पूज्य श्रीमहाराजजी के साथ कुछ विरक्त साधकगण पहले से ही रहते थे। इनमें भगवद् प्राप्ति के तीव्र आवेग में अत्यन्त अल्पायु में ही गृहत्याग कर देने वाली, बुलन्दशहर के उच्च घराने की एक उच्चकोटि की साधिका सुश्रीदेवीजी एवं उनकी बहिनें श्रीकृष्णाजी, श्रीकुसुमजी थीं। इसके अतिरिक्त नर्मदा तीरस्थ श्रीमहिष्मती नगरी (महेश्वर) के राजपुरोहित घराने के ज्वलंत वैराग्य

से परिपूर्ण नवयुवक श्रीमनोहरदासजी एवं एक पटवारी दम्पति श्रीमोतीरामजी व उनकी पत्नी सहित कुल छः-सात व्यक्ति थे। कुछ साधक पृथक रहकर भी भजन करते थे और नित्य पूज्य महाराजजी के सत्संग में सम्मिलित होते थे। माधुकरी व सस्ती साग-भाजी ही इनका आहार था। दो रुपये मासिक किराए पर उपलब्ध इस मंदिर में सभी लोग पूज्य श्रीमहाराजजी की समीपता के सुख से उल्लसित रहकर भजन किया करते थे। रहने व खाने आदि की असुविधा पर किसी का ध्यान नहीं जाता था। अब श्रीठाकुरजी प्रायः किसी न किसी बहाने से समय निकालकर श्रीगंगामन्दिर पूज्य महाराजश्री के पास आने-जाने लगे। श्रीवैद्यजी को जब यह पता चला कि श्रीठाकुरजी इन संत के निकट अधिक आने-जाने लगे हैं तो वे कुछ सोच में पड़ गए। ठाकुरजी को सद्गृहस्थ बनाने हेतु इनके जीविकोपार्जन के लक्ष्य से वे इन्हें वैद्यक सिखाने में लगे थे किन्तु ठाकुरजी वैद्यकी सीखने में रुचि न दिखाकर साधुसंग में रुचि ले रहे थे।

विरक्त जीवन का सूत्रपात

श्रीठाकुरजी अपने परिवार से तो उपराम थे ही, अब श्रीवैद्यजी के परिवार के इस नए स्नेहबन्धन में भी बँधना नहीं चाहते थे। यद्यपि इस परिवार के प्रति इनके मन में सम्मान का भाव था किन्तु अब उनके जीवन का दूसरा ही पथ निर्धारित हो चुका था।

एकबार श्रीधाम वृन्दावन में भक्त श्रीनरसी मेहताजी के जीवन पर आधारित एक नाटिका का प्रदर्शन हुआ जिसे पूज्य महाराजजी के साथ श्रीठाकुरजी व अन्य परिकरों ने भी देखा। इस भक्तचरित्र का

श्रीठाकुरजी के मन पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि लगातार सात दिनों तक इनकी आँखों के सामने वह दृश्य छाया रहा जिसमें **भगवान शंकर शिवलिंग से प्रकट होकर भक्त नरसी मेहता को दर्शन देते हैं और उनसे वर माँगने को कहते हैं। जब भक्त नरसी उनसे उनकी ही कोई प्रिय वस्तु प्रदान करने को कहते हैं। तब भगवान शिव उन्हें दिव्य रासमण्डल में ले जाते हैं, जहाँ हो रही चिन्मय महारास लीला के दर्शनकर भक्त नरसी आनन्द विभोर हो जाते हैं। इस दृश्य का श्रीठाकुरजी के कोमल मन पर बहुत प्रभाव पड़ा। 'ऐसी दिव्यलीला के दर्शन मुझे भी हों तो कितना अच्छा हो' इस प्रकार की उत्कण्ठा श्रीठाकुरजी के मन में जाग उठी।** इसके बाद से ही इनके भजन में विशेष तीव्रता आ गई। एकदिन श्रीठाकुरजी ने वैद्यजी से अपने गाँव जाने की इच्छा प्रकट की। श्रीवैद्यजी की अनुमति लेकर ये अपने गाँव चल दिए। गाँव जाने का तो एक बहाना था, मन में योजना कुछ और ही थी।

ग्रीष्मकाल की भरी दोपहरी में ही श्रीठाकुरजी घर से निकल पड़े और तपती भूमि में नंगे पाँव पचास किलोमीटर चलकर अपने गाँव घाँघोली पहुँचे। सेठ रामेश्वरजी को उनके गाँव जाने की सूचना मिली तो उन्होंने पूज्य महाराजजी को सूचित किया तब पूज्यमहाराजश्री ने भी उनके गाँव जाने का निश्चय किया। सेठ रामेश्वरजी व श्रीमनोहरदास जी को लेकर श्रीमहाराजजी घाँघोली ग्राम पहुँचे। पूज्य महाराजश्री को गाँव आया देखकर श्रीठाकुरजी अति हर्षित हुए। श्रीमहाराजजी ने मेरे लिए इतना कष्ट उठाया वृन्दावन से यहाँ तक पैदल चलकर आये हैं। यह सोचकर वे अत्यन्त भावुक हो गए। उन्होंने पूज्य महाराजजी के ठहरने की व्यवस्था की और बड़े मनोयोग से उनकी सेवा में उपस्थित हो

गये। पूज्य महाराजजी ने तब श्रीठाकुरजी से उनके भावी साधनात्मक जीवन के विषय में चर्चा की। पूज्य श्रीमहाराज जी व श्रीमनोहरदास जी वहाँ तीन-चार दिन तक रुके और श्रीधाम वापस आ गए। श्रीठाकुरजी कुछ दिन गाँव में ही रहे। इनके साथ श्रीरामेश्वरजी भी रुक गये थे। दोनों ही लोग बाद में श्रीधाम वृन्दावन लौटे तथा गोपीनाथ बाजार में स्थित एक किराए का कमरा लेकर रहने लगे।

कई दिन बीत जाने पर जब ठाकुरजी घर वापस नहीं लौटे तो वैद्यजी को चिन्ता हुई। पूज्य श्रीभाईजी की आज्ञानुसार ठाकुरजी की देखभाल करना इनका दायित्व था इसलिए उन्होंने श्रीठाकुरजी का पता लगवाया। गाँव में उन्हें न पाकर वे चिन्तित हो गए। घर के लोग भी यह जानकर कि श्रीठाकुरजी श्रीवृन्दावन धाम नहीं पहुंचे हैं, अत्यन्त घबरा गए। वैद्यजी की धर्मपत्नी जो श्रीठाकुरजी को पुत्रवत् स्नेह करती थीं, अत्यन्त व्याकुल हो गईं। सभी के मन में यह प्रश्न था कि श्रीठाकुरजी आखिर कहाँ होंगे? तब इनके अग्रज श्रीनवलकिशोरजी शास्त्री ने वृन्दावन में श्रीठाकुरजी की खोज की।

इधर श्रीठाकुरजी जनसंपर्क से दूर रहते हुए एकान्त कमरे में भजनशील थे। किसी प्रकार से इनके बड़े भाई को श्रीठाकुरजी का पता चल गया। यह जानकर कि ये अब विरक्त जीवन बिताएँगे, उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। वैद्यजीको भी यह बात अच्छी न लगी। उन्होंने इसे श्रीठाकुरजी का बालहठ समझकर उनको अपने घर लाने का प्रयास किया किन्तु श्रीठाकुरजी अपने निर्णय पर दृढ़ रहे। यहाँ तक कि पूज्य भाईजी द्वारा दिए जाने वाले मासिक खर्चे की राशि को भी लेने से मना कर दिया तब श्रीवैद्यजी निराश हो गए और उन्होंने एक पत्र द्वारा सारे

घटनाक्रम का विवरण पूज्य श्रीभाईजी को लिखकर भेजा।

श्रीभाईजी ने श्रीठाकुरजी को समझाने के लिए गीताप्रेस के प्रतिष्ठित कहानी लेखक व संपादकीय मंडल के सदस्य श्रीसुदर्शनसिंह जी 'चक्र' को वृन्दावन भेजा। श्रीचक्रजी अति व्यवहार कुशल व अध्यात्मिक अभिरुचि के व्यक्ति थे। इनके द्वारा अध्यात्म विषय पर लिखी गई अनेक कहानियों का गीताप्रेस से प्रकाशन हो चुका है। ये लगभग एक माह तक श्रीवृन्दावनधाम में रुके रहे और नित्य श्रीठाकुरजी को समझाने का प्रयास करते रहे किन्तु श्रीठाकुरजी के निर्णय में कोई परिवर्तन न ला सके। अंत में इन्होंने श्रीठाकुरजी के अग्रज श्रीरामजी से मिलने पर कहा-'आया तो था मैं ठाकुर घनश्याम को समझाने किन्तु अब स्वयं ही समझकर जा रहा हूँ। इन्होंने अपना रास्ता चुन लिया है। उचित यही होगा कि आप लोग भी इन्हें अब न रोकें। अब ये हमारे आपके दायरे से परे हो गये हैं।'

श्रीठाकुरजी को सेठश्रीरामेश्वरप्रसादजी अग्रवाल का संग मिला। श्रीरामेश्वरजी कहने मात्र के सेठ थे। इनकी ऊँची कद-काठी, अधेड़ अवस्था और एकदम साधारण वेषभूषा को देखकर कोई नहीं कह सकता था कि ये रींवा नगर के प्रतिष्ठित सेठ हैं। वैराग्य व तितिक्षा इनके स्वभाव में थी। ये बहुत कम बोला करते थे। **चलते-फिरते, उठते-बैठते हर समय नाम जप किया करते। हाथ में माला नहीं रखते थे, बस मानसिक रूप से या उपाँशु रूप से जप चला करता था।** यहाँ तक कि शौचालय में भी इनका नामजप नहीं छूटता था। ये श्रीठाकुरजी का बहुत सम्मान करते थे और इन्हें भी अपनी जैसी साधुसाही रहनी में रखते थे। गोपीनाथ बाजार के एक मकान की ऊपरी मञ्जिल में इन्होंने एक

किराये का कमरा ले रखा था। श्रीठाकुरजी वहीं इनके साथ ही रहते थे। श्रीठाकुरजी पर भी वैराग्य का नशा चढ़ा। एक बनियान और एक पटरे वाली लाइनदार जाँघिया के ऊपर एक साफी (गमछा) लपेट लेते यही इनका पहनावा था। कहाँ तो स्वरूपाई की ठाट-बाट, कहाँ एकदम फक्कड़ी वेषभूषा। श्रीठाकुरजी का ध्यान अपने इस विरक्त स्वरूप की ओर जाता ही नहीं था। वे तो इसमें बड़ी शान्ति का अनुभव करते थे। श्रीठाकुरजी स्वरूपाई के दिनों में बड़े ठाट-बाट से रह चुके थे। अपने बड़े भाई श्रीरामजी के साथ इनकी अपनी एक रासमण्डली भी थी। किसी प्रकार का कोई आभाव नहीं था फिर भी इनका मन वहाँ न लगा। रजोगुणी वातावरण में श्वॉस लेना इनके लिए बहुत कठिन हो गया था। सब ओर से उपराम होकर अब तो ये भजनीय आनन्द में ही तृप्त रहना चाहते थे।

उदर पूर्ति की चिंता श्रीरामेश्वरजी करते थे। कभी काशीफल को उबालकर, कभी रोटी नमक या बिना नमक डाले ही सूखी पा लेते थे। श्रीठाकुरजी ने गोपीनाथ बाजार में कई महीने ऐसे ही विरक्तिपूर्वक निवास किया। बीच-बीच में पूज्य महाराजजी से मिलते रहते थे। जब श्रीमहाराजजी वृन्दावन से बाहर चले जाते तब ठाकुरजी पूज्या देवीजी के पास जाकर उनके आगमन की जानकारी लेते रहते। पूज्यमहाराजजी के गृहस्थ भक्त श्रीमोतीरामजी अपनी धर्मपत्नी (जिन्हें सब माँजी कहते थे) सहित यहाँ निवास करते थे। जब कभी ठाकुरजी गंगामन्दिर जाते तो माँजी बड़े स्नेह से उन्हें कुछ न कुछ अवश्य खिलातीं। कुछ न होता तो चना भूनकर ही खिला देती थीं।

कुछ दिनों बाद जब पूज्य महाराजश्री वापिस लौटकर आये तो उन्हें

श्रीठाकुरजी के अन्दर भजन के प्रति विशेष उत्कण्ठा दिखी। उनकी वैराग्यपूर्ण रहनी को देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए। किन्तु खाने-पीने की अनियमितता एवं अव्यवस्थित वेषभूषा को देखकर वे कुछ चिन्तित हुए। उन्होंने श्रीरामेश्वरजी को ठाकुरजी के खान-पान की समुचित व्यवस्था करने के लिए कहा, तब से श्रीरामश्वरजी उन्हें अपने हाथो से रोटी बनाकर खिलाने लगे किन्तु इनकी यह व्यवस्था कुछ महीनों बाद पुनः शिथिल हो गई। एकसाथ रोटियाँ बनाकर रख ली जाती फिर कई-कई दिनों तक कभी पानी से भिगोकर तो कभी सूखी या नमक के साथ पाते रहते। इस प्रकार की रहनी से श्रीठाकुरजी के स्वास्थ्य में विपरीत प्रभाव पड़ा। वे काफी कमजोर हो गए।

एकदिन पूज्य महाराजजी श्रीठाकुरजी व श्रीमनोहरबाबा को साथ लेकर गोपीनाथ बाजार से निकल रहे थे। एकाएक श्रीमहाराजजी के मन में चाय पीने की इच्छा हुई। वो पास के एक ढाबे में जाकर बैठ गए और चाय वाले से तीन कप चाय बनाने को कहा। पूज्य श्रीराधाबाबा की मर्यादित रहनी में रह चुके श्रीठाकुरजी को चाय पीने का अभ्यास नहीं था। पहले तो उनको यह बात कुछ अटपटी सी लगी कि यहाँ कहाँ ढाबे में बैठकर चाय पीना ? उनके मन को यह बात स्वीकार नहीं हो रही थी किन्तु पूज्य महाराजजी ने कहा है इसलिए संकोचपूर्वक चाय पीने बैठ गए। चाय पी लेने के तुरंत बाद पूज्य महाराजजी ने एक कौतुकमयी लीला की, उन्होंने कहा कि चलिए आप लोगों को मैं निमाड़ की चाय पिलाता हूँ। वहाँ पर एक दुकान वाला बहुत अच्छी चाय बनाता है। ऐसा कहकर ठाकुरजी व मनोहर बाबा को साथ लेकर वे तुरन्त मध्य प्रदेश की ओर रवाना हो गए। इन्दौर पहुँचकर श्रीमहाराजजी ने एक दुकान में

चाय पी और पुनः बिना रुके ट्रेन द्वारा वृन्दावन वापस आ गए। श्रीठाकुरजी को पूज्य महाराजजी की यह अटपटी लीला देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वस्तुतः पूज्य महाराजजी श्रीठाकुरजी को स्वच्छन्द सधुक्कड़ी रहनी से अवगत कराना चाहते थे। बाद में पूज्यश्री की भावगंभीर दशाओं को देखने पर उनके सारे संशय दूर हो गए।

एकबार पूज्य महाराजजी श्रीबाँके बिहारी मन्दिर के पास स्थित श्रीराधेश्याम बुकसेलर की दुकान पर कुछ भक्तों के साथ बैठे थे। कुछ देर बाद श्रीठाकुरजी भी वहाँ आ पहुँचे। तब पूज्य महाराजजी ने राधेश्यामजी से कहा कि श्रीठाकुरजी के लिए गरम दूध लेकर आइये। राधेश्यामजी ने जाकर दूध खरीदा और उसमें रबड़ी भी मिलवा दी। श्रीठाकुरजी को पीने के लिए दूध दिया गया। वैराग्य पथ पर आने के बाद से ठाकुरजी ने रबड़ी मलाई आदि का सेवन बंद कर दिया था। जब उन्होंने दूध के कुल्हड़ में रबड़ी तैरती देखी तो नजर बचाकर सारा दूध नाली में बहा दिया। श्रीमहाराजजी ने उनको ऐसा करते देख लिया किन्तु बिल्कुल भी नाराज नहीं हुए बल्कि बाद में उन्होंने इनके रसनेन्द्रिय संयम की प्रशंसा की।

श्रीठाकुरजी अपने शरीर को खूब कसा करते थे। पूज्य महाराजजी के उज्वल वैराग्यपूर्ण जीवन से इन्हें बड़ी प्रेरणा मिलती थी। श्रीमहाराजजी के सत्संग का सार प्रायः श्री रासपञ्चाध्यायी ही होता। वे गोपियों की दिव्यप्रेमदशा का वर्णन करते, जिसे सुनकर श्रीठाकुरजी को श्रीभगवत रसिकजी का यह पद स्मरण हो आता :-

एते गुण जामें सो संत।

श्रीभागवत मध्य जस गावत श्रीमुख कमलाकन्त।।

हरि को भजन साधु की सेवा सर्वभूत पर दाया।
हिन्सा, लोभ, दम्भ, छल त्यागै विष सम देखे माया।।

सहनशील आशय उदार अति धीरज सहित विवेकी।
सत्य वचन सबको सुखदायक गहि अनन्य व्रत एकी।।

इन्द्रीजित अभिमान न जाके करै जगत को पावन।
'भगवत रसिक' तासु की संगति तीनहुँ ताप नसावन।।

संत श्रीभगवतरसिक जी की इस वाणी में संत के जो लक्षण बताए गए हैं, उनको श्रीमहाराजजी में पूर्णतया प्रकट देखकर श्रीठाकुरजी का उनके चरणों में समर्पण दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया।

ठाकुरजी के विरक्त हो जाने से उनके परिजनों को बहुत दुख होता था। भाई-बहिनों में सबसे छोटे, अत्यन्त लाड़-प्यार से पाले गए, सुकुमार देहयष्टि के श्रीठाकुरजी ऐसा कठोर जीवन बिताएँ यह इनकी माँ को स्वीकार नहीं हो पा रहा था। वे अत्यन्त व्याकुल रहा करती थीं। बड़े भाई श्री नवलकिशोर शास्त्री ने भी ठाकुरजी को समझाने का बहुत प्रयास किया किन्तु सफल न हुए। अपने प्रयासों में असफल होने के बाद परिवार वालों ने इस बात से ही संतोष कर लिया कि श्रीठाकुरजी यदि वृन्दावन में रहेंगे तो भविष्य में कम से कम उनसे भेंट तो हो जाया करेगी जो कि इनके अन्यत्र चले जाने पर संभव नहीं हो सकेगा, इसलिए इनसे अधिक छेड़-छाड़ न की जाये। अन्ततः वे लोग निराश होकर चुप हो गए।

एकबार श्रीठाकुरजी की माता वात्सल्यविवश होकर इनसे मिलने श्रीधाम वृन्दावन आई। कृशगात् ठाकुरजी को देखकर वे अत्यन्त अधीर हो गईं। श्रीठाकुरजी ने अपनी माँ को साँत्वना देने के लिए कुछ दिन उन्हें अपने पास ही रख लिया। एकदिन अवसर पाकर माता ने श्रीठाकुरजी से गाँव चलने का आग्रह किया। उनका मन रखने के लिए ठाकुर जी ने हाँ कह दी किन्तु उनकी गाँव जाने की इच्छा नहीं थी। उनके मन में कुछ और ही योजना चल रही थी। निश्चित तिथि को अपनी माँ के साथ वे गाँव के लिए चल दिए। श्रीयमुना पार करने के लिए नौका की प्रतीक्षा करने लगे। जब नौका घाट से आ लगी तब श्रीठाकुरजी ने नाविक से कुछ चर्चा की और शीघ्रता से सामान चढ़ाकर मैय्या के साथ नाव में बैठ गए। अभी नौका ने किनारा छोड़ा ही था कि ठाकुरजी नौका से सहसा उतर पड़े और तेज कदमों से पानी में से होते हुए वापस वृन्दावन की ओर चल दिए। यह दृश्य देखकर इनकी मैय्या अवाक् रह गईं। पहले तो वे कुछ समझ न पाई, पर शीघ्र ही श्रीठाकुरजी के मन्तव्य को भाँपकर जोर-जोर से पुकारने लगीं 'बेटा लौट आ कहाँ जा रहा है? लौट आ नहीं तो मैं यमुनाजी में कूदकर प्राण दे दूंगी।'

श्रीठाकुरजी तेज कदमों से बढ़ते हुए बहुत दूर निकल गए उन्होंने पीछे मुड़कर भी न देखा तब तक नौका मध्य धारा में पहुँच चुकी थी। रोती-बिलखती माँ को नौका पर बैठी अन्य सवारियों ने सँभाला। वे अत्यन्त निराश होकर गाँव चली गईं। इधर पूर्व योजनानुसार श्रीठाकुरजी, पूज्य महाराजजी के साथ मध्य प्रदेश की ओर रवाना हो गए। कुछ दिन वहाँ रहकर वे श्रीधाम वृन्दावन वापस आ गए।

पूज्य श्रीमहाराजजी की रहनी बड़ी अनूठी थी। वे किसी कुल या सम्प्रदाय की उपासनाओं व परम्पराओं में बंधे न थे। इन्होंने श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित मधुर भजन प्रणाली, नामजप व संकीर्तन का ही अनुगमन किया। वृन्दावन के रसिकाचार्यों का पथ इन्हें स्वीकृत था। ये प्रेमाभक्ति के आवेश में उन्मत्त विचरण किया करते थे। एकक्षण के लिए भी बाह्य जगत में आना इनके लिए कठिन हो जाता था। निरंतर निजस्वरूपावेश में श्रीकृष्णसंश्लेश सुखास्वादन करते रहना इनका स्वभाव बन गया था। साधकों के प्रति इनका यही उपदेश रहता कि **'साधक को कभी भी भगवदीय विचारों से खाली नहीं रहना चाहिए। साध्य की समुपस्थिति को सतत् अनुभव करते रहना ही साधना का वास्तविक स्वरूप रहस्य है।'** ऐसे रस सिद्ध संत के सानिध्य में श्रीठाकुरजी बड़े उत्साहित रहते।

श्रीठाकुरजी ने अब अपना निवास स्थान बदल लिया था। श्रीबाँकेबिहारी मंदिर के निकट 'हरिनाथ कुसुम कुंज' नामक मकान में रहकर नित्यप्रति पूज्यश्री के सत्संग का लाभ लेने लगे। यहाँ पर एक बंगाली मैय्या रहा करती थीं। श्रीकृष्ण के बालरूप की उपासिका इन माता जी का श्रीठाकुरजी पर बहुत लाड़ था। वे इन्हें कृष्णो-कृष्णो कहकर पुकारती थीं और प्रायः अपने यहाँ भिक्षा करा देती थीं। यहीं पर एकबार श्रीठाकुरजी से मिलने कुछ फक्कड़ महात्माओं की टोली आयी। सात-आठ जटाधारी साधु नीचे किसी से इनके बारे में पूछ रहे थे। इन अपरिचित साधुओं को देखकर वे विचार में पड़ गए। इनके कोमल मन में यह भाव जागृत हुआ कि कहीं ये महात्मा सप्तऋषि तो

नहीं हैं, जो दिव्यलोक से यहाँ मुझे दर्शन देकर कृतार्थ करने आए हैं। यह भावना इनके मन में इतने प्रगाढ़ रूप से घर कर गई कि ये उनके स्वागतार्थ नीचे भागे। उन सभी को ससम्मान बैठाया तथा प्रणाम करने के बाद उनके भोग की व्यवस्था के लिए पास की दुकान से पेड़े खरीदने चले गए।

साधु भी हतप्रभ से इनकी प्रत्येक क्रिया को देखते रहे। जबतक श्रीठाकुरजी प्रसाद लेकर वापस आते ये सभी साधु वहाँ से प्रस्थान कर गए। कुछ देर बाद स्वरूपाई के समय इनकी सेवा में रहने वाले साधु श्रीपुरुषोत्तमजी तपसी भागते-भागते इनके पास आए और इन्हें सचेत करते हुए बोले- 'ठाकुरजी यहाँ से जल्दी निकल चलिए आपकी जान को खतरा है। कुछ दुष्ट साधु वेषधारी व्यक्ति आपको मारने आ रहे हैं।' यह सुनकर श्रीठाकुरजी चौंके और पहले आए हुए साधुओं के विषय में बताया कि कुछ साधु आए तो थे किन्तु वे सभी भले जान पड़ रहे थे, यहाँ कुछ देर रुककर वे वापस चले गए! श्रीतपसीजी बोले कि मेरे दीक्षागुरु नहीं चाहते के मेरा आपके पास आना-जाना हो और मुझे बन्धक बनाकर अपने आश्रम में ही रखना चाहते हैं। मेरे द्वारा उनकी बात न मानने के कारण वह आपसे भी बैर रखने लगे हैं, इसी कारण मैं उनसे अलग रहने लगा हूँ। इस बात की जड़ वे आपको समझते हैं। इसलिये उन्होंने आपको मारने की योजना बनायी है। मुझे इस बात की जानकारी किसी प्रकार हो गई थी इसीलिए मैं आपके पास भागते हुए आया हूँ किन्तु आश्चर्य की बात है कि उन लोगों ने यहाँ आकर आपको कोई नुकसान नहीं पहुँचाया। श्रीठाकुरजी सारी घटना सुनकर तनिक भी विचलित नहीं हुए न ही मन में कोई विद्वेष की भावना आई। उन्होंने

श्रीतपसीजी को आश्वस्त करते हुए कहा कि आप बिल्कुल चिन्ता न करें, मुझे कुछ नहीं होगा।

उधर उन जटाधारी साधुओं ने जाकर अपने गुरुजी को सारी बात बताई कि बालक मिला तो था परन्तु उसको देखते ही हम लोगों का मन बदल गया। वह तो बड़ा भोला जान पड़ता था इसलिए हमने उससे कुछ नहीं कहा। यह सुनते ही गुरुजी तिलमिला गए और उन्होंने स्वयं ही श्रीठाकुरजी को मारने का मन बनाया।

एकदिन की बात है वे महन्तजी 'हरिनाथ कुसुम कुंज' में आकर एक कोठरी में रुक गए। ठीक मध्य रात्रि में वे उठकर इधर-उधर घूमने लगे। श्रीठाकुरजी उस समय लेटे-लेटे भगवद् स्मरण कर रहे थे। पदचाप सुनकर वे सजग हो गए। इतने में उन्होंने देखा कि वे महन्तजी इनके निकट आ रहे हैं। कुछ अधिक निकट आने पर उनके हाथ में चमकता हुआ गड़ासा दिखाई पड़ा किन्तु ठाकुरजी जरा भी भयभीत नहीं हुए। वे चुपचाप लेटे-लेटे उनकी चेष्टाएँ देखते रहे। अचानक उन महान्त का गड़ासे वाला हाथ तेजी से ऊपर उठा किन्तु एक तेज झटका खाकर वे लड़खड़ाते हुए पीछे की ओर गिर पड़े, भयभीत होकर वापस अपनी कोठरी में चले गए। अचानक यह क्या हुआ, वे महन्तजी कुछ न समझ पाए, न ही श्रीठाकुरजी समझे किन्तु ठाकुरजी को इतना अवश्य लगा कि ये महात्मा वेषधारी व्यक्ति इन्हें मारने की नियत से आया था। प्रातःकाल होने पर श्रीठाकुरजी ने उन साधु का कुशलक्षेम पूछा। श्रीठाकुरजी द्वारा ऐसा पूछते ही वे विह्वल होकर उनके चरणों में गिर पड़े और हाथ जोड़ कर क्षमा माँगने लगे। श्रीठाकुरजी ने कहा कि आप ऐसा

क्यों करते हैं आप तो हमारे पूज्य हैं। तब वे रोने लगे और सत्य उद्‌घाटित करते हुए कहा कि मैं आपको मारने के लिए आया था। मुझसे बहुत बड़ी गलती हो गई। मुझे क्षमा कर दें। श्रीठाकुरजी ने उन्हें शान्त कराकर विदा कर दिया।

इस घटना की जानकारी जब पूज्य श्रीमहाराजजी को हुई तो उन्होंने श्रीठाकुरजी को जुगलघाट के निकट रह रहे श्रीरामेश्वरप्रसादजी के साथ रख दिया। इसीबीच गोरखपुर में श्रीराधाष्टमी के अवसर पर जब ठाकुरजी पूज्य श्रीराधाबाबा से मिले तो सारी घटना पूज्य बाबा को विस्तार से सुनाई कि कैसे कुछ साधुओं की टोली को देखकर ये सप्तर्षियों की भावना से भावित हो गए थे और बाद में किस प्रकार महान्त का मन परिवर्तित हुआ। यह सुनकर पूज्य बाबा बोले–'भैय्या यह तुम्हारी सच्ची भावना का ही परिणाम था कि मारने के लिए आए हुए वे साधु अपना बैर भाव भूल गए। हम जैसी भावना दूसरों के लिए करते हैं वही लौटकर हमें मिलती है। तुम्हारे निर्मल मनोभावों का प्रतिबिम्ब उनके चित्त पर पड़ा जिससे उनका हृदय परिवर्तित हो गया।' पूज्य बाबा ने इस घटना को इतना महत्व दिया कि इसे एक लघु पुस्तिका के रूप में पात्रों के नाम बदलकर प्रकाशित करवाया और अनेक अवसरों पर परोक्ष रूप से इस घटना की चर्चा किया करते थे।

वृन्दावन में श्रीठाकुरजी को कुछ दिन पृथक किराये के मकान में रहना पड़ा। तब मासिक किराए हेतु एक रुपये की व्यवस्था कैसे हो यह चिन्ता बनी रहती थी। एकबार इस बात का उलाहना देते हुए उन्होंने अपने आराध्य ठाकुर श्रीबाँकेबिहारीलाल से कहा कि मैं आपके

श्रीमुख का चिन्तन करूँ कि किराए के एक रुपये का। कुछ दिनों बाद वे जुगलघाट के निकट श्रीवासुदेव लोहिया के खण्डहरनुमा पुराने मकान में आ गए। इस मकान में कोई किराया नहीं देना पड़ा था। इस मकान में अशुभ शक्तियों का प्रभाव होने के कारण कोई इसमें रहता नहीं था। श्रीठाकुरजी को यह बात नहीं मालूम थी। वे मकानमालिक से आज्ञा लेकर वहाँ सहज ही जाकर रहने लगे। एक रात्रि जब वे भजन कर रहे थे तो अचानक उन्हें कुछ शोर सुनायी दिया, मानो किसी ने कोई बड़ा भारी पत्थर फेंका हो। श्रीठाकुरजी ने आसपास झाँककर देखा तो उन्हें कोई दिखाई न पड़ा। इसके बाद सीढ़ियों पर किसी के चढ़ने-उतरने की आवाज सुनाई दी। खिड़की-दरवाजे कुछ हिलते से जान पड़े। श्रीठाकुरजी जी समझ गए कि किसी अधोगति को प्राप्त जीव का उपद्रव है। उन्होंने तुरंत पास में रखी बाल्टी के ठंडे जल से स्नान किया और शुद्ध कपड़े पहनकर भजन में बैठ गए। उन्हें किञ्चित भी भय नहीं लगा। नामजप की गुञ्जार से वातावरण अलौकिकता से भर गया। वैराग्यवान युवक ब्रह्मचारी श्रीठाकुरजी अपने आसन पर एकदम निर्भीक हो अविचल बैठे भजन करते रहे। कुछ देर बाद वह हलचल समाप्त हो गई। दूसरे दिन उन्होंने इस घटना की चर्चा मकान मालिक के पुत्र से की। तब पुत्र ने उनसे क्षमा माँगते हुए कहा कि मेरे पिताजी ने जानबूझकर आपको इस मकान में रखा। इसके पहले भी इस तरह की घटनाएँ यहाँ घट चुकी हैं और लोग मकान छोड़कर चले गए। पिताजी को आपसे यह बात पहले बता देनी चाहिए थी। श्रीठाकुरजी उसके द्वारा सच बात बता दिए जाने से बहुत संतुष्ट हुए और उसी मकान में रहते रहे।

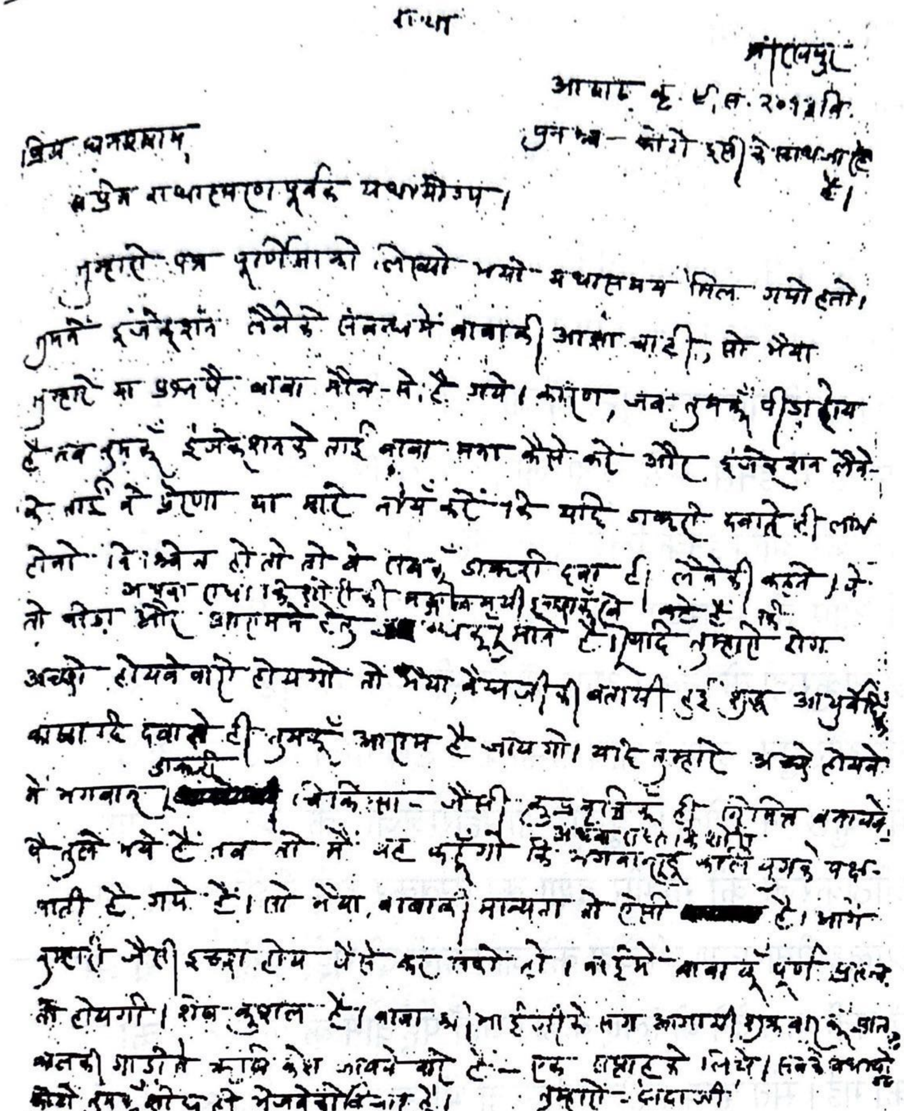
जब मकान मालिक ने देखा कि यह बालक इसमें निर्भय होकर रह रहा है, तब उसने इस मकान में अन्य कई किराएदारों को भी रख दिया। इससे श्रीठाकुरजी के भजन में विक्षेप होने लगा और वे दूसरा मकान खोजने लगे। एकदिन जब श्रीठाकुरजी श्रीबाँकेबिहारी जी के दर्शनकर बाहर निकल रहे थे तो इनके एक पूर्व परिचित रासप्रेमी भक्त श्रीचिम्मनलाल हँसमुखलालजी गुजराती इनसे मिले। उन्होंने श्रीठाकुरजी से अपने मकान के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए बताया कि वहाँ दो कमरे खाली है जहाँ रहकर वो निर्विघ्न भजन कर सकते हैं। उनके विशेष आग्रह पर श्रीठाकुरजी दुसायत मोहल्ले में स्थित उनके मकान में चले गए। पास के दूसरे कमरे में इनके साथ बाबा बनवारीशरणजी एवं श्रीरामसेवकजी भी रहने लगे। यहाँ पर श्रीठाकुरजी लीला स्मरण करे हुए तीन लक्ष नामजप पूरा करते थे। नाम संख्या को पूरी करने के लिए ये रात्रि में छत के ऊपर टहलते हुए जप करते थे। उस समय यह स्थान वृन्दावन के बाहर एकदम सूनसान जगह पर था। चारों तरफ रेती एवं कदम्ब वृक्षों की सघन कतारें थी। रात में चोरों का आवागमन भी होता था। श्रीठाकुर जी को छतपर टहलता देखकर चोरों को विघ्न होता था। वे ठाकुरजी से रात्रि में छत पर घूमने के लिए मना करते थे किन्तु ठाकुरजी का जप, छत पर पूर्ववत् चलता रहा। इन्हीं दिनों इन्होंने ४१ दिनों का अनुष्ठान किया। जिसमें रात्रि में जगकर सवा लाख भगवन्नाम जप किया जाता। इस अनुष्ठान में इनके साथ श्री पुरुषोत्तमजी तपसी, श्रीसीतारामजी पंसारी, श्रीगोवर्धनदासजी, श्रीबनवारीशरणबाबा, श्रीरामेश्वरजी, श्रीरामदासजी, श्रीरामसेवकजी आदि साधक भी सम्मिलित होते। इन

सब की श्रीठाकुरजी के प्रति बड़ी निष्ठा थी। ४१ दिनों तक चलकर सफलता पूर्वक यह अनुष्ठान पूरा हुआ। जप के समय श्रीठाकुरजी एक कुल्हड़ में जल रखते। जब कोई साधक निद्राग्रस्त होने लगता था तब वे उस पर जल छिड़क देते और पूरी रात्रि छत पर घूम–घूमकर नाम लिया करते थे।

कभी मौन का नियम तो कभी परिक्रमा आदि नियमों का अनुष्ठान श्रीठाकुरजी करते ही रहते थे। इनकी भजन निष्ठा एवं वैराग्य से प्रेरणा पाकर सभी साधक अति उत्साह से भजन में लगे रहते। सभी को इनसे बहुत बल मिलता था। श्रीचिम्मनजी के इस घर में पानी खारा होने के कारण ठाकुर जी को उदर सम्बन्धी शिकायत होने लगी। लगभग दो वर्ष यहाँ रहने के बाद श्रीठाकुरजी ने स्थान बदल दिया।

श्रीठाकुरजी की रुग्णता

सन् १९५६ की बात है श्रीठाकुरजी ने एकबार ज्वर की स्थिति में ही गिरिराज गोवर्द्धनजी की परिक्रमा लगाई जिसका परिणाम यह हुआ कि साधारण ज्वर ने टायफायड का रूप ले लिया। शरीर में अत्यन्त पीड़ा थी। चिकित्सक ने इंजेक्शन लगाने की बात कही तो ठाकुरजी दुविधा में पड़ गए। पूज्य श्रीराधाबाबा की आज्ञा के अनुसार ये अंग्रेजी दवा नहीं लेते थे। इधर ज्वर उतरने का नाम नहीं ले रहा था और शरीर में पीड़ा भी पर्याप्त थी। लोगों ने इंजेक्शन लेने का आग्रह किया किन्तु इसके लिए पूज्य बाबा की सम्मति अति आवश्यक थी। तब ठाकुरजी ने पत्र लिखकर पूज्य बाबा से पूछा। गोस्वामी श्रीचिम्मनलाल जी ने पत्र के उत्तर में जो कुछ लिखा था वह यथावत् प्रस्तुत है :-



राधा

गोरखपुर
आषाढ़ कृ. ५, सं. २०१७ वि.

प्रिय घनश्याम,

सप्रेम राधास्मरण पूर्वक यथायोग्य।

पुनश्च – फोटो इसी के साथ आ रहे हैं।

तुम्हारो पत्र पूर्णिमाको लिख्यो भयो यथासमय मिल गयो हतो। तुमने इंजेक्शन लैबेके सम्बन्धमें बाबाकी आज्ञा चाही, सो भैया तुम्हारे या प्रश्नपै बाबा मौन-से है गये। कारण, जब तुमकूँ पीड़ा होय है तब तुमकूँ इंजेक्शनके ताईं बाबा मना कैसे करें और इंजेक्शन लैबे के ताईं वे प्रेरणा या भारी नाँय करें। वे यदि डाक्टरी दवाते ही लाभ होनो निश्चित होतो तो वे तुमकूँ डाक्टरी दवा ही लैबेकी कहते। वे तो पीड़ा और आराम हेतु [redacted] प्रारब्ध माने हैं। यदि तुम्हारो रोग अच्छो होयबे वारो होयगो तो भैया, वैद्यजीकी बतायी हुई शुद्ध आयुर्वेदिक बाजारू दवासे ही तुमकूँ आराम है जायगो। यदि तुम्हारे अच्छे होयबे में भगवान् [redacted] डाक्टरी चिकित्सा-जैसी कुछ चीजकूँ ही निमित्त बनायबे वे तुले भये हैं तब तो मैं यह कहूँगो कि भगवान्‌हू कलियुगके पक्षपाती है गये हैं। तो भैया, बाबाकी मान्यता तो ऐसी [redacted] है। आगे तुम्हारी जैसी इच्छा होय वैसे कर सको हो। काहूमें बाबाकूँ पूर्ण प्रसन्नता होयगी। शेष कुशल है। बाबा श्रीभाईजीके सग आगामी शुक्रवारकूँ प्रात:कालकी गाड़ीते [illegible] जायबे वारे हैं – एक सप्ताहके लिये। सबके [illegible] तुमकूँ फोटू ले भेजबेको विचार है।

तुम्हारो – दादाजी

पूज्य राधाबाबा की सम्मति पाकर श्रीठाकुरजी ने यथोचित आयुर्वेदिक उपचार करवाया। सन् १९६० में एकबार श्रीठाकुरजी मथुरा के देवालयों का दर्शन करने गये। साथ में कुछ अन्य लोग भी थे। वहाँ कुछ ऐसी वस्तु खाने में आ गई जिससे सभी को उल्टी-दस्त की शिकायत हो गई। इन दिनों देशभर में हैजे का प्रकोप फैला हुआ था। अन्य लोग तो शीघ्र ही स्वस्थ हो गए किन्तु श्रीठाकुरजी इसकी चपेट में आ गए। बार-बार उल्टी व दस्त होने से शरीर का सारा जल निकल

गया और स्थिति गंभीर हो गई। मरणासन्न जानकर श्रीठाकुरजी को चारपायी से नीचे उतार दिया गया और पूज्य महाराजजी को इनकी गिरती हुई हालत के बारे में सूचित किया गया।

पूज्य महाराजजी इन दिनों लीलानुभूति की गहराइयों में निमग्न रहा करते थे। इनकी देह में प्रायः अष्टसात्विक भावों का उदय हुआ करता था। कभी बाह्यज्ञान शून्य हो जाते तो कभी अर्धबाह्यदशा में रहते। ऐसी स्थिति में इनसे कैसे कहा जाये। भावराज्य की दिव्य मस्ती से नीचे उतरकर आना इनके लिए संभव नहीं हो पा रहा था। फिर जब कुछ होश में आए तो स्वास्थ्य की गंभीरता के बारे में सूचित किया गया। ये श्रीठाकुरजी के निकट आए और गंभीर मुद्रा में कुछ देरतक उन्हें निहारते रहे और पुनः अपनी भाव समाधि में डूब गए। श्रीठाकुरजी के सम्बन्ध में कुछ न बोले। पूज्य श्रीमहाराजजी के कृपापात्र परिकरजन श्रीठाकुरजी की गम्भीर दशा को देखकर बड़े चिंतित थे। आदरणीय श्रीलक्ष्मीनारायण जी वैद्य को जानकारी दी गई, उन्होंने तुरन्त अस्पताल में भर्ती करा देने के लिए कहा। वहाँ पहुँचाने के लिए ताँगे की व्यवस्था की गई। संत पूज्य संतोष बहिनजी भी उस समय वहाँ आ गई थीं उन्होंने अकेले ही अपने हाथों से उठाकर श्रीठाकुरजी को ताँगे में लिटा लिया। जब इन्हें ताँगे पर लिटाया जा रहा था तब अर्धचेतनावस्था में श्रीठाकुरजी के मुख से ये अस्फुट शब्द निकल रहे थे-'अभी तो आपसे पूर्वराग ही हुआ है, ठीक से परिचय भी नहीं हो पाया और अब इतना शीघ्र बिछोह' इन अस्फुट शब्दों को निकट के लोगों ने सुना। ऐसी कष्ट की स्थिति में भी इनका मन इष्ट के स्मरण में तल्लीन था। उन्हें अतिशीघ्रता से अस्पताल पहुँचाया गया। इस समय पूज्या देवीजी, पूज्य मनोहर बाबा,

पूज्या कुसुमजी, गोरखपुर के एक परिचित श्रीमुरलीधरजी व उनके साथ आए हुए मेरठ के सज्जन भी थे। ठाकुरजी की बड़ी बहिन के पति भी उसी समय आ गए थे। चिकित्सा प्रारम्भ हो गई। भगवान श्रीकृष्ण की प्रेरणा से उसी समय मुख्य चिकित्सा अधिकारी भी आ गए जो श्रीठाकुरजी के पूर्व परिचित ही निकले। उचित चिकित्सा होने से धीरे-धीरे रोग काबू में आ गया। श्रीठाकुरजी को अस्पताल से छुट्टी दे दी गई। शरीर में अभी भी पर्याप्त अशक्तता बनी हुई थी। जब पूज्य भाईजी को श्रीठाकुरजी की रुग्णता का समाचार मिला तब उन्होंने स्वास्थ सुधार की दृष्टि से श्रीठाकुरजी को अपने पास रतनगढ़ बुलवा लिया।

सारंगी वादन से पूज्य श्रीराधाबाबा की भाव समाधि

बीकानेर स्टेट के अंतर्गत 'रतनगढ़' पूज्य श्रीभाईजी का पैतृक निवास स्थान है। पूज्य श्रीभाईजी अपने परिवारीजनों के साथ एकान्त व स्वास्थ्यलाभ की दृष्टि से कुछ दिनों के लिए यहाँ आए हुए थे, साथ में पूज्य श्रीराधाबाबा अन्तरंग सेवक श्रीरामसनेहीदादा व श्रीभगतजी भी थे।

पूज्य श्रीराधाबाबा इन दिनों कठोर काष्ठमौन व्रत में थे। काष्ठमौन की अवधि में किसी की ओर देखना, बोलना व संकेत करना भी बंद था किन्तु सचल वृन्दावन स्वरूप पूज्य श्रीभाईजी के साथ ही रहने के अपने नियमानुसार ये भी रतनगढ़ आए हुए थे। श्रीठाकुरजी के यहाँ पहुँचने पर पूज्य श्रीभाईजी ने पूज्य श्रीराधाबाबा की कुछ सेवाएँ सौंप दी। ये नियत

समय पर श्रीरामसनेही दादा के साथ मिलकर सेवाकार्य में सहयोग दिया करते थे। शेष समय एकान्त में नाम जप करते थे।

श्रीठाकुरजी को पूज्या मैय्या (पूज्य भाईजी की धर्मपत्नी) एवं समस्त परिवारीजनों का खूब प्यार-दुलार मिलता था। पूज्य भाईजी प्रायः सन्ध्या के समय हवेली के प्राँगण में अपने परिवार के साथ बैठकर भगवद् चर्चा करते तथा श्रीठाकुरजी को अपने निकट बिठाकर उनसे स्व-रचित पदों का गायन करवाते, तो कभी स्वयं गाकर सुनाते। श्रीठाकुरजी उनके साथ सारंगी बजाते। इसप्रकार अत्यन्त सहज रूप से पूज्य भाईजी अपने आश्रितजनों के हृदय में ब्रजप्रेम का बीजारोपण करते थे। इस समय श्रीठाकुरजी की अवस्था लगभग २१-२२ वर्ष की थी। पूज्य भाईजी इन्हें पुत्रवत् स्नेह देते हुए कहते कि 'घनश्याम म्हारो टॉबर छे।'

श्रीठाकुरजी के भजनभाव की वृद्धि हेतु पूज्य भाईजी इन्हें पूज्य राधाबाबा की गंभीर भाव दशाओं एवं उनके वैराग्यपूर्ण जीवन के प्रसंग सुनाते थे। जिनको सुनकर पूज्य बाबा के प्रति श्रीठाकुरजी की श्रद्धा व निष्ठा और भी बलवती होती जाती। पूज्य भाईजी स्वयं को अत्यधिक गोपनीय रखते थे। प्रायः लोग इनके बाह्य कलेवर को देखकर इनकी उच्च भगवदीय स्थिति का अनुमान नहीं लगा पाते किन्तु श्रीठाकुरजी ने पूज्य श्रीराधाबाबा के द्वारा अनेकों बार इनकी परम भागवती स्थिति की चर्चा सुनी थी और प्रत्यक्ष रूप में भी उन्हें उनकी कृपा का अनेकों बार अनुभव होता था इसलिए उनके बारे में ठाकुरजी को कोई संदेह नहीं था।

यहाँ के भजनमय वातावरण में श्रीठाकुरजी का मन खूब लगा रहता

था। इनके स्वास्थ्य में भी पर्याप्त सुधार हो गया था। एकदिन श्रीठाकुरजी अपने कमरे में बैठे सारंगी वादन कर रहे थे। सारंगी में वे राग पीलू बजा रहे थे। इसी समय पूज्य बाबा शौचालय के लिए गए। सारंगी की स्वरलहरी शौचालय तक भलीभाँति पहुँच रही थी। राग की चमत्कारिता ने पूज्य बाबा की हृद्गत कोमल भावनाओं को झंकृत कर दिया। इनका बाह्यज्ञान जाता रहा। ये किसी अनुपम लीला की अनुभूति में गहरे डूब गए। शौचालय में ही उनकी भावसमाधि लग गई ऐसे में शौचक्रिया व समय का भान ही नहीं रहा। परिचर्या में रहने वाले श्रीरामसनेही जी एवं श्रीभगतजी अत्यधिक चिंतित हो गए।

पूज्य बाबा को शौचालय में आधा घंटे से अधिक समय नहीं लगता था, किन्तु आज बहुत समय हो गया था। लगभग दो घंटे होने को आ रहे थे किन्तु बाबा शौचालय से बाहर नहीं निकले। पूज्य श्रीभाईजी को तुरन्त इसकी सूचना दी गई। वे तत्काल शौचालय की ओर आए। इधर आने पर इनके श्रवणपथ पर जब सारंगी की स्वर लहरी गूँजी तो इन्हें समझते देर न लगी कि सारंगी वादन के मादक प्रभाव से ही पूज्य बाबा को बाह्यजगत की सुधि नहीं रही है। तब वे श्रीठाकुरजी के कक्ष की ओर गए। पूज्य भाईजी को एकाएक सामने आया देखकर ठाकुरजी हड़बड़ा कर खड़े हो गए। पूज्य भाईजी ने, श्रीठाकुरजी के कंधे पर अपना हाथ रखते हुए स्नेहपूर्ण वाणी में कहा–'भैय्या! बाबा को तन्तुवाद्य बड़े प्रिय हैं, उसपर सारंगी तो उन्हें अत्यधिक प्रिय है, एक बात और है कि पीलू राग को सुनकर तो उन्हें बड़ा ही भावोद्दीपन होता है। सारंगी वादन से उनकी भावनिमग्नता बढ़ गई है। उन्हें शौचालय गए हुए दो घंटे से अधिक समय हो गया है और अभी तक वे बाहर नहीं निकले हैं।'

पूज्य श्रीभाईजी के इस कथन को सुनकर पहले तो श्रीठाकुरजी कुछ समझ ही न पाए कि इसे मैं सारंगी वादन की सराहना समझूँ कि सारंगी वादन का दोष मानूँ। पूज्य बाबा अपनी भाव भरी मस्ती में हैं। यह तो इनको सदा से यथेष्ट ही है किन्तु मेरे सारंगी वादन से इनके प्राकृत देह को कष्ट हो रहा है, इनकी नित्यक्रिया में बाधा पहुँच रही है, यह सोचकर वे मन ही मन अत्यन्त दुखी हुए और तत्काल पूज्य श्रीभाईजी के पीछे-पीछे चल पड़े।

इधर पूज्य भाईजी ने शौचालय के बाहर से श्रीबाबा को आवाज दी। पूज्य भाईजी की वाणी सुनकर बाबा की वृत्तियों ने बाह्यजगत को पकड़ना प्रारम्भ कर दिया और वे बाहर निकल आए। उस दिन से श्रीठाकुरजी यह ध्यान रखते थे कि कहीं सारंगी वादन से सेवा में बाधा न पहुँचे। श्रीभाईजी व बाबा के संकेत पर ही वे सारंगी वादन करते थे।

पूज्य श्रीराधाबाबा को उद्दीपन

एक प्रसंग गीतवाटिका गोरखपुर का है। श्रीठाकुरजी अपनी कुटिया में शयन कर रहे थे। अर्धरात्रि में उनकी नींद उचट गयी और वे उठ बैठे। घड़ी में समय देखा तो रात्रि के दो बज रहे थे। उन्होंने पुनः सोने का प्रयास किया पर नींद नहीं आयी तब यह सोचकर कि थोड़ी देर में उठना ही है क्यों न सारंगी का अभ्यास किया जाए।

रात्रि के तीसरे पहर में निताँत शाँत वातावरण था। नीरवता को चीरते हुए सारंगी के स्वर मंद-मंद गति से चहुँओर अनुगुञ्जित होने लगे। श्रीठाकुरजी राग की मस्ती में ऐसे डूब गये के उन्हें समय का भान नहीं रहा। अचानक पूज्य श्रीराधाबाबा के पास पहुँचने के अपने नित्य नियम

का उन्हें स्मरण हुआ। समय देखा तो सुबह के चार बजने वाले थे। वे शीघ्रता से उठे और दैनिक क्रिया से निवृत्त होकर पूज्य बाबा की कुटिया की ओर चल पड़े। अभी वे कुटिया के निकट पहुँचे ही थे कि पूज्य बाबा को कुटिया के बाहर आते हुए देखा। ठाकुरजी को देखते ही पूज्य बाबा गद्‌गद् स्वर में कहने लगे–'ठाकुर, आज तो तुम निहाल हो गये' और ठाकुरजी का हाथ पकड़कर कुटिया के अन्दर गये। जहाँ उनका शैय्यापट्ट बिछा हुआ था उसकी ओर संकेत करते हुए कहने लगे– 'ठाकुर यहाँ इसी चौकी पर नीलसुन्दर अपनी प्राणप्रियतमा श्रीराधाजी के साथ बैठे थे। जैसे ही तुम्हारे द्वारा बजाए जा रहे राग का सम आता तो वे हौले से श्रीप्रियाजी की जन्घाओं पर थपकी देते थे। तुम सारंगी पर राग 'ललित' बजा रहे थे न। मैं सोच ही रहा था कि यदि ठाकुर जगा होता तो मैं उससे राग ललित बजाने के लिए कहता कि इतने में तुमने सारंगी में वही राग बजाया और उसके बाद यह सब दृश्य मूर्त हुआ। ठाकुर! यदि तुम विश्वास कर सको तो कर लो मैं सत्य-सत्य कहता हूँ कि इन्हीं चर्म चक्षुओं से मैंने यह सब लीला देखी है। भैय्या! आज तो तुम निहाल हो गए।"

पूज्य बाबा के मुख से यह सब सुनकर श्रीठाकुरजी अत्यन्त विस्मित हो गये। पूज्य बाबा की भाव विह्वल दशा उस अलौकिक अनुभूति को व्यक्त कर रही थी। यह सब देख सुनकर श्रीठाकुरजी बड़े ही संकोच से बोले कि 'बाबा यह सब तो आप ही जाने....'।

विरक्त वेष का निषेध

जीवन में सङ्ग का अति महत्व है। जैसा सङ्ग होगा वैसा ही रंग

चढ़ेगा। भक्तजनों के सङ्ग से भजन की ओर स्वाभाविक उन्मुखता होती है। यदि विशुद्ध भजनानन्दी विरक्तजनों का सङ्ग प्राप्त हो तब तो कहना ही क्या, वैराग्य का नशा सिर चढ़कर बोलेगा ही। श्रीठाकुरजी को एक ओर भगवत् प्राप्त सिद्ध महापुरुष पूज्य श्रीभाईजी व पूज्य श्रीराधाबाबा की कृपा प्राप्त थी, तो दूसरी ओर इनके ऊपर रसवारिधि में सतत् अवगाहन करने वाले परमपूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराज का वरद्हस्त था। इन महापुरुषों की उन्मुक्त रहनी, असंगता, एकांतप्रियता भावगोपन कुशलता आदि अद्भुत गुणों का प्रभाव श्रीठाकुरजी पर ऐसा पड़ा कि ये भी तद्वत् आचरण करते हुए खान–पान, निद्रासुख भूलकर भजन में तल्लीन रहते। एकबार इनके मन में विरक्त वेष धारण करने की इच्छा जागी। इन्होंने एक गूदड़ी बनवाई और दो करुआ खरीदे। इसके बाद विरक्त वेष धारण करने हेतु पूज्य श्रीमहाराजजी से अनुमति माँगी। पूज्यश्री ने श्रीठाकुरजी से कहा कि इस बारे में पूज्य पंडित गयाप्रसादजी महाराज से अनुमति लीजिए। पूज्य पंडितजी उच्चकोटि के संत थे। इनकी धामनिष्ठा, गुरुनिष्ठा और नाम निष्ठा सर्वत्र प्रसिद्ध थी। संतों व ब्रजवासियों के प्रति इनकी विशेष आदरबुद्धि थी। श्रीठाकुरजी को यह विश्वास था कि पूज्य पंडित जी से अवश्य अनुमति मिल जाएगी, पर हुआ इसका उल्टा।

पूज्य पंडितजी रासलीला के अत्यन्त प्रेमी थे। इन्होंने श्रीठाकुरजी को स्वरूप बनते देखा था और पूज्य श्रीराधाबाबा व पूज्य श्रीभाईजी एवं पूज्य श्रीमहाराजजी की इनपर बड़ी कृपा है, यह भी इन्हें ज्ञात था। इनके उज्वल वैराग्यपूर्ण जीवन को भी वे जानते थे। एकबार चर्चा में पूज्यपाद पंडित श्रीगयाप्रसादजी ने अपने आश्रित साधकजनों के मध्य

श्रीठाकुरजी के सम्बन्ध में टिप्पणी करते हुए कहा था कि 'ये साधारण बालक नहीं है, ये तो बाल संत हैं। इनमें संसार का तनिक भी प्रवेश नहीं है।' श्रीठाकुरजी के द्वारा विरक्त वेष धारण करने की आज्ञा माँगते देखकर इन्हें प्रसन्नता न हुई। वे बोले-'ठाकुर घनश्याम! आपको अब तक ठाकुर स्वरूप में लोग पूजते रहे हैं और अब विरक्त वेष धारण कर लेने पर और भी सम्मान मिलने लगेगा। लोग कहेंगे कि ये वे ही श्रीठाकुरजी हैं अब महात्मा हो गए हैं ऐसा कहकर सम्मान देंगे, पैर छुएँगे किन्तु सम्मान भजन मे बड़ा भारी विघ्न है। वेश धारण करने मात्र से कोई विरक्त नहीं हो जाता। विरक्ति तो मन की वस्तु है। भगवत्प्रेम प्राप्ति के लिये साधु बनने तथा वेश बदलने की आवश्यकता नहीं है। साधु न बनें, साधुता धारण करें। इस घोर कलिकाल में वेश की मर्यादा निभाना बहुत कठिन है। संसार के भोगों में असारता दिखाई दे और भगवद्दर्शन की तीव्र इच्छा हो, इसप्रकार वैराग्य व लालसा से सम्पन्न व्यक्ति ही विरक्त कहलाने योग्य है। साधक वही जो सतत् सावधान रहे, अपने मन पे निगरानी रखे कि कहीं यह विषयों की ओर तो नहीं जा रहा है और सावधानी पूर्वक उसे सब ओर से खींचकर अपने प्राणधन श्रीकृष्ण में लगाए। आपके ऊपर तो पूज्य श्रीराधाबाबा की व श्रीमहाराज जी की कृपा भई है। ये जैसी आज्ञा दें वैसा ही करें।'

पूज्य पंडितजी महाराज की ऐसी मन्शा जानकर श्रीठाकुरजी चुप हो गए। मन ही मन उनकी बातों का मनन करते हुए वे वृन्दावन वापस आ गए। बाद में श्रीठाकुरजी जब गोरखपुर गीतावाटिका गए, तब पूज्य बाबा के सन्यास वेश को देखकर इनके हृदय में विरक्त वेश लेने की इच्छा फिर जाग उठी। उन्होंने एकाँत में अपने मन की बात पूज्य

श्रीराधाबाबा से कही। पूज्य श्रीराधाबाबा ने सारगर्भित शब्दों में अपना मत स्पष्ट करते हुए कहा-'ठाकुर! सन्यास वेष तो समाज में सदा से समादरणीय रहा है, किन्तु भगवद् प्राप्ति का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। जिसके जीवन में श्रीकृष्ण ही एकमात्र प्राप्तव्य (लक्ष्य) हैं और अपनी ओर से वह पूरी ईमानदारी से चेष्टारत् है तो अनुभूति हुए बिना नहीं रहेगी। अब भैय्या यदि तुम मुझसे यह पूछो कि बाबा आपने सन्यास वेष क्यों धारण किया? तो मैं सच कहता हूँ कि श्रीपोद्दारजी महाराज यदि मुझे पहले मिल गए होते तो मैं सन्यास वेष कदापि न लेता। अब तो मेरे द्वारा इसका निर्वाह मात्र हो रहा है। ठाकुर! तुमको तो मैं ऐसे ही देखना चाहता हूँ। देखो ठाकुर! **आठ गाँठ लगाकर धोती पहन लेना किन्तु लाँग मारकर ही धोती पहनना।** वेष धारण करते ही अहंकार अपना आसन जमा लेता है कि अब हम महात्मा हो गए, अब सभी को हमारा सम्मान करना चाहिए। इस प्रकार का अहंकार आते ही साधना बाधित हो जाती है। साधक को बहुत विनम्र बनकर रहना चाहिए। **दिखावे से बहुत दूर सहज, सरलता पूर्वक भजन करते रहना चाहिए। जबतक श्रीकृष्ण जीवन की परम आवश्यक वस्तु न बन जाएँ और मन में भोगों के प्रति आकर्षण बना रहे तब तक वेष मात्र दिखावा ही तो है।'**

पूज्य बाबा की स्पष्टोक्ति ने श्रीठाकुरजी के मन पर गहरा प्रभाव डाला। उन्होंने वेष का आग्रह त्याग दिया। बाद में श्रीधाम वृन्दावन आने पर उन्होंने परमपूज्य महाराजश्री को सारी बात बतायी, जिसे सुनकर पूज्य महाराजश्री अत्यन्त प्रसन्न हुए। इनके मन की ही बात मानो उन महापुरुषों के द्वारा अनुमोदित की गई थी। पूज्य महाराजश्री बोले-'वेष धारणकर हम अच्छे साधक ही तो कहलाएँगे और अनेक जन्मों तक

साधना करते-करते साधक रूप में ही तो बने रहेंगे, जबकि **हमारा स्वतःसिद्ध रसिक स्वरूप पूर्व से ही तैयार है। हमारा प्रतिक्षण साध्य-समागम से युक्त है। आवश्यकता है अपने विमल स्वरूप के स्मरण होने की। निज दिव्य रसमय स्वरूप का भान होते ही वह अपने को सहज श्रीकृष्ण के निकट सहचरि "मण्डल"** मध्य जागृत पाता है। **वह पूर्ववत् वहीं का वहीं था। श्रीकृष्ण न कहीं गए, न कहीं से आए पल भर भी। वे तो रहते ही हैं निकटतम प्रान्त में। बस उनको देखने वाली प्रेममयी दृष्टि की ही विशेषता है।'**

'आपको तो मेरे निकट ऐसे ही रहना चाहिये। मध्यम मार्ग ही उचित है। जहाँ भी जिस किसी भी स्थिति में रहना पड़े, संत दृष्टि से ऐक्य रहते हुए अल्प जीवन को सार्थक करना चाहिये। **यदि साधक को इसी दुर्लभ मनुष्ययोनि में भगवद् प्राप्ति करनी हो तो एकान्त में व्याकुलतापूर्वक खूब नाम ले। साधक को भगवान तथा व्यक्त-अव्यक्त सिद्धसंत सदा देखते रहते हैं। व्याकुलता देखकर श्रीकृष्ण स्वयं किसी संत को प्रेरणा देकर उसके पास भेज देते हैं।** कृपामय सिद्धसंत स्वयं ही ऐसे साधकों की खोज में रहते हैं। हमें तो दीनता पूर्वक खूब नाम लेना चाहिए। श्रीकृष्ण किसी बाह्य वेशभूषा से प्रसन्न नहीं होते। वे हृदय की निर्मल प्रीति को ही देखते हैं।' परम पूज्य श्रीमहाराजजी की अमृतमयी वाणी को सुनकर श्रीठाकुरजी के हृदय में पूर्ण समाधान प्राप्त हो गया। इस प्रकार पूज्य राधा बाबा व पूज्य श्री महाराज जी की आज्ञा से इन्होंने आजीवन खादी के सफेद धोती-कुर्ते में ही रहने का निश्चय किया।

वेदान्ती जी से संवाद

एकबार श्रीठाकुरजी को अपने अग्रज श्रीश्रीरामजी के विवाह के उपलक्ष्य में माताजी के विशेष आग्रह पर अपनी जन्मभूमि घाँघोली जाना पड़ा। जिस परिवार में विवाह तय हुआ था, उस घर में तीन कन्याएँ थीं। सबसे बड़ी कन्या श्रीठाकुरजी के सबसे बड़े भाई श्रीनवलकिशोरजी से ब्याही थी। अब दूसरी कन्या का विवाह इनके दूसरे अग्रज श्री श्रीरामजी से हो रहा था। कन्या के पिता का कम अवस्था में ही देहान्त हो चुका था इस कारण कन्या के परिवार की जिम्मेदारी का निर्वाह इनके बाबा श्रीवेदान्तीजी कर रहे थे। श्रीवेदान्तीजी का वेदान्त सूत्रों व गीता पर अच्छा अधिकार था। इनके उपदेश सुनकर कई युवक सन्यासी हो गये थे। साधारण चौपाई व दोहों के द्वारा वे तात्त्विक विवेचना पूर्वक व्याख्यान दिया करते थे। ये बड़ा ही सादा जीवन व्यतीत करते थे।

इनके मन में यह संकल्प था कि यह जो तीसरी कन्या रह गई है इसका सम्बन्ध ठाकुर घनश्यामजी से कर दूँगा। इस सम्बन्ध में उन्होंने बड़े भाई श्रीनवलकिशोरजी से चर्चा की। श्रीनवलकिशोरजी प्रसन्न तो हुए परन्तु श्रीठाकुरजी के विरक्त जीवन बिताने के निश्चय को वे जानते थे इस कारण वे असमञ्जस में पड़ गये। उन्होंने कहा कि आप स्वयं ही इस बारे में ठाकुर घनश्यामजी से बात कर लें। तब श्रीवेदान्तीजी ने ठाकुरजी का मन्तव्य जानने के लिए उनके समक्ष अपना प्रस्ताव रखा। इनकी बात सुनकर ठाकुरजी ने उनसे ही प्रश्न कर लिया कि आप सन्यासीवत् जीवन क्यों व्यतीत कर रहे हैं? आप स्वयं तो सभी को ज्ञान-वैराग्य की शिक्षा देते हैं और मुझसे विवाह के लिए आग्रह कर रहे

हैं। तब श्रीवेदान्तीजी बोले-'मेरी परिस्थिति भिन्न है, मैं बचपन से ही इस ओर लग गया था। मेरी स्वाभाविक ही इस ओर रुचि रही। तो भी मैं पारिवारिक कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए ही ध्यान भजन कर रहा हूँ। राजा जनक आदि भी ब्रह्मज्ञानी थे किन्तु वे भी गृहस्थ में रहकर राजकाज चलाते थे। प्राचीनकाल में ऋषि-मुनियों ने भी गृहस्थ आश्रम का सम्मान किया है। गृहस्थ आश्रम भगवद् प्राप्ति के लिए बाधक नहीं है बल्कि किले की लड़ाई की तरह सुरक्षित व भगवद प्राप्ति में सहायक है। आप की अभी छोटी अवस्था है, इस उम्र में सभी को खूब वैराग्य चढ़ता है। आगे जाकर वैराग्य सध नहीं पाता और बिना वैराग्य के ज्ञानोपदेश टिक नहीं पाते। किसी ब्रह्मज्ञानी संत के निकट रहकर ही भजन करना चाहिए, ऐसे मनमाना नहीं। ब्रह्म का साक्षात्कार ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है।'

श्रीठाकुरजी ने इनकी सारी बात धैर्यपूर्वक सुनी तत्पश्चात् बोले-'आप की बात अक्षरश: ठीक है किन्तु मेरा समाधान नहीं हो रहा है। सबसे पहली बात यह कि मेरी विवाह में रुचि नहीं है इस सम्बन्ध में मेरे मन में कोई संकल्प ही नहीं उठता जबकि भजन-साधन की ओर मन सदा उत्साहित रहता है। फिर भी यदि आप मेरी शंका का समाधान कर दें तो मैं आपकी बात मान लूँगा। आप कहते हैं कि गृहस्थ आश्रम इस मार्ग में बाधक नहीं है। मेरी दुविधा यह है कि गृहस्थ आश्रम में आने के बाद, गृहस्थ धर्म के निर्वाह के लिए व्यवहार जगत में तो उतरना ही पड़ेगा और व्यवहार जगत में आने पर व्यक्ति झूठ-साँच भी करेगा परिणाम स्वरूप राग-द्वेष में और अधिक फँसता ही जाएगा जिससे परमार्थ की हानि होगी ही। साधन-भजन का समय, व्यवहार निभाने में

चला जाएगा। वृत्तियाँ अनेक लोगों की ममता-आसक्ति में बिखर जाएँगी। दूसरी बात यह है कि इस बात का क्या विश्वास किया जाए कि सहधर्मिणी भी समान धार्मिक विचारों की ही होगी। यदि उसके विचार परमार्थ के विपरीत बहिर्मुखी हुए, तब तो परमार्थ की साधना अत्यन्त कठिन हो जाएगी और सारी शक्ति गृहणी को अनुकूल बनाने में ही लग जायेगी। यदि इसमें सफल भी हुए तो परिणाम के रूप में एक आदर्श-गृहस्थ ही तो प्राप्त हुआ। परमार्थ तो सधा नहीं। आप ब्रह्मानुभूति की बात कह रहे थे पर मेरी उपासना तो ब्रह्म से भी परे परात्पर ब्रह्मश्रीकृष्ण की है जिनकी श्रीअङ्ग काँति को ही 'ब्रह्म' के नाम से जाना जाता है। भगवद् अनुराग की प्राप्ति के लिए, संसारी विषयों से वैराग्य की अत्यन्त आवश्यकता है। संसारी जनों का अधिक संसर्ग रजोगुण बढ़ाता है, जो भजन के पथ में बाधक है। इसीलिए मैं वैवाहिक जीवन के प्रपंच से मुक्त रहना चाहता हूँ।'

इसप्रकार लगभग पूरी रात दोनों ही लोग इस विषय पर चर्चा करते रहे। इधर श्रीश्रीरामजी के विवाह संस्कार सम्बन्धी कार्य सम्पन्न होते रहे। अन्त में वेदान्ती जी ने ठाकुरजी के वैराग्यपूर्ण मानस व भक्ति निष्ठा को देखकर अपना आग्रह छोड़ दिया किन्तु वे कुछ निराश से होते हुए बोले कि मैंने तो तीसरी कन्या आपको देने का संकल्प किया था अब क्या करूँ। ठाकुरजी ने कहा- 'भगवद् इच्छा से सब अच्छा ही होगा। आपकी इस कन्या की जिम्मेदारी भी राम भैय्या ही सम्भाल लेंगे।' कुछ दिनों बाद घटनाक्रम ऐसा हुआ कि श्रीरामजी की धर्मपत्नी का देहावसान हो गया तब श्रीवेदान्तीजी ने तीसरी कन्या का विवाह भी श्रीश्रीरामजी से कर दिया।

******

७ भजन कुटीर श्रीराधाकेलि कुञ्ज

नाम स्मरण का सुख भीड़ में नहीं मिलता है। एकान्त, शान्त स्थल में, कोलाहल से दूर रहकर ही इसका आस्वादन किया जाता है। नामरस के रसिक संतों का ऐसा निर्णय है कि 'भजन हय मने, भजन हय वने, भजन हय कोने।' इसी सिद्धान्त को श्रीठाकुरजी ने अपनाया। ये भीड़भाड़ के स्थानों में जाने से कतराते थे। इनका विश्रामस्थल या तो पूज्य श्रीमहाराजजी के श्रीचरणकमल रहते अथवा यमुना का पवित्र पुलिन, परिक्रमापथ या सेवाकुञ्ज आदि स्थल। श्रीठाकुरजी कभी-कभी श्रीगिरिराज तरहटी एवं श्रीधाम बरसाने जाकर भी रहते। बाह्यजगत से इनका सम्पर्क लगभग टूट सा गया था। वृन्दावन में जब ये किराये पर कमरा लेकर रहते थे उस समय उन्हें महीने के अन्त में किराये के पैसों की कैसे व्यवस्था हो यह चिन्ता हो जाती थी, जिससे उनके भजन में विक्षेप होता था। किराए के मकानों में अन्य गृहस्थ लोगों के रहने से रजोगुणी वातावरण रहा करता था जो उन्हें सहन नहीं होता था। वे ऐसे स्थान की खोज में रहते थे जहाँ बाहरी लोगों से सम्पर्क कम से कम हो।

दैववशात् एकदिन इनकी भेंट कलकत्ता के पूर्व रासप्रेमी भक्त श्रीबद्रीदास अग्रवाल से हो गई। वे श्रीठाकुरजी के बदले हुए स्वरूप को देखकर चकित रह गये। कहाँ तो ठकुराई की ठाट-बाट थी, रेशमी वस्त्र पहनते थे, गोल-मोल प्रसन्न मुख था और कहाँ अब एक मैली सी बण्डी, घुटने तक साफी , सिर घुटा हुआ और अत्यन्त दुर्बल शरीरवाले

ठाकुरजी इनके सामने खड़े थे। इनके बदले हुए रूप को देखकर सेठजी को बड़ा दुख हुआ। उन्होंने सहानुभूतिवश पूछा-आपने यह क्या रूप बना रखा है ? क्या बात है आपको किसी बात की चिन्ता है क्या ? किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो मुझसे कहिए मैं आपकी सहायता करूँगा।

श्रीठाकुरजी को इनकी बात सुनकर अच्छा न लगा। कहाँ तो संसार इनके लिये लुप्तप्राय था। इन्होंने घर-परिवार से भी दूरी बना रखी थी। परम दुर्लभ भगवद्प्रेम की प्राप्ति का लक्ष्य लेकर ब्रज विरही संतों के पथ का अनुसरण कर रहे थे। अब कहाँ सेठजी इन्हें दयनीय समझते हुए इनकी भावना के विपरीत बात कह रहे थे।

श्रीठाकुरजी इनसे कुछ तीखे स्वर में बोले-'आपने वृन्दावन के फुटपाथों में पड़े हुए सारे असहायों व कंगालों की सहायता कर दी है, अब मैं ही बचा हूँ आपकी सहायता पाने को ?' श्रीठाकुरजी के मुख से यह उत्तर सुनकर सेठजी अवाक् रह गए। बाद में जब उन्हें ये पता चला कि श्रीठाकुरजी अब त्याग-वैराग्य पूर्वक रहते हुए भजनशील हैं तो उन्हें अपनी गलती का अनुभव हुआ। श्रीठाकुरजी से पुनः मिलने पर अपनी भूल सुधारते हुए उन्होंने अत्यन्त स्नेहपूर्वक श्रीठाकुरजी से कहा कि मैं तो यह चाहता हूँ कि आप सुविधा पूर्वक रहें, आपको किसी बात की चिन्ता न करनी पड़े। यदि भजन ही करना है तो निश्चिन्तता पूर्वक अपनी व्यवस्था में रहकर भजन करें। आपका इसप्रकार अव्यवस्थित रहन-सहन व खान-पान देखकर ही मुझे दुख हुआ था। मैं तो आपकी प्रसन्नता चाहता हूँ यदि आप उचित समझें तो अपने लिये कोई स्थाई कुटिया देख लें, जहाँ निश्चिन्तता पूर्वक निर्विघ्न भजन हो सके।

इनके द्वारा कईबार श्रीठाकुरजी से ऐसा आग्रह किया गया तब श्रीठाकुरजी ने पूज्य महाराजजी से इस सम्बन्ध में चर्चा की। पूज्य महाराजजी की अनुमति मिलने पर सेठ बद्रीप्रसादजी से इस बारे में चर्चा हुई और उनके सहयोग से प्राचीन मदनमोहन मन्दिर के पीछे एक छोटा सा भूखण्ड खरीद लिया गया। यह एक निर्जन ऊँचा-नीचा टीला था जो प्राचीन 'द्वादश आदित्य टीले' का एक हिस्सा है। इस भूखण्ड के एक ओर ठाकुर श्रीमदनमोहनदेवजी का प्राचीन मन्दिर स्थित है और दूसरी ओर पूज्यपाद् सनातन प्रभु की समाधि स्थलि है। पूज्य महाराजश्री को यह स्थान दिखाया गया। उन्हें यह स्थान भजनानुकूल जान पड़ा। वे वहाँ कुछ देरतक आँखें बंद करके बैठे रहे, पश्चात् अपने कुछ सजल व आरक्तपूर्ण नेत्रों को खोलते हुए कहा-'इस स्थान पर पूज्य श्रीसनातन गोस्वामीजी के दिव्य परमाणु व्याप्त हैं। आप यहाँ पर अपनी भजन कुटीर बनवायें।' ठाकुरजी ने प्रसन्नतापूर्वक निर्माणकार्य आरम्भ करा दिया। इसप्रकार इस स्थान पर एक पक्की कुटिया का निर्माण हुआ। इसमें एक बड़ा कक्ष, एक गुफा, एक कोठरी एवं जीना व बरामदे का निर्माण हुआ। इस कुटिया का नाम '**श्रीराधाकेलि कुञ्ज**' रखा गया।

कुटिया में सामान के नाम पर टाट की बोरी, भोजन के एक-दो पात्र, कुछ धार्मिक पुस्तकें व ठाकुर सेवा ही थे। रात्रि में यहाँ कोई दूसरा व्यक्ति नहीं रुक सकता था। दिन में भी अति आवश्यक होने पर ही ये किसी से मिलते थे। एकमात्र जन्मदात्री पूज्या माताजी के लिये ही छूट थी। माताजी वर्ष में एक-दो बार अपने गाँव से लगभग ५०-५५ किलोमीटर पैदल चलकर इनसे मिलने वृन्दावन आती थीं। सिर पर एक पोटली रखकर लाती थीं जिसमें कुछ खाने-पीने की सामग्री होती

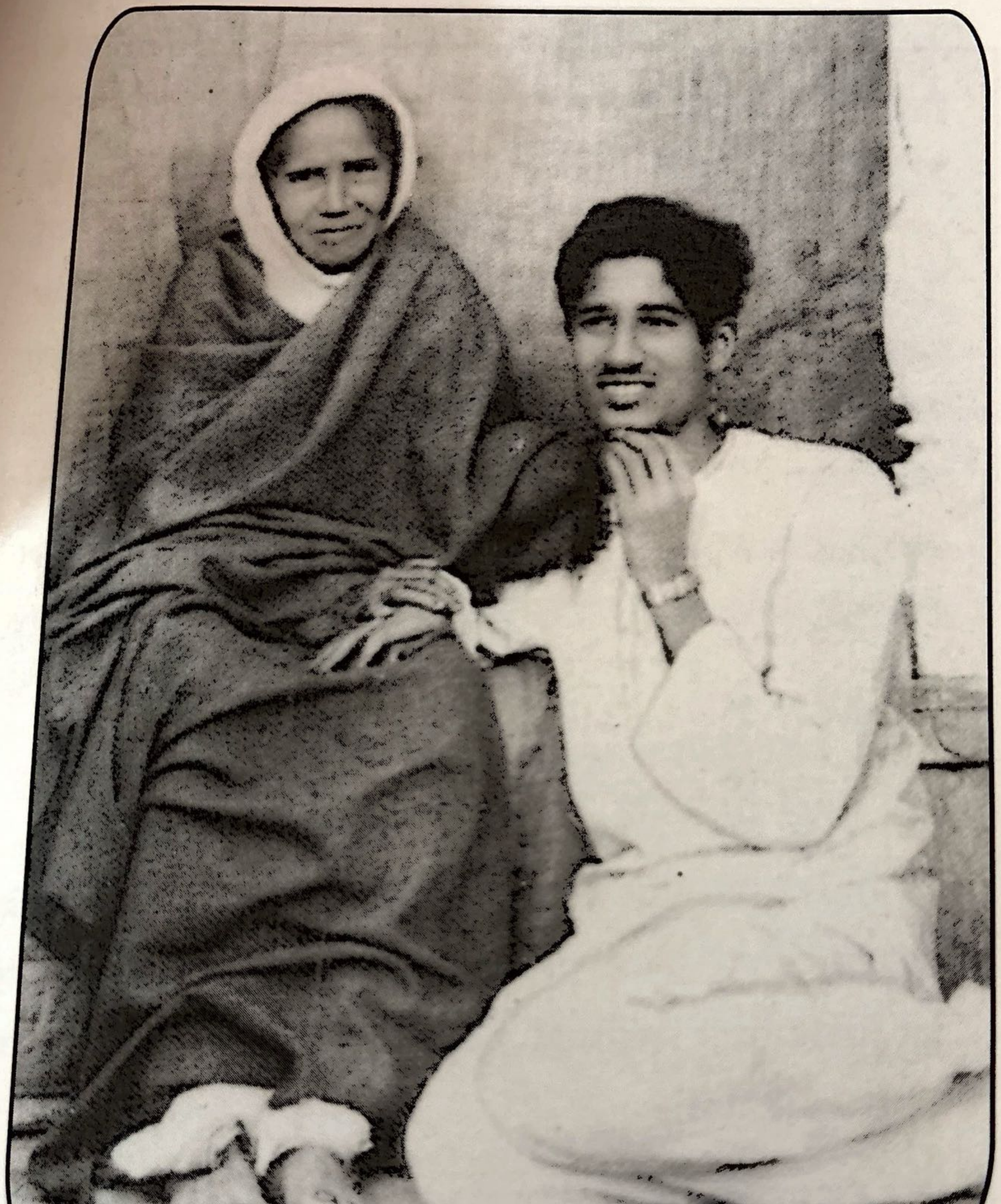
थी। एक-दो दिन अपने बालक के पास रुककर ये वापस गाँव लौट जाती थीं।

कुटिया के आसपास कोई बस्ती नहीं थी। केवल मालियों के कुछ मकान थोड़ी दूरी पर थे। सन्ध्या होते ही लोग इस ओर आना बंद कर देते थे। पास ही परिक्रमा पथ दिखाई देता था। परिक्रमार्थी जनों के दर्शन होते थे। कुछ दूरी पर श्रीयमुना की निर्मल धारा बहती थी जिसके किनारे पंक्तिबद्ध वृक्षों की सुन्दर शोभा दिखाई देती थी। शोरगुल के नाम पर पक्षियों का मधुर कलरव ही सुनाई पड़ता था।

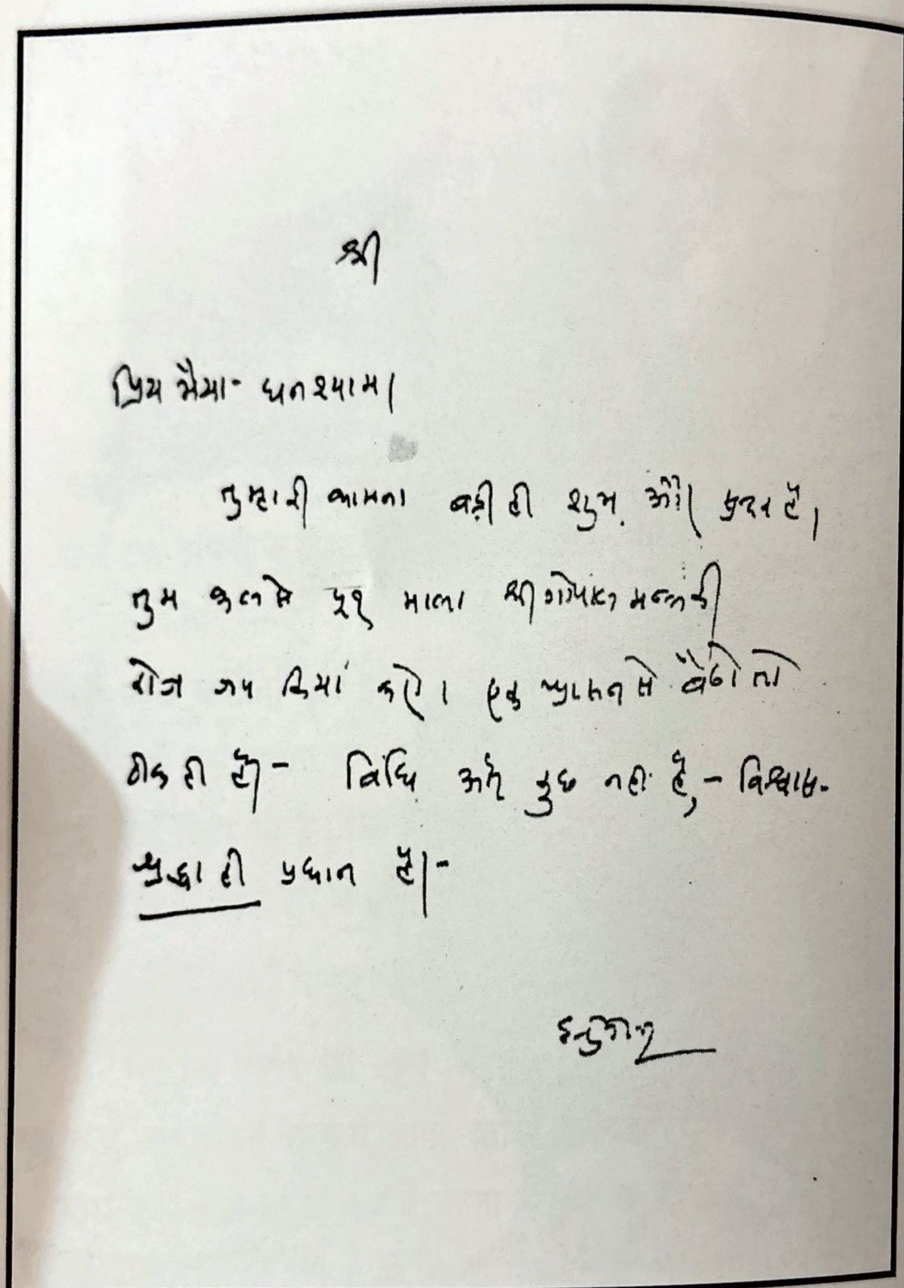
श्रीठाकुरजी सन्ध्याकाल में श्रीमहाराजजी के वचनामृत श्रवण करने के लिए गोपाल मन्दिर जाते थे और रात्रि में लगभग साढ़े आठ-नौ बजे तक अपनी कुटिया वापस आ जाते थे। एक साधू श्रीविठ्ठलजी उन्हें श्रीमदनमोहन मन्दिर की गली तक छोड़ने आते थे किन्तु गली के भीतर नहीं जाते; क्योंकि वहाँ इतना अन्धकार व निर्जनता थी कि उन्हें वापस लौटने में भय लगता था। इस कुटिया में कहीं-कहीं जमीन के भीतर साँपों के बिल भी हैं। जिनमें रहने वाले सर्प रात्रि में स्वच्छंद विचरण करते किन्तु श्रीठाकुरजी निर्भयता पूर्वक वहाँ रहते रहे।

उन्हीं के शब्दों में उनकी भजनचर्या इस प्रकार थी-

'मैने इस शरीर को खूब निचोड़ा। स्वरूपाई में इसने बहुत ठाठ किए, अब भजन करने में आना-कानी करता है। दूध, घी सब बंद। मेरे पास एक छोटा सा दो खण्ड वाला कुकर था जिसके नीचे एक छोटी अंगीठी बनी थी। उसी में साग-सब्जी जो भी उपलब्ध होता सब डालदेता और दो कोयले के टुकड़े उसके नीचे रखकर परिक्रमा के



पूज्या माँ के साथ



श्री

प्रिय भैया- घनश्याम।

तुम्हारी कामना बड़ी ही शुभ और सुन्दर है।
तुम कलसे एक माला श्रीगोपालमन्त्रकी
रोज जप किया करो। एक आसनमे बैठो तो
ठीक ही है- विधि और कुछ नहीं है,- विश्वास-
श्रद्धा ही प्रधान है।-

हनुमान

परम पूज्य श्री भाई जी (श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार)
द्वारा श्रीठाकुरजी को लिखा हस्तलिखित पत्र

लिये निकल जाता था। मंद-मंद आँच में भोजन तैयार होता रहता। दोपहर बाद सीतारामजी कुटिया में आते और कुकर को सीधा करके चले जाते। बस वही दिन में एकबार पा लेता था। भोजन के बाद मैं अपने नियम में बैठ जाता था। बार-बार भूख और आराम कैसा। कुछ दिन मैने नित्य दो परिक्रमा लगाई। एक दोपहर बारह बजे और दूसरी रात्रि बारह बजे। रात्रि में दो बजे वापस आता और दो से चार बजे तक विश्राम करता था। चार बजे उठकर स्नान आदि से निवृत्त होकर पुनः भजन में बैठ जाता था। पीछे जब महाराजजी ने कहा कि प्रातःकाल एकलाख नाम जप करके आया करिये, तो मैने रात्रि वाली परिक्रमा करनी छोड़ दी। रात्रि में एक-डेढ़ बजे उठकर सुबह छः बजे तक एकलाख जप संख्या पूरी कर लेता और प्रातः पूज्य श्रीमहाराजजी को प्रणाम करने गोपाल मन्दिर जाता था। संध्याकाल में पुनः उनके सत्संग श्रवणार्थ उनके पास पहुँच जाता था फिर श्रीबाँके बिहारीजी के दर्शनों के लिए जाता था।'

श्रीठाकुरजी जब श्रीबाँकेबिहारीजी के दर्शन करने जाते तब सिर पर गमछा कुछ इस तरह लपेटते कि मुख ढक जाए और मिलने-जुलने वाले इन्हें पहचान न पाएँ। उन दिनों उनका नित्य तीन लाख नामजप करने का नियम था। 'छप्पन घड़ी भजन, चार घड़ी शयन, शयने राधाकृष्ण स्वपन'। श्रीठाकुरजी के लिए पूज्यपाद श्रीसनातन गोस्वामी की यह रहनी ही परम आदर्श थी।

पूज्य महाराजश्री के सत्संग के प्रभाव से श्रीठाकुरजी का मन एक दिव्यानन्द में छका रहता। गर्मी के दिनों में वे अपनी कुटिया के भीतर

बनी हुई भूमिगत गुफा में बैठकर नामजप करते थे। गुफा में प्रवेश कर जाने पर बाहरी शोरगुल एकदम समाप्त हो जाता था। श्रीठाकुरजी ने कई वर्ष वहाँ नाम साधना की। खान-पान, विश्राम व निद्रासुख की ओर उनका ध्यान ही न जाता।

उस समय परम पूज्य महाराजश्री के आश्रित साधकों में अधिकाधिक नाम जप करने की होड़ सी लगी रहती थी। महाराजश्री के परिकर की वरिष्ठ साधिका पूज्यादेवीजी रात्रि में दो बजे उठकर भजन पर बैठती थीं। एक बार पूज्यादेवीजी ठाकुरजी की कुटिया पधारीं। उनकी दृष्टि वहाँ रखी घड़ी की ओर गई। घड़ी में डेढ़ बजे का अलार्म लगा देखा तो उन्होंने वापस आकर अपनी घड़ी में एक बजे का अलार्म लगा लिया और एक बजे से ही भजन में बैठने लगीं। अधिकाधिक भजन करने की त्वरा में दिन-रात का पता ही न लगता। रूखा-सूखा आधापेट भोजन मिलने पर भी सभी के अंदर खूब स्फूर्ति रहती। व्यर्थ वार्ता के लिए किसी को अवसर ही नहीं था। परम पूज्य श्रीमहाराज जी का कड़ा अनुशासन तो रहता ही था।

श्री ठाकुर जी अपनी एकान्तिक कुटिया में कभी-कभी तानपूरे के तारों को छेड़ते हुए वे विरह भाव के पद गाते। पूज्य महाराजश्री कभी-कभी उनकी कुटिया में आते। तब श्रीठाकुरजी को उनके श्रीमुख से श्रीकृष्ण महिमा व रूपलीला सम्बन्धी वचनावलियाँ सुनने को मिलतीं।

एकबार पूज्य महाराजश्री अज्ञातवास को चले गये। परिकरजनों ने बहुत खोजबीन करी तब भी उनका पता नहीं लगा। अत्यन्त दुःखी

होकर सभी साधकजन ब्रज की विभिन्न स्थलियों में पृथक-पृथक रहकर भजन करने लगे। श्रीठाकुरजी कभी श्रीगिरिराजजी, तो कभी बरसाना जाकर रहते थे। श्रीगिरिराज गोवर्धन में ये नित्य परिक्रमा करते थे। कहीं भी मधुकरी कर लेते और तरहटी में जहाँ-तहाँ पड़े रहते थे। उस समय की रहनी के प्रत्यक्षदर्शी एक वरिष्ठ ब्रजवासी ब्राह्मण महानुभाव ने उनके बारे में बताया 'ठाकुर घनश्याम कुँ ये वस्तु ऐसेहि नाय मिली। याने तो बड़ी भारी तपस्या करी है। एक फटो सौ गमछा और बनियान पहनतो। जहाँ-तहाँ श्रीगिरिराज तरहटी मैं पड़ो रहतो और भजन में ही प्रसन्न रहतो। कबहुँ भिक्षा करतो, कबहुँ नाय करतो, कड़ौ त्याग-वैराग्य कियो है याने तो।'

एकबार श्रीठाकुरजी के पैर में एक्ज़िमा रोग हो गया था। बार-बार खुजली होती एवं रक्त निकलता था। उचित चिकित्सा के अभाव में रोग ने फोड़े का रूप धारण कर लिया। कष्ट अधिक देखकर इसे तेजाब से जलाने का निर्णय लिया गया। निकटस्थ स्वजन बाबा मनोहरदासजी ने तेजाब की बूदें घाव में टपकानी शुरू की। तेजाब पड़ते ही चमड़ा जलने लगा। भीषण पीड़ा हुई किन्तु श्रीठाकुरजी अविचल बैठे रहे।

कुटिया में पूज्य श्रीभाईजी का आगमन

चिकित्सा के प्रति लापरवाही बनी रहने से एक्ज़िमा पुनः उभर गया और विशेष कष्टदायी हो गया। चलना-फिरना असंभव हो गया। पैर में सूजन आ गई। इन्हीं दिनों पूज्य भाईजी व पूज्य राधाबाबा का ब्रज में आगमन हुआ। ये दोनों सन्त बिड़ला मन्दिर में जो कि मथुरा व वृन्दावन के मध्य स्थित है, ठहरे हुए थे। श्रीभाईजी ने ठाकुरजी को बुलाने के

लिए एक आदमी भेजा किन्तु एक्ज़िमा से पीड़ित होने के कारण ठाकुरजी जाने में असमर्थ थे। इच्छा होते हुए भी वे तुरन्त दर्शन हेतु नहीं जा सके। दूसरे दिन पूज्य श्रीभाईजी का वृन्दावन में आगमन हुआ। पूज्य श्रीराधाबाबा बिड़ला मन्दिर में ही थे। पूज्य श्रीभाईजीने वृन्दावन के मन्दिरों में दर्शन व अर्चना सम्पन्न करके नगर के प्रतिष्ठित लोगों से भेंट की। इस कार्य में पूरा दिन व्यतीत हो गया। सूर्यास्त होने वाला था और बिड़ला मन्दिर लौटना आवश्यक था। श्रीभाईजी के साथ में श्रीकृष्ण जन्मभूमि के प्रबन्धक पंडित देवधरजी शर्मा भी थे, जो वापस लौटने की शीघ्रता कर रहे थे। श्रीभाईजी ने कहा–'अभी तो घनश्याम से मिलना है।'

साथ के एक व्यक्ति ने कहा– 'सूर्यास्त हो चुका है।'

श्रीभाईजी ने कहा– 'सूर्यास्त हो गया तो क्या हुआ ?'

पं. देवधरजी शर्मा ने कहा– 'कुटिया तो वृन्दावन के दूसरे छोर पर यमुना के किनारे स्थित है। वहाँ तक जाने के लिए गलियों में बहुत दूर तक चलना होगा।'

यह सुनकर पूज्य श्रीभाईजी ने उनको बड़ा ही मधुर उत्तर दिया– 'जीवन की सुन्दरता तो वृन्दावन की इन गलियों में घूमने में ही है।'

श्रीदेवधरजी ने फिर कहा–'रास्ता सँकरी–सँकरी गलियों से होकर जाता है, अँधेरा बढ़ रहा है, अतः वहाँ अभी जाना उचित नहीं है।'

श्रीभाईजी ने कहा–'चिंता की कोई बात नहीं है।' यह कहकर वे कुटिया की ओर पैदल ही चल पड़े।

पूज्य श्रीभाईजी को अचानक आया देखकर श्रीठाकुरजी के

आश्चर्य व आनन्द की सीमा न रही। प्रेमातिरेक में उनकी आँखों से आँसू छलक पड़े। उनके पास कोई बिछौना या आसन तो था नहीं जो उनके बैठने के लिए बिछाते। फिर उन्होंने शीघ्रता पूर्वक अपनी ओढ़ने वाली चादर चार परत बनाकर उनके बैठने के लिए बिछा दी। यह देखकर श्रीभाईजी बोले-'ठाकुर! तुम यह शिष्टाचार कहाँ से सीख गए?'

ठाकुरजी कुछ उत्तर न दे पाए परंतु उनके नेत्रों के आँसुओं ने सब कुछ कह दिया।

श्रीभाईजी ने चादर उठाकर एक किनारे रख दी और भूमि पर ही बैठ गए। ठाकुरजी की रहनी को देखकर श्रीभाईजी का हृदय द्रवीभूत हो रहा था। जब ठाकुरजी ने उन्हें प्रणाम किया तो अत्यन्त प्यार में भरकर लगे उनके पीठ पर हाथ फेरने। ठाकुरजी के पैरों पर हो रहे एक्ज़िमा को देखकरश्रीभाईजी ने कई बाते पूछीं तथा घाव की चिकित्सा हेतु कुछ औषधि भी बताई। वे वहाँ लगभग एक घंटे रुके। इसबीच उन्होंने कुटिया भी देखी। देखते क्या, वहाँ कुछ था ही नहीं। भीतर जाकर और झाँककर चले आए। फिर कुटिया की चौखट पकड़कर बहुत देरतक श्रीयमुनाजी का दर्शन करते रहे। दर्शन करते-करते उन्होंने कहा-'ये पुण्य सलिला यमुना के तट पर स्थित कुटिया का निर्जन एकान्त स्थान बड़ा प्यारा लग रहा है। यहाँ की प्राकृतिक रमणीयता कितनी अच्छी लग रही है। मैं भी ऐसे ही गंगा के तट पर नितान्त एकान्त में रहना चाहता था, परन्तु ईश्वरीय विधान कुछ और था।' चलते समय उन्होंने ठाकुरजी से कहा कि तुम्हारे पैर में कष्ट है, अतः तुम स्वयं मत आना। मैं कल

तुम्हारे लिए मोटर भेजूँगा। तुम मोटरकार से बिड़ला धर्मशाला पूज्यबाबा से मिलने आ जाना। देखो, गड़बड़ मत करना।

अज्ञात सिद्धसंत के दर्शन

अगले दिन श्रीठाकुरजी बिड़ला मंदिर गए। उन दिनों पूज्य बाबा काष्ठमौन में थे। उनके कक्ष के बाहर श्रीरामसनेहीदादा सेवा में उपस्थित थे। इनके साथ श्रीठाकुरजी को भी सेवा में वहाँ बैठने के लिए श्रीभाईजी ने संकेत किया। एकदिन पूज्य बाबा के कक्ष के द्वार पर एक संत बाबा से वार्ता करते दिखाई दिए। उनके भूरे लम्बे केश कमर तक लहरा रहे थे और गौर कान्तिमय शरीर पर मात्र एक वस्त्र था। पूज्य बाबा के सामने वे प्रणाम की मुद्रा में खड़े थे। श्रीठाकुरजी ने श्रीरामसनेहीदादा से पूछा कि यह संत पूज्य बाबा तक कैसे पहुँच गए। श्रीरामसनेहीदादा को वहाँ कोई संत दिखाई नहीं दे रहे थे। वे बोले- 'कहाँ! यहाँ तो कोई दिखाई नहीं दे रहा है।' काष्ठमौन के बाद श्रीठाकुरजी ने उन संत के विषय में पूज्य बाबा से पूछा तो बाबा ने बताया कि संत एक नहीं दो थे। ये दोनों परम सिद्ध अन्तरिक्षगामी महात्मा थे, जो यहाँ मुझसे मिलने आए थे। तुम्हारा परम सौभाग्य है कि इनमें से एक संत के तुम्हे दर्शन हुए।

पूज्य बाबा के इसी प्रवास के दौरान एक संत श्रीराधारानी के आदेश से उनसे मिलने बिड़ला मन्दिर आए। उन संत में अत्यधिक दैन्य था। पूज्य बाबा इनके दैन्य को देखकर बहुत ही प्रभावित हुए और अपना मौन तोड़कर उनसे पूछा कि महाराज आप क्या चाहते हैं। उन्होंने कहा कि श्रीराधारानी का आदेश पाकर मैं आपके दर्शनों के लिए आया हूँ।

बस आपके दर्शन करने की ही मेरी लालसा थी, जो पूरी हुई। उन्होंने बरसाने के एक गृहस्थ संत श्रीमोहिनीश्यामजी का परिचय देते हुए पूज्य बाबा से निवेदन किया कि आप उन संत से अवश्य मिलें। पूज्य बाबा ने काष्ठमौन के कारण स्वयं न जा कर श्रीठाकुरजी एवं श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल को उन संत से भिक्षा माँगकर लाने के लिए बरसाने भेजा। साथ में श्रीमनोहरदास बाबा भी थे।

श्रीमोहिनीश्यामजी एक छिपे हुए गृहस्थ संत थे। श्रीजी के विरह में वे महल की सीढ़ियों पर जाकर रातभर रोते रहते थे। उनका अपने मकान की ऊपरी मंजिल पर एक छोटा सा कमरा था। ये जाति के वैश्य थे। इनका एक भरा-पूरा परिवार था। इनकी अध्यात्मिक ऊँचाई के बारे में बहुत कम लोग जानते थे। श्रीठाकुरजी बरसाने जाकर उनसे मिले और उनकी रहनी को देखकर बड़े आश्चर्य में पड़ गए। मन में प्रश्न उठा कि ये कैसे महात्मा हैं भरी दोपहर में रजाई ओढ़कर सो रहे हैं, कमरे की दीवार में फिल्मी पोस्टर लगे हैं किन्तु पूज्य बाबा ने कहा है तो अवश्य ही उच्चकोटि के संत होंगे ऐसा विचारकर वे भिक्षा लेकर पूज्य बाबा के पास वापस आ गए। पूज्य बाबा ने भिक्षा में से कणिका प्रसाद ग्रहण कर लिया और शेष को सभी में वितरित कर दिया।

श्रीठाकुरजी एकबार पुनः उन संत से मिलने बरसाने गए। जिज्ञासा करने पर संत श्रीमोहिनीश्यामजी ने संत कृपापात्र एवं ब्रजवासी बालक जानकर उनसे बातचीत की और अपने कक्षकी खिड़की खोलकर श्रीमन्दिर की ओर संकेत करते हुए बताया-'किशोरीजी याही पौरी पैं आयकैं, मोय नित्य दर्शन दै जावै हैं। लाड़िली की बड़ी कृपा है।'

श्रीठाकुरजी उनकी साधारण रहनी और ऐसी ऊँची स्थितिको देखकर चकित रह गए।

श्रीराधारानी की कृपानुभूति

श्रीयमुनाजी के किनारे अपनी एकान्तिक कुटिया में श्रीठाकुरजी की फक्कड़ों की सी रहनी थी न भविष्य के लिए कोई समस्या, न भूतकाल का चिन्तन, न कल के लिए भोजन की चिन्ता न आज के दिए दवा की माँग। एकदिन वे भजन में तल्लीन थे। विशेष तन्मयता के कारण प्रसाद की व्यवस्था से उपराम हो गए। भिक्षा के लिए भी कहीं नहीं जाते थे। उनके मन में यह विचार उठा कि जिस धाम के आश्रित हूँ, वह धाम और उस धाम के धामी ही सारी आवश्यकताओं की चिन्ता करें और उनकी पूर्ति करें। मैं भला क्यों चिन्ता करूँ। पूरा दिन भूखे ही बीत गया। रात्रि अधिक हो रही थी और मौसम भी आँधी-पानी से युक्त था। अभीतक श्रीठाकुरजी ने प्रसाद नहीं पाया था। वे शयन की तैयारी में ही थे कि किसी ने जोर से कुटिया का दरवाजा खटखटाया। श्रीठाकुरजी ने यह समझकर किवाड़ नहीं खोले कि आगन्तुक कोई मिलने वाले परिचित ही होंगे। व्यर्थ की चर्चा होगी। समय नष्ट होगा। दरवाजा न खोलने पर मुझे सोता हुआ समझकर वे अपने आप चले जायेंगे। जब लगातार देरतक खट-खटाने की आवाज आती रही तो उन्होंने अनमने होकर दरवाजा खोला। सामने पूर्व परिचित सज्जन को देखा। उनके हाथ में प्रसाद की एक टोकरी थी। वे बोले-'ठाकुरजी आज मैं बरसाने गया था। श्रीजी का प्रसाद लेकर मैं इधर से ही जा रहा था कि अचानक आपका ध्यान आया और इच्छा हुई कि थोड़ा प्रसाद आपको भी देता

जाऊँ। मौसम ठीक नहीं है जल्दी लीजिए।' ठाकुरजी ने प्रसाद ले लिया और श्रीजी की अपार करुणा को देखकर गद्गद् हो गए। उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। वे कुछ भी न बोल सके। अपने आश्रित जनों पर उनकी इतनी कृपा! फिर उन्हें पश्चाताप होने लगा कि मैंने श्रीजी की करुणा पर संदेह ही क्यों किया। रात्रि मे बड़ी देर तक रोते रहे और बड़ी कठिनता से प्रसाद ग्रहण कर पाए।

कुटिया में पूज्य हरिबाबाजी का आगमन

नाम संकीर्तनप्रेमी, बाँधबिहारी सरकार आदि नाम से विख्यात ब्रज रस रसिक सिद्धसंत पूज्य श्रीहरिबाबाजी तत्कालीन सिद्ध महापुरुषों की टोली में अग्रगण्य थे। श्रीहरिबाबा जी के गौर आभामय श्रीअङ्ग एवं गंभीर व्यक्तित्व को देखकर भक्तों में सहज ही सत्व का संचार हो उठता था। अपनी नियम निष्ठा एवं नाम प्रेम के लिए ये सुविख्यात थे। रासप्रेम भी इनमें अद्भुत था। इन्होंने श्रीठाकुर जी को स्वरूपाई में अनेक बार ठाकुर स्वरूप बनते देखा था। तभी से पूज्य श्रीहरिबाबा का इन पर स्नेह था।

बाद में जब श्रीठाकुरजी विरक्त हो गए तब ये एक साधक के रूप में कभी-कभी उनके दर्शनार्थ सत्संग में जाया करते थे। एकबार श्रीठाकुरजी ने पूज्य श्रीहरिबाबा से अपनी कुटिया 'श्रीराधा केलि कुञ्ज' में पधारने का निवेदन किया। पूज्य श्रीहरिबाबा ने स्वीकृति दे दी और अपने एक सेवक की और संकेत करते हुए कहा-'यदि ये ले जायेंगे तो मैं आ जाऊँगा। मैं वृन्दावन की गलियों से विशेष परिचित नहीं हूँ। इन्हें रास्ता समझा दीजिए।' इसप्रकार पाँच मिनट के लिए पूज्य

श्रीहरिबाबा का श्रीठाकुरजी की कुटिया में आने का कार्यक्रम बना।

दूसरे दिन ठीक निर्धारित समय पर पूज्य बाबा कुटिया पधारे। कुटिया का एकान्त शान्त वातावरण देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। कुटिया की छत पर बैठकर श्रीयमुनाजी की ओर शांतभाव से देखते रहे। लगभग पन्द्रह मिनट तक वे चुपचाप बैठे रहे बाद में मौन भंग करते हुए बोले-'यह स्थान अत्यन्त दिव्य है। इसका सम्बन्ध नित्यलीला से है। यह तो द्वादश आदित्य टीला है। यह सामने फैली हुई वनस्थली जवाटवीवन है। जहाँ जवाकुसुम की सघन वृक्षावलियाँ थीं। यहाँ तक श्रीकृष्ण गोचारण हेतु ग्वालबालों के संग आया करते थे। निकट ही वेणु कूप है। इसे श्रीकृष्ण ने अपनी वेणु से प्रगट किया था....।' इस प्रकार लीलास्थलियों के कतिपय रहस्य को व्यक्तकर पूज्य श्रीहरिबाबाजी मौन हो गए। कुछ देर बाद श्रीठाकुरजी ने उनसे स्वल्पाहार ग्रहण करने का आग्रह किया तो वे मुस्कुराते हुए बोले-'क्या आपके पास भी स्वल्पाहार की व्यवस्था है?' श्रीठाकुरजी ने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया- 'बाबा मैं आपको कॉफी पिलाना चाहता हूँ।' श्रीठाकुरजी को यह पहले से ही ज्ञात था कि बाबा को कॉफी प्रिय है। कॉफी पीने के बाद पूज्य श्रीहरिबाबा कुटिया के अन्दर स्थित ठाकुरजी के साधना कक्ष में गए। सेवा-पूजा में रखे हुए चित्रपटों में से एक चित्र श्रीश्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुजी का था। उस चित्र की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा कि इनका पथ ही अपना पथ है। हमें तो इनके अनुगत ही चलना है। इसप्रकार कुटिया में लगभग आधे घण्टे तक रुककर वे वापस चले गए। श्रीठाकुरजी मन ही मन अपने सौभाग्य की सराहना करने लगे कि जिनकी दिनचर्या का एक-एक क्षण नियम में बँधा हुआ है उन्होंने आज

पाँच मिनट के निर्धारित समय को भूलकर आधेघण्टे से अधिक देर तक हमारे ऊपर कृपा वृष्टि की।

इस प्रकार कुटिया में अनेक संतो का शुभागमन होता ही रहता था। परमपूज्य श्रीमहाराजजी भी नियमित रूप से इस दिव्य स्थल में पधारते थे और कभी-कभी अपनी अमृतमयी वाणी से कुछ सत्संग भी करते थे। उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'अद्‌भुत श्याम तमाल' का बहुत सा अंश यहाँ बैठकर लिखा था। इनके साथ उच्चकोटि के साधक भी सम्मिलित होते थे। पूज्यादेवीजी, पूज्य मनोहरबाबा, बाबा श्रीबनवारीशरणजी, पूज्या ऊषा बहिनजी, पूज्या संतोष बहनजी आदि प्राय: ही इस स्थली पर आया करते थे। एक संत प्रेमभिक्षुक जी भी यहाँ कई दिन तक रहे थे और इस प्रवास में उन्हें कुछ अलौकिक अनुभूतियाँ भी हुई थीं। दक्षिण भारत के एक संत ने भी यहाँ रहकर अपनी साधना की थी।

तन्मयता का स्वभाव

बाल्यावस्था में श्रीठाकुरजी में अनेक बार भगवद् आवेश देखा गया था। लीलानुकरण करते समय अत्यधिक तन्मयता हो जाती थी। बाद में इनके साधारण जीवन में भी तन्मयता का यह विशेष गुण स्पष्टतया परिलक्षित होता रहा।

एकबार की घटना है। श्रीठाकुरजी के एक पूर्व परिचित श्रीचिम्मनजी को असाध्य रोग हो गया था। अन्तिम समय आने पर वे श्रीठाकुरजी को याद करने लगे। समाचार पाकर श्रीठाकुरजी, पूज्य श्रीमहाराजजी के साथ उन्हे देखने पहुँचे। श्रीचिम्मनजी की जीभ में

टेढ़ापन आ गया था और वे ठीक से बातचीत नहीं कर पा रहे थे। यह देखकर श्रीठाकुरजी को बड़ा दुख हुआ। अस्पताल से वापस लौटते समय श्रीठाकुरजी उन्हीं के विचारों में तन्मय थे कि अचानक उनकी जीभ में भी कुछ टेढ़ापन आने लगा और बातचीत में भी लटपटाने लगे। एकाएक हुई ऐसी स्थिति को देखकर परम पूज्य महाराजजी ने उनसे कहा कि ठाकुरजी आप उन व्यक्ति के रोग का इतनी गहराई से क्यों विचार कर रहे हैं? आप इन बातों का विचार करना छोड़िए। अपनी बात में ही रहिए। तब श्रीठाकुरजी ने अपने मन को वहाँ से हटाया और धीरे-धीरे सामान्य स्थिति में आ पाये।

इसी प्रकार एकबार सत्संग के विचारों में तल्लीन श्रीठाकुरजी अपनी कुटिया से महाराजजी के निकट आ रहे थे। भगवद् विचारों की तन्मयता इतनी अधिक थी कि मार्ग में लगा बिजली का पोल, श्रीठाकुरजी को दिखाई नहीं दिया और वे उससे जा टकराए। पूज्यश्री के पास पहुँचने पर वहाँ उपस्थित लोगों ने उनके माथे पर रक्त की बूंदे देखी और इस सम्बन्ध में उनसे पूछा। तब श्रीठाकुरजी को खम्बे से टकराने की बात याद आयी और उन्होंने सारी बात बतलाई।

ऐसे ही एकबार पूज्य महाराजश्री किसी स्थान की चर्चा करते हुए यह बता रहे थे कि वहाँ पर मच्छरों का बड़ा ही प्रकोप था। झुंड के झुंड मच्छर थे। इतने अधिक मच्छर मैंने कहीं नहीं देखे। सभी लोग महाराजजी की बात को ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। इधर ठाकुरजी बातों की तन्मयता में दोनों हाथों से मच्छर उड़ाने लगे मानों वहीं पर मच्छर उपस्थित हो गए हों। उनकी यह चेष्टा देखकर सब हँस पड़े। ऐसे अनेक

प्रसंग हैं जिनमें ठाकुरजी की तन्मयता के स्वभाव का परिचय मिलता है।

एक संत द्वारा दीक्षा का आग्रह

श्रीधामवृन्दावन में श्रीमदनमोहन मन्दिर के पार्श्व में अपनी भजन कुटिया में श्रीठाकुरजी जब भजन करते थे, उस समय उनके त्याग-वैराग्यपूर्ण रहनी व भजन निष्ठा को देखकर कालीदह पर रहने वाले एक प्रतिष्ठित संत श्रीठाकुरजी से बड़ा ही स्नेह करने लगे। वे प्राय: श्रीठाकुरजी की कुटिया आ जाते थे और भगवद् चर्चा करते थे। एकदिन उन्होने श्रीठाकुरजी से कहा कि आप मुझसे दीक्षा से लीजिए। बिना गुरुदीक्षा लिए भजन फलित नहीं होता है। श्रीठाकुरजी ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। दूसरे दिन वे फिर आए और जब उन्होंने पुन: आग्रह किया तो श्रीठाकुरजी ने विनम्रतापूर्वक बाल्यावस्था में ही अपनी दीक्षा लेने की बात बताई और वर्तमान में पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराज के आनुगत्य में रहकर भजन कर रहे हैं, यह भी बताया। इतना सुनते ही वे संत बोले–'मैं आपके पास कितने दिनों से आ रहा हूँ। आपने यह बात मुझे पहले नहीं बतायी, व्यर्थ ही मेरा समय नष्ट हुआ।' इतना कहकर वे चले गये। फिर दुबारा कभी नहीं आये।

अच्छे साधकों पर सिद्ध भी अपनी कृपा करने के लिए लालायित रहते हैं। एकबार स्वप्न में श्रीठाकुरजी ने किसी संत के दर्शन किए। वे उन्हें दीक्षा देना चाह रहे थे। प्रात:काल श्रीठाकुरजी ने अपने स्वप्न की बात पूज्य श्रीमहाराजजी को बतायी। महाराजश्री तुरन्त बोल उठे कि हो सकता है, यह संत आपको कहीं मिल भी जाएँ। किन्तु आप सावधान

रहिएगा, इनके चक्कर में मत आइएगा। पूज्य महाराजजी के कथनानुसार वे संत एकदिन केशीघाट पर श्रीठाकुरजी को टहलते हुए दिखाई दिए। श्रीठाकुरजी को पूज्य श्रीमहाराजजी की बात याद थी। श्रीठाकुरजी ने तुरन्त अपना रास्ता बदल दिया, परन्तु वे संत कुछ और आगे बढ़ते हुए इनके निकट आये और बोले–'आपके गुरूजी से मैं मिलना चाहता हूँ। वे कोई विशेष व्यक्ति है।' श्रीठाकुरजी ने उन्हें दूर से ही प्रणाम किया और आगे बढ़ गए।

नाम स्मरण की आवश्यकता

एकबार श्रीमहाराजजी की हस्तलिखित किसी लीलानुभूति को पढ़कर श्रीठाकुरजी का मन उस लीलाप्रसंग में अत्यधिक तन्मय हो गया। वे आनन्दातिरेक में पूज्य महाराजश्री से कह बैठे कि पूज्यश्री आपके द्वारा लिखित एक लीला पढ़ लेने मात्र से ही कई दिनों तक उसकी मस्ती छायी रहती है। तब नाम जप करने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती। इसपर पूज्य श्रीमहाराजजी ने संकेत किया कि कभी–कभी मन में सात्विकता बढ़ने से एवं महापुरुषों की निकटता के प्रभाव से लीला स्फूर्ति होती है यह अच्छी बात है पर इसमें अपनी विशेषता ही क्या हुई। हमें इतने से ही तृप्त होकर नहीं रहना है और आगे बढ़ना है। नामस्मरण नहीं छोड़ना है। नामजप से ही निजस्वरूप की स्थाई अनुभूति होती है। अपने भजनानन्द को भी बाहर किसी के सामने अभिव्यक्त नहीं होने देना चाहिए।

लीलास्मरण व भजनकाल में ठाकुरजी के नेत्रों के समक्ष श्रीकृष्ण की अपूर्व रूपराशि का स्फुरण होता जिससे उनका हृदय आह्लाद से

भर उठता। हृदगतभाव अभिव्यक्त होने के लिए शब्द ढूँढते। फलस्वरूप धारावाही रूप से कवित्त स्फुरित होने लगे। रचनाओं का लेखन शुरू हो गया। पूज्यश्री को इसका आभास हुआ तो उन्होंने श्रीठाकुरजी को संकेत करते हुए कहा कि ये सब मार्ग की चीजें हैं हमें इनमें नहीं अटकना है। भजन के प्रभाव से ये सब चीजें विकसित होती हैं। इनमें अटकने से लक्ष्यप्राप्ति में विलम्ब हो सकता है। पूज्यश्री का संकेत पाते ही ठाकुरजी ने इस कार्य को वहीं विराम दे दिया।

श्रीठाकुरजी प्रतिवर्ष ऋषिकेश जाया करते थे। वहाँ पूज्य सेठ श्रीजयदयाल गोयन्दका जी के द्वारा डाली परम्परा के अनुसार ग्रीष्म कालीन सत्संग सत्र का आयोजन होता था। जिसमें पूज्य श्रीभाईजी, पूज्य श्रीराधाबाबा, पूज्य स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज, पूज्य स्वामी श्रीशरणनन्दजी महाराज आदि महानुभाव उपस्थित होते थे। इस अवसर का लाभ लेने श्रीठाकुरजी वहाँ जाते थे। पूज्य भाईजी का कक्ष ऊपर था। कक्ष से लगे जीने की एक छोटी कोठरी में श्रीठाकुरजी अपना आसन लगा लेते थे। इस कोठरी में श्रीठाकुरजी का भजन बहुत अच्छा बनता था। यह इन्हें इतनी प्रिय लगी कि वृन्दावन की अपनी कुटिया 'राधा केलि कुँज' में भी वैसी ही एक जगह बनवाई। और तो और अपने स्थाई निवास स्थान 'वेणु विनोद कुँज' में भी आजीवन जीने के नीचे बनी ऐसी ही एक कोठरी में रहकर भजन किया।

*****

८ श्री भाईजी की संकल्प शक्ति

सन् १९५९ की बात है। श्रीठाकुरजी के बड़े भाई श्रीश्रीराम शर्मा अपनी रासमण्डली लेकर कलकत्ते गए हुए थे। वहीं से उन्होंने अपनी माताजी को गाँव पत्र भेजा कि तुम वृन्दावन जाकर घनश्याम (श्रीठाकुरजी) को साथ लेकर कलकत्ते आ जाओ। यहाँ से इनके साथ तुम जगन्नाथपुरी के दर्शन कर आना। जगन्नाथ पुरी यहाँ पास में ही है। पत्र मिलते ही माताजी ने ऐसा ही किया। निश्चित कार्यक्रम के अनुसार श्रीठाकुरजी, माताजी को जगन्नाथधाम की यात्रा कराकर वापस कलकत्ते लौट आए। यहाँ आने पर माताजी ज्वरग्रस्त हो गई। श्रीठाकुरजी शीघ्रातिशीघ्र वृन्दावन पहुँच जाना चाह रहे थे किन्तु ज्वरग्रस्त माँ को कैसे ले जाएँ इसी उहापोह में पड़े थे कि श्रीराधाष्टमी तिथि समीप आ गई।

श्रीठाकुरजी को प्रतिवर्ष श्रीराधाष्टमी पर गोरखपुर अवश्य ही पहुँचना होता था किन्तु माँ की रुग्णता के कारण इसबार जाना कठिन दिखाई दे रहा था। कलकत्ते में श्रीठाकुरजी के मन में बार-बार यही विचार उठ रहे थे कि मैं कैसे भी शीघ्रातिशीघ्र गोरखपुर पहुँच जाऊँ। भाई श्रीश्रीरामजी से चर्चा करने पर भी कोई अनुकूल बात नहीं बन पायी। श्रीराधाष्टमी तिथि के छः-सात दिन ही शेष थे। श्रीठाकुरजी ने अत्यन्त खिन्न मन से पूज्य श्रीभाईजी को पत्र लिखा कि माँ की बीमारी के कारण ऐसी परिस्थिति आ गई है कि कलकत्ते से निकास की कोई सम्भावना नहीं दिखाई दे रही है। मुझे बहुत दुख है कि इसबार

श्रीराधाजन्ममहोत्सव में मैं गोरखपुर नहीं पहुँच पाऊँगा। अत्यन्त विवशता के कारण ऐसा करना पड़ रहा है। आप तथा पूज्य बाबा मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

यह पत्र पहुँचा श्रीराधाष्टमी के दो दिन पूर्व श्रीललिताछठ को। पूज्य श्रीभाईजी पत्र को लेकर पूज्य बाबा के पास गए और बोले–'इस बार आपका ठाकुर घनश्याम राधाष्टमी पर नहीं आ पाएगा।' यह सुनकर पूज्य बाबा बोले–'पोद्दार महाराज! उसका आना तो अति आवश्यक है अन्यथा मेरा सारा खेल बिगड़ जायेगा। अब इतना समय भी नहीं है कि उसको सन्देश भेजा जा सके अत: उसके लिए आप अपनी संकल्पशक्ति का प्रयोग करें।'

उनदिनों दूरभाष आदि साधन सहज उपलब्ध नहीं थे। पूज्य श्रीभाईजी ने बाबा की बात सुनी पर कोई उत्तर नहीं दिया और अपने कक्ष में लौट आए। इधर कलकत्ते में षष्ठी के दिन श्रीठाकुरजी का मन गोरखपुर जाने के लिए अत्यन्त व्याकुल हो उठा। इतनी अकुलाहट हुई कि माँ को अपने भाई श्रीरामजी के पास सँभलाकर, बिना किसी व्यवस्था के गोरखपुर को चल पड़े।

गोरखपुर पहुँचकर श्रीठाकुरजी को रिक्शा पकड़ने व गीतावाटिका पहुँचने में कुछ देर हो गई। कलकत्ते से अनेक भक्त श्रीराधाष्टमी महोत्सव के लिए इसी ट्रेन से आए थे, जो विभिन्न वाहनों द्वारा गीतावाटिका पहले ही पहुँच गए। उन लोगों से श्रीभाईजी ने पूछा–'क्या घनश्याम तुम लोगों को मिले थे?' उनमें से किसी से भी संतोषपूर्ण उत्तर न पाकर श्रीभाईजी विचार में पड़ गए और 'कल्याण पत्रिका' के प्रूफ संशोधनादि कार्यों में लग गए।

कुछ देर बाद ही श्रीठाकुरजी ने उनके कक्ष में प्रवेश किया और उनके श्रीचरणों में मस्तक रखकर प्रणाम किया। श्रीठाकुरजी को देखते ही श्रीभाईजी अत्यधिक प्रफुल्लित हो गए। प्रेम से श्रीठाकुरजी के सिर पर हाथ फेरते हुए बोले-'तुमने तो पत्र में लिखा था कि तुम श्रीराधाष्टमी पर नहीं आ पाओगे फिर कैसे आ गए?' श्रीठाकुरजी ने कहा कि परिस्थिति तो नहीं थी पर आपने खींच लिया।

प्यार के अतिरेक में पूज्य श्रीभाईजी ने सब बातें खोलकर विस्तार से बताई कि किस प्रकार बाबा ने संकल्प करने कि लिए कहा था। श्रीभाईजी ने पूछा-'क्या बाबा को प्रणाम कर आए?'

ठाकुरजी बोले-'मैं तो स्टेशन से सीधे आपके पास आया हूँ।'

श्रीभाईजी ने अपने हाथ की पेन और गोद की प्रूफ नीचे रख दी और ठाकुरजी से कहा कि स्नान आदि बाद में करना पहले मेरे साथ चलकर बाबा से मिल लो। पूज्य बाबा की कुटिया पहुँचकर श्रीभाईजी बोले-'बाबा, आपका ठाकुर आ गया।' बाबा तो अत्यधिक अन्तर्मुख थे किन्तु पूज्य भाईजी की वाणी सुनकर प्राकृत धरातल पर आए तथा आँखे खोलकर भाईजी की ओर देखने लगे। श्रीभाईजी ने फिर दोहराया-'बाबा! आपका ठाकुर आ गया है।' बाबा की दृष्टि जब श्रीठाकुरजी की ओर गई तो उनका मुख खिल उठा। उनके दृष्टिपात में अत्यन्त स्नेह छलक रहा था।

श्रीभाईजी ने कहा ठाकुर, तुम स्नानादि से निवृत्त हो लो। फिर भोजन करके मेरे पास आ जाना। श्रीराधाष्टमी में गाने के लिए कुछ नए पद लिखे हैं। वह मैं तुमको दूँगा, उनकी राग बैठा लेना। वे पद

गोस्वामीजी के साथ-साथ तुमको गाना है। श्रीभाईजी की आज्ञा पाकर श्रीठाकुरजी ने स्नान किया और उत्सव की तैयारी में जुट गए। श्रीठाकुरजी के अलावा उनके समवयस्क सखा आदि सभी लोग आदरणीया बाई (श्रीभाईजी की पुत्री सुश्रीसावित्रीबाई) के नेतृत्व में बड़े उल्लास के साथ महोत्सव की तैयारी में जुटते थे। पदगायन में श्रीगोस्वामीजी व श्रीठाकुरजी के आलावा श्रीश्रीरामजी, श्रीहरिबल्लभजी, श्रीनटवरजी तथा श्रीनरेन्द्रजी आदि भी सहयोग दिया करते थे।

माँ को तीर्थ कराने ले जाना

सन् १९६३ में इनकी माँ की इच्छा उत्तराखण्ड के चार धामों (बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री) की यात्रा करने की हुई। श्रीठाकुरजी ने यह बात श्रीभाईजी से कही। श्रीठाकुरजी के ही शब्दों में यात्रा का विवरण इस प्रकार है :-

"मैं, मैय्या, श्रीविमलजी (कानपुर), उनकी पत्नी, उनके चाचाजी, सीतारामजी, कुसुमजी, प्रमिलाजी आदि हम सब लोग केदारनाथ जी की यात्रा गये। इन दिनों श्रीमहाराजजी राजकोट गये हुए थे। हम सब पहले स्वर्गाश्रम गये। वहाँ पूज्य श्रीभाईजी आये हुए थे। मैं बाबूजी (श्रीभाईजी) के पास गया और कहा- 'मेरा मन आपको छोड़कर जाने का बिलकुल भी नहीं है इधर माँ बार-बार आग्रह कर रही हैं केदारनाथ जाने के लिए। बाबूजी बोले-'इसमें हर्ज ही क्या है, ठीक ही तो है। यदि माँ की ऐसी इच्छा है तो उन्हें दर्शन करा लाओ। एक बात कहूँ, इस दुनियाँ में सब कुछ मिल सकता है किन्तु माँ नहीं। आज इच्छा है कल न

जाने क्या हो ?' मैने कहा- 'बाबूजी चीन युद्ध चल रहा है। वहाँ जाने के लिए अनुमति पत्र भी नहीं है।' बाबूजी बोले-' तुम जाओ सारी व्यवस्था हो जायेगी।' मैं हैरान था, फिर बोले- 'सत्य कह रहा हूँ तुम्हारे साथ और तो और स्वयं भगवान जा रहे हैं।' बस उन्होंने ऐसा कहकर मेरे कहने के लिए कुछ छोड़ा ही नहीं कि आप कृपा करदो या आप कृपा करके सम्भाल लेना। हरबार पचास हजार यात्री जाते थे। इस बार मुश्किल से हजार दो हजार ही गये। सरकार ने कह दिया कि जो जाये अपनी जिम्मेदारी पर जाये। हम सब यात्रा के निकल पड़े, तभी हमारे साथ वृन्दावन के पचास महात्माओं की टोली भी चल पड़ी। ये श्रीगोपालजी को डोली में लेकर महामंत्र का कीर्तन करते हुए जा रहे थे। जहाँ हमारा ठहरने का मन होता संयोग से वे सब भी वहीं ठहेरते। सब जगह मार्ग में धर्मशाला आदि खाली मिले। हम सभी आराम से यात्रा करते हुए आगे बढ़ रहे थे। रास्ते में भूस्खलन से बड़े-बड़े पत्थर टूट कर गिरते और वह बगल से निकल जाते, खरौंच तक नहीं लगती। श्रीकेदारनाथजी पहुँचकर हमने दर्शन किए अभिषेक भी किया, सेवायत ने शिवलिंग से आलिंगन भी करवाया किन्तु तृप्ति न हुई। रात में हम सब सो गये। मैं उठ बैठा। नींद नहीं आ रही थी। सीतारामजी पाठ कर रहे थे। मैने मन ही मन शंकरजी को उलाहना दिया (क्योंकि दर्शनों से तृप्ति नहीं हुई थी पृष्ठ भाग के ही दर्शन हुए क्योंकि मुख पशुपतिनाथजी नैपाल में है)। *तभी तन्द्रा में देखता हूँ कि चारो ओर श्वेत वर्ण का प्रकाश छा गया, उसमें अरूण व नील आभा व्याप्त है। तभी वीरासन की मुद्रा में बैठी एक छवि का दर्शन हुआ। मैने कहा यह तो श्रीकृष्ण हैं, ध्यान से देखा तो गौर वर्ण, बड़े-बड़े नेत्र व कानो में*

कुण्डल जगमगा रहे थे। दन्तपंक्तियाँ होठों पर प्रतिबिम्बित हो रही थीं। अरे! यह तो विलक्षण रूप लिए श्रीराधा जी हैं। फिर देखा मस्तक पर दायीं ओर पतला सा चन्द्र। कुछ क्षण बाद आकृति स्पष्ट हुई तो दीखा कि कण्ठ नीलवर्ण की आभा से उद्‌भासित हो रहा है। मन्द मुस्कानयुक्त मनोहर मुखमण्डल था। सुनहरी कान्ति बिखेरती लम्बी-लम्बी जटाएँ लटक रही थीं। सर्वांग से अपार प्रकाशरश्मि विकीर्णित हो रही थी। उज्वल कर्पूरप्रभा से परिमंडित भगवान चन्द्रमौलि। अरे! यह तो भगवान शंकर हैं, बस आदरबुद्धि हो गई जोकि पहले नहीं थी। रूपमाधुरी श्रीकृष्ण के समान कोई क्या वर्णन करेगा। हाथ उठाकर आशीष दिया, फिर मुसकराये। धीरे-धीरे वह छवि उसी प्रकाश मण्डल में अन्तर्हित हो गई। तत्क्षण तन्द्रावस्था टूट गई।'

श्रीठाकुरजी को बाह्यज्ञान हुआ तो उन्होंने अनुभव किया कि सारा शरीर जड़वत् सा हो गया है। हाथ- पैर उठ नहीं रहे हैं। उनकी यह स्थिति लगभग आधे घण्टे बनी रही। धीरे-धीरे वे सामान्य हुए। इस अनुभूति से उन्हें अनिर्वचनीय सुख का अनुभव हो रहा था। वे जब उठकर हाथ-मुँह धोने लगे तो ऐसा भान हुआ कि मानो उनके सभी अंगों से तेज फूट-फूटकर बाहर निकल रहा है और वे तेज ही पोंछ रहे हैं। यह अनुभूति इनके मन में स्थायी रूप से बस गई दूसरेदिन मन्दिर में जाकर पुनः इन्होंने शिवजी का अभिषेक किया और लौटकर ऋषिकेश में पूज्य श्रीभाईजी एवं बाबा के पास रहे वहाँ कुछदिन रुककर पुनः वृन्दावन वापस आ गए।

*****

६ गीतावाटिका गोरखपुर में

श्रीभाईजी की सदा ये ही चाह रहती थी श्रीराधाष्टमी महोत्सव सुन्दर प्रकार से मनाया जाए। जिससे सच्चे भावग्राही श्रीबाबा को सुख मिले। इस वर्ष उत्सव के दो दिन पहले श्रीभाईजी ने श्रीठाकुरजी को बुलाकर कहा कि इस बार नौमी तिथि को श्रीबजरंगजी ढाँढ़ी (ब्रज में उत्सव के अवसर पर नृत्य-गानकर उपहार माँगने वाला एक विशेष वर्ग) के रूप में खड़े होकर बधाई वाले पद गायेंगे। उनको प्रसंगानुकूल वस्त्र पहना देना। श्रीठाकुरजी बाजार गए और कई व्यक्तियों के धारण कराने योग्य श्रृंगार का आवश्यक सामान खरीद लाए। दधिकाँधों उत्सव में सभी लोग श्रृंगार धारण करके आए तो उत्सव में रंग आ गया। श्रीठाकुरजी ढाँढ़ी बालक बने थे।

पूज्य बाबा तो आँखें बन्द किये हुए समाधिस्थ बैठे थे। श्रीठाकुरजी ने सोचा कि जब तक बाबा इस दृश्य को अपनी आँखों से देख न लें तब तक सारा सुख फीका है और पूज्य बाबा के हाथ से बधाई मिले तो आनन्द आए। ऐसा सोचकर वे झट से मंच पर चढ़ गए और पूज्य बाबा को प्रणाम करते हुए बोले-बाबा! ओ बाबा! दण्डोत्! बधाई है बधाई। बाबा उनकी भाव भरी आवाज सुनकर बाह्यज्ञान में आए। आँखे खोलकर देखा किन्तु मूँछ लगाये हुए श्रीठाकुरजी को पहचान न पाए। श्रीभाईजी ने कहा बाबा! यह अपना घनश्याम है तब बाबा उन्हें पहचान कर जोर से हँस पड़े, और एक चपत ढाँढ़ी बालक के गाल में लगा दी। श्रीठाकुरजी ने तुरन्त अपना दूसरा कपोल आगे करते हुए कहा कि बाबा

इस पर भी। ढाँढ़ी परिवार के नृत्य को देखकर पूज्य बाबा कभी हाथ उठाकर जय-जय करते, तो कभी जोर से हँसते। श्रीठाकुरजी कहने लगे- 'लाली जाई है उसकी बधाई दो, केवल चपत से काम नहीं चलेगा' तब बाबा ने एक तुलसी के गमले से तुलसी पत्र तोड़कर श्रीठाकुरजी के मुख में डाल दिया। उमंगपूर्ण वातावरण था। जयजयकार का तुमुलनाद चारों ओर गूँज रहा था। इतने में बाबा ने पास खड़े हुए पूज्य श्रीभाईजी की धोती से एक टुकड़ा फाड़कर ढाँढ़ी परिवार को प्रसादी वस्त्र के रूप में प्रदान किया। दधिकाँधों उत्सव के बाद जब श्रीठाकुरजी बाबा से मिले तो पूज्य बाबा ने कहा तुम्हें श्रीपोद्दार महाराज के वस्त्र का छोर मिला है। तुम उसे साधारण मत समझना। वह छोर परम दिव्य वस्तु है और उसी समय उस छोर के ऊपर एक छन्द बनाकर बाबा ने सुनाया-

साँवर सुन्दर की धोती की, वह एक किनारी फाड़ी है,
तुम तुक्ष न वस्तु उसे समझो, उसमें ब्रजरस की खाड़ी है।
राधाकर से खोदी उसके, कण-कण में कृष्ण खिलाड़ी है,
अवगाहन मत्त सहित उसके, जो पहिरे नीली साड़ी है।

श्रीठाकुरजी ने पूज्य बाबा को पूरा वृत्तान्त सुनाया कि किस प्रकार श्रीभाईजी ने उन्हें आज के उत्सव के लिए प्रेरित किया था। श्रीठाकुरजी ने कहा कि बाबा हम तो युगल के उपासक हैं। हमें आपके वस्त्र की प्रसादी भी मिलनी चाहिए। फिर पूज्य बाबा ने अपने वस्त्र का टुकड़ा भी श्रीठाकुरजी को प्रसादी रुप में प्रदान किया।

गीता वाटिका में एकान्तिक साधना

गीतावाटिका में पूज्य बाबा के पास रहकर श्रीठाकुरजी ने गहन एकान्तिक साधना की थी। एकबार तीन माह तक पूज्य राधाबाबा ने उन्हें अपने निकट रखा था। इस समयान्तराल में अपने जीवन की विशेष घटनाओं, साधनात्मक रहस्यों एवं दिव्यानुभूतियों के कुछ प्रसंग श्रीठाकुरजी के समक्ष उजागर करते हुए पूज्य श्रीबाबा ने कहा था कि मैं जो कुछ भी तुमसे कहूँ तुम उसे केवल दत्तचित्त होकर सुनते भर जाना। यथासमय उसका रहस्य अपने आप तुम्हारे समक्ष प्रकट हो जाएगा।

ब्रह्मबेला में ठीक चार बजे उठकर श्रीठाकुरजी पूज्य श्रीबाबा की सेवा में उपस्थित हो जाते थे। तब से लेकर रात्रि तक वे पूज्य बाबा के निकट ही बने रहते थे। इस हेतु पूज्य बाबा ने अपनी कुटिया के घेरे से सटाकर एक छोटी कुटिया का निर्माण श्रीठाकुरजी के लिए करवा दिया था। अपने गोरखपुर प्रवास में श्रीठाकुरजी इसी कुटिया में रहकर साधना करते थे। आसपास घनी वृक्षराशि थी। सघन झाड़ियों के भीतर अनेक जीव-जन्तु एवं पक्षियों ने अपने घर बना लिए थे। वाटिका के आसपास घने जंगल व खेत थे। प्रायः रात्रि में सर्प, नेवला, खरगोश, सियार, लोमड़ी, तेंदुए आदि जंगली जानवरों का भी आगमन होता रहता था किन्तु पूज्य श्रीभाईजी एवं बाबा के समर्थ आश्रय में रहने से साधकों को किसी भी प्रकार की हानि नहीं होती थी। पूज्य बाबा की कुटिया में एकबार वर्षाकाल में इतना पानी भर गया कि उनका काठ का तख्त डूबने लगा। उस तख्त पर एक ओर पूज्य बाबा बैठे थे और दूसरी ओर श्रीठाकुरजी किन्तु उसी अवस्था में बिना विराम दिए पूज्य बाबा

श्रीठाकुरजी को अपनी अन्तरंग अनुभूतियाँ सुनाते रहे।

पूज्य श्रीभाईजी नित्य रात्रि को अपने सम्पादन आदि कार्यों को पूर्ण करके, हाथ में लालटेन लेकर गीतावाटिका के परिसर में जाते थे और सभी आश्रित साधकों का कुशलक्षेम लिया करते थे। इनकी पैनी दृष्टि में साधकों के साधनस्तर एवं उनके गुणदोष छिप न पाते। वे समय-समय पर तदनुसार सभी साधकों को सचेत करते रहते एवं सर्वतोभावेन् सम्भाल किया करते थे।

सत्संग में पूज्य श्रीभाईजी गीताशास्त्र पर ही अधिक चर्चा किया करते थे। एक-एक श्लोक की गूढ़ एवं विशद् विवेचना करते हुए, सत्संगीजनों के प्रश्नों का समाधान किया करते थे किन्तु सरस भावग्राही ब्रजवासी श्रीठाकुरजी को उस उच्चकोटि का बौद्धिक कम ही भाता था। पूज्य श्रीभाईजी से निवेदन करते हुए श्रीठाकुरजी ब्रजलीला सम्बन्धी प्रसंगों पर बोलने का आग्रह करते, तब पूज्य श्रीभाईजी अपने सत्संग में ब्रजलीला की रसमय चर्चा करते और गोपीप्रेम की महिमा पर बोलते। श्रीठाकुरजी को विशेष रूप से अपने सामने बैठाते हुए यह कहते कि मैं यह मधुर चर्चा तुम्हारे लिए ही करता हूँ तुम मेरी ओर ही अपनी दृष्टि रखा करो। इससे तुम्हें विशेष लाभ होगा।

एकबार वाटिका में रहने वाले अन्य साधकों ने पूज्य बाबा से आग्रह किया कि बाबा! आप हम लोगों से कुछ साधना करवाइए, 'साधक मण्डल' बनवाकर कुछ नियम दीजिए। हम आपके संरक्षण में रहकर कुछदिन नियमपूर्वक साधना करना चाहते हैं। उनकी बात सुनकर पूज्य बाबा प्रसन्न हुए और उन्होंने श्रीठाकुरजी को बुलवाया। श्रीठाकुरजी के

आने पर पूज्य बाबा बोले-'भईया! अगर तुम इस मण्डल में सम्मिलित हो जाओ, तब तो साधक-मण्डल बनवाएँ और नियम भी दें, नहीं तो ये लोग मेरी बात मानेंगे नहीं और मेरा उत्साह ठण्डा कर देंगे।' श्रीठाकुरजी ने पूज्य बाबा की बात मानकर कुछ दिन सबके साथ मिलकर नियम पूर्वक नाम-जप का अनुष्ठान किया तथा अन्य साधकों ने भी भिन्न-भिन्न अनुष्ठान किए।

पूज्य श्रीभाईजी का श्रीठाकुरजी के प्रति अनोखा वात्सल्य था। एकबार पूज्य श्रीभाईजी की माँ का श्राद्ध था। भोजन के लिए निमंत्रित ब्राह्मणों की सूची में किसी ने श्रीठाकुरजी का नाम लिख दिया था। जब यह सूची पूज्य श्रीभाईजी के पास गई तो उन्होंने उसमें से तुरन्त श्रीठाकुरजी का नाम काट दिया और कहा कि यह ब्राह्मणों में नहीं है, यह तो मेरा अपना बालक है। कभी-कभी ऐसा होता जब गीतावाटिका में आयोजित किसी उत्सव में श्रीभाईजी अत्यन्त व्यस्तता के कारण उसमें सम्मिलित नहीं हो पाते तब सभी की दृष्टि श्रीठाकुरजी की ओर जाती थी कि ये चाहें तो श्रीभाईजी उत्सव में पधार सकते हैं। जब श्रीठाकुरजी से कहा जाता तो वे तुरन्त श्रीभाईजी के पास जाते और उनसे बड़े ही स्नेह से निवेदन करते कि बाबूजी आज एक ऐसा आयोजन किया है आप थोड़ी ही देर के लिए सही, पर आ जाइए। श्रीभाईजी इनकी बात सुनकर मुस्करा देते और कहते-'अच्छा एक घंटे बाद आ जाऊँगा' और चालीस-पैंतालीस मिनट बाद ही आ जाते थे। एकबार किसी ने पूज्य श्रीभाईजी से शिकायत करी कि ठाकुर आपकी नकल बनाता है, कभी कहता है कि बाबूजी ऐसा मुँह चलाते हैं, ऐसा बोलते हैं। श्रीभाईजी ने उत्तर दिया-'भईया प्रणाम करने वाले तो बहुत मिले पर

एक तो ऐसा योग्य है जो मेरी नकल बना सके।' इस बात के समर्थन पर उनकी पुत्री पूज्या सावित्रीबाई फोगला कहती-'हम सब बालकों में से ठाकुर का मन पूज्य बाबू जी से सर्वाधिक जुड़ा हुआ है।'

श्रीठाकुरजी ने एकबार चर्चा में बताया कि पहले जब मैं श्रीभाईजी के पास जाता था तो मुझे थोड़ा संकोच होता था। एकबार पूज्य श्रीभाईजी ने मेरा संकोच दूर करते हुए कहा-'तुम्हारा जब भी मन किया करे, निस्संकोच मेरे पास आ जाया करो।' तब से इच्छा होने पर मैं उनके पास जाकर बैठ जाता था। उस समय वे अपने कल्याण सम्पादन आदि कार्य कर रहे होते और चश्मा नीचे करते हुए पूछते कि 'भाई के होयो घनश्याम आयो है? आओ बैठो'। मेरी कोई कामना तो रहती नहीं थी, बस उनकी समीपता के सुख के लोभ से उनके पास जाकर बैठ जाता था। वे तो कल्पवृक्ष थे। सामने वाले की माँग के अनुसार कार्य किया करते थे।

श्रीठाकुरजी ने पूज्य भाईजी एवं बाबा के निर्देशानुसार सर्वत्र भगवद्भाव की साधना का अभ्यास किया। भगवान सर्वत्र हैं वे हमारे चारों ओर स्थित हैं सब में विद्यमान हैं तथा सब वे ही बने हुए हैं। भिन्न-भिन्न देहरूपी यन्त्रों में स्वर भर-भरकर वे ही बोल रहे हैं। इस प्रकार की सुदृढ़ भगवद् भावना का अभ्यास करने के लिए पूज्य श्रीराधाबाबा ने श्रीठाकुरजी को कहा था कि भईया सर्वत्र भगवद् भावना किया करो। निरन्तर यह अभ्यास किया करो। जहाँ आँख जाए वहीं श्रीकृष्ण दर्शन हो और जब अभ्यास बढ़ जाए, सब श्रीकृष्ण ही हैं, जड़-चेतन, पेड़, पंखा, घड़ी, व्यक्ति जो कुछ भी देखा ठीक उसी जगह

इस बाह्य स्वरूप को भूलकर रट लगाना आरम्भ करो-तुम ! तुम ! तुम ! तुम ! मेरे रोम में तुम, सर्वत्र तुम ही तुम। ऐसी भावना करते हुए अपने मन को श्रीकृष्ण के रूपमाधुरी में बहाते चले जाओ। श्रीठाकुरजी ने सर्वत्र भगवद्भाव की साधना का विशेष अभ्यास शुरू कर दिया। वे लोगों से व्यवहार करते समय एवं अपनी छोटी से छोटी चेष्टाओं में इस बात पर विशेष ध्यान रखते थे कि सर्वत्र श्रीकृष्ण ही प्रतिष्ठित हैं, कहीं प्राकृत भाव न आ जाए। धीरे-धीरे काया-वाचा-मनसा अभ्यास करते रहने के कारण पूज्य बाबा की कृपा से श्रीठाकुरजी को आशातीत सफलता मिली। किसी भी व्यक्ति के सामने आने पर नेत्र बन्द करके मन ही मन तुम, तुम......... तुम बोलते और प्रणाम करते ही तत्क्षण वहाँ भगवान श्रीकृष्ण की प्रतिष्ठा हो जाती। पूज्य बाबा उनके इस अभ्यास से बहुत प्रसन्न हुए।

एकबार पूज्य राधाबाबा ने ब्राह्मणों के पूजन का संकल्प लिया। इस हेतु वे एक ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करना चाहते थे जो इनकी तरफ से ब्राह्मणों को साक्षात नारायण मानकर उनकी अर्चना कर सकता हो। उसकी भावना ऊपरी दिखावटी मात्र न हो। श्रद्धा में तनिक भी न्यूनता न आए। अन्ततः पूज्य बाबा की दृष्टि श्रीठाकुरजी की ओर गई। पूजन हेतु इन्हें नियुक्त करते हुए पूज्य बाबा ने कहा-'क्या तुम साक्षात् भगवान मानकर ब्राह्मण पूजन कर सकते हो।' श्रीठाकुरजी ने कहा-'जी बाबा, इसमें कठिनता ही क्या है।' ऐसा कहकर वे पूजन में बैठ गए। पूजन सम्पन्न होने के बाद पूज्य बाबा ने पूछा ठाकुर तुम्हें कैसा लगा? श्रीठाकुरजी ने बताया-'बाबा ! जब मैं पूजन हेतु बैठा तब कुछ क्षणों के लिए तो मुझे इनके बाह्य स्वरूप का भान रहा किन्तु पूजन शुरू करते ही

मुझे ये भगवद् स्वरूप ही दिखाई पड़े। यह सुनकर बाबा प्रसन्न हुए और बोले-'ठाकुर, तुम्हारा सर्वत्र भगवद् भाव का अभ्यास ऐसा ही चलना चाहिए।'

गीतावाटिका में प्राय: श्रीठाकुरजी के निकट लोग बने ही रहा करते थे। एकबार किसी ने बाबा से पूछा कि बाबा ठाकुर के पास इतने लोग क्यों चिपटे रहते हैं? पूज्य बाबा ने उत्तर दिया- भैय्या! मेरी भगवद्भाव की जो उपासना है कि मुझे सर्वत्र नन्द-नन्दन ही दिखाई देते हैं। इसी भाव की छाया इस ठाकुर में भी है। अत: करुणा, दया, सबसे निष्काम प्रेम व स्नेह करना आदि अनेक गुण इसमें समाये हुये हैं। जहाँ ये गुण होंगे वहाँ आकर्षण होगा ही। अब मुझसे ही पूछो किसी से एक पैसा लेना-देना नहीं, किसी से कोई काम नहीं तो भी मेरे आसपास कितने ही व्यक्ति बने रहते हैं और मिलना चाहते हैं।?

एकबार शरद् पूर्णिमा आयी। शरदोत्सव में श्रीठाकुरजी को पद गाना था परन्तु उन्हें तेज बुखार हो गया। पूज्यराधा बाबा उत्सव के प्रति बड़े उत्साहित थे अत: वे कुछ चिन्तित होते हुए श्रीभाईजी से बोले-'पोद्दार महाराज, आप ठाकुर को शाम तक ठीक कर दीजिएगा, नहीं तो मेरा खेल बिगड़ जायेगा।' पूज्य श्रीभाईजी ने कई प्रकार की गोलियाँ भिजवाकर शामतक श्रीठाकुरजी को स्वस्थ कर दिया, तत्पश्चात पूज्य बाबा ने रात्रि दो बजे तक श्रीठाकुरजी से पद गवाए। अन्त में श्रीभाईजी ने एक स्वरचित लम्बा सा पद निकाल कर दिया और उसे भी श्रीठाकुरजी से गवाया। पूरे कार्यक्रम में श्रीभाईजी व पूज्य बाबा भाव समाधि में डूबे रहे।

पूज्य श्रीराधाबाबा ने काष्ठमौन लेने से पहले श्रीभाईजी से अनेक बातें कहीं, उनमें श्रीठाकुरजी के सम्बन्ध में भी यह कहा कि आप मेरे मौन के बाद सक्रिय रहिएगा और इस ठाकुर का ध्यान रखिएगा। श्रीभाईजी दिनभर व्यस्त रहने के कारण श्रीठाकुरजी को समय नहीं दे पाते थे इसलिए एकबार उन्होंने रात्रिकालीन गोष्ठी का आयोजन किया, जिसमें रात्रि के ग्यारह बजे से एक बजे तक श्रीठाकुरजी से लीलाओं के पद सुनते, फिर स्वयं उसकी व्याख्या करते। इस रात्रिकालीन गोष्ठी में अन्तिम एक घंटे में केवल श्रीठाकुरजी व श्रीभाईजी ही रहा करते थे। यह गोष्ठी कुछ दिन तक चली थी। काष्ठमौन काल में पूज्य बाबा की सम्हाल व स्पर्श का अधिकार पूज्य श्रीभाईजी के अलावा केवल श्रीठाकुरजी को ही था। अन्तरंग सेवक श्रीरामसनेही दादा एवं श्रीभगतजी भी उनकी सेवा में नियुक्त रहते थे।

एकबार श्रीठाकुरजी ने अपनी स्वरूपाई के समय पूज्य बाबा की एक भावपूर्ण मुद्रा का दर्शन किया था–'बाबा लेटे–लेटे जप कर रहे हैं, आँसुओं से उनका तकिया भीग रहा है।' इस झाँकी के बाद श्रीठाकुरजी के अन्दर श्रीबाबा के प्रति पूज्य भाव हो गया। अगले दिन जब वे पूज्य बाबा के पास गए तो पूज्य बाबा अचानक बोल उठे कि देखो, ठाकुर हममें गुरूभाव मत कर लेना, हमारा तुम्हारा सम्बन्ध दूसरा है। यह सुनकर ठाकुरजी अवाक् रह गए। ऐसे ही एकबार श्रीठाकुरजी ने पूज्य बाबा से साधना सम्बन्धी कुछ बातें पूछी थी। पूज्य बाबा ने उत्तर दिया–'ठाकुर, इसका उपाय एवं मंत्र तो मैं जानता हूँ पर मैं स्वयं तुम्हें नहीं दे सकता हूँ। इसे तुम पूज्य श्रीभाईजी से पूछ लो।' फिर श्रीभाईजी से पूछने पर वे बोले–'देखो ठाकुर मैं हूँ तेरा ताऊ, ताऊ ही रहूँगा, तुम्हें

यह मंत्र तो मैं बता ही देता हूँ।' यह कहते हुए श्रीभाईजी ने मंत्र बता दिया किन्तु गुरूभाव करने से निषेध किया।

गोरखपुर के प्रवास काल में एकबार पूज्य बाबा से श्रीठाकुरजी ने कहा कि आप मेरे ऊपर ऐसी कृपा करें की मेरी आप पर श्रद्धा दिनों-दिन बढ़ती जाये। मैं आपके दिव्य राधाभाव स्वरूप के दर्शन की इच्छा नहीं रखता। मैं तो बस यह जो स्वरूप देख रहा हूँ, इसी स्वरूप में मेरी श्रद्धा बनी रहे। बाबा इनकी बात सुनकर रीझ गए और बोले वाह भईया! क्या बात है, लो! यह तो मैं अभी ही कहे देता हूँ कि मेरे प्रति तुम्हारी यह श्रद्धा कभी कम नहीं होगी।

एक अन्य अवसर पर पूज्य बाबा ने श्रीठाकुरजी से कहा-'ठाकुर! तुम चाहो तो क्षेत्र सन्यास लेकर यहाँ मेरे पास रह सकते हो। श्रीठाकुरजी ने बाबा से प्रार्थना करते हुए कहा- 'बाबा यह नियम मैं नहीं ले पाऊँगा, कारण मैं अधिक दिनों के लिए श्रीधाम वृन्दावन से दूर नहीं रह सकता, न ही पूज्य श्रीमहाराजजी के बिना रह सकता हूँ।' पूज्यबाबा इनकी निष्ठा देखकर बड़े प्रसन्न हुए। एकबार पूज्य बाबा ने श्रीठाकुरजी को बुलाकर कहा कि आज मैं तुम्हें कुछ देना चाहता हूँ। लोग आते हैं तो बढ़िया से बढ़िया बस्तु माँगते हैं पर मैं यह कम्बल तुम्हें देना चाहता हूँ। यह इतना खुरदरा है कि इस पर बैठते ही खुजली हो जाए लेकिन इसपर बैठकर मैंने अठ्ठारह वर्ष तक भजन किया है और आज यह मैं तुम्हें सौंप रहा हूँ। श्रीठाकुरजी ने उसे अपने मस्तक से लगाया और वृन्दावन की अपनी कुटिया में भजन करते समय उस कम्बल को सदा अपने पास रखते रहे।

बाबा की भिक्षा

पूज्य बाबा को भिक्षा ग्रहण करते-करते प्रायः दोपहर के दो-तीन बज जाते थे और कभी-कभी सन्ध्या भी हो जाती थी। श्रीठाकुरजी भी पूज्य बाबा के साथ उनकी भिक्षा में ही प्रसाद पाते तथा जब तक भिक्षा न हो तब तक निराहार रहा करते थे। एकबार पूज्या मईया (श्रीभाईजी की धर्मपत्नी) ने पूज्य बाबा से कहा कि बाबा आप तो सन्यासी हैं, आपको देर-सवेर भिक्षा पाने का अभ्यास है किन्तु आपके कारण यह ठाकुर भी भूखा रहता है। जिससे इसका स्वास्थ्य खराब हो जाता है। बाबा ने कहा कि मैं ठाकुर से कह दूँगा कि वो इतनी देर तक भूखा न रहा करे। मौसमी का रस आदि कुछ ले लिया करे। कुछ दिनों तक श्रीठाकुरजी रस लेकर रह जाते और भिक्षा बाबा के साथ ही करते। एकदिन बाबा की भिक्षा में रात्रि के आठ बज गए। श्रीठाकुरजी दिनभर भूखे रहे। रात्रि को पेट में वायु बनने से पेट कुछ फूल गया, भोजन में अरुचि हो गई इसलिए वे अपने कमरे में जाकर लेट गए। जब बाबा भिक्षा के लिए बैठे तो उन्होंने श्रीठाकुरजी को बुलवाया और भिक्षा के लिए कहा। श्रीठाकुरजी ने कहा बाबा अब मेरी इच्छा नहीं हो रही है किन्तु बाबा के बार-बार आग्रह करने पर वे भिक्षा में बैठ गए। भिक्षा के बाद ठाकुरजी को वमन हो गया और पेट में पीड़ा भी होने लगी। बाबा को जब यह पता लगा कि ठाकुर मेरे कारण कष्ट पा रहा है तो उन्होंने श्रीठाकुरजी के लिए श्रीभाईजी की रसोई से समय पर प्रसाद की व्यवस्था करवा दी।

पूज्य बाबा के अन्तरंग

श्रीठाकुरजी गीतावाटिका में कई-कई महीने पूज्य बाबा की

एकान्तिक सेवा में रह जाते थे। पूज्य बाबा से उनकी अनेक गोपनीय एवं गम्भीर चर्चाएँ हुआ करतीं। ये चर्चा प्रायः निशान्त बेला में 3 बजे से 5 बजे तक के बीच होती थीं। पूज्य बाबा अपने जीवन की विभिन्न अनुभूतियों, घटनाओं को सुनाते और वे सभी बातें भी बताते थे, जो दिनभर प्रश्नों, समस्याओं या विचित्र परिस्थितियों के रूप में उनके सामने आती थीं। बाबा कहते–भैय्या! अमुक–अमुक सज्जन आए थे और मुझसे यह बात बताकर गए हैं, यह भी कह गए हैं कि यह बात आप किसी और को मत बताना पर मैं तुम्हें तो वह बात बता ही रहा हूँ।

पूज्य बाबा अपनी नित्य गिरिराज परिक्रमा के समय कुछ देर नेत्र बंद करके खड़े रहते थे और अपने आश्रितजनो के कल्याण के लिए भगवान से प्रार्थना करते थे। किसी के द्वारा पूछने पर उन्होंने बताया कि मैं अपने से जुड़ें अनेक लोगों के लिए जिनकी मनःस्थिति स्थूलतम धरातल पर है, उनकी ओर से उनके उत्थान हेतु भगवान से प्रार्थना करता हूँ। इन लोगों को मैने कुछ विशिष्ट भाव प्रदान किए हैं और प्रत्येक व्यक्ति के साथ कुछ लोगों को जोड़ रखा है। जिनके माध्यम से इन सबकी परिणति उसी भाव में होगी। श्रीठाकुरजी के आग्रह पर एकबार पूज्य बाबा ने उन चुने हुए व्यक्तियों की लिस्ट दिखाई थी। संयोगवश उस समय एक अन्य कृपापात्र सज्जन भी उपस्थित थे। उन्हें भी वह लिस्ट देखने को मिली। अपना नाम न पाकर उन्होंने पूज्य बाबा से निवेदन किया कि बाबा आपकी लिस्ट में मेरा नाम तो है ही नहीं, क्या आप मेरा कल्याण नहीं करेंगे। मैं तो आपके ही भरोसे बैठा हूँ। तब पूज्य बाबा ने उत्तर दिया–' भईया मैने एक प्रमुख व्यक्ति के साथ तुमको जोड़ रखा है। जैसे एक तो हो आँखवाला, और बहुत से बिना आँखवाले हों।

आँखवाले के पीछे एक-दूसरे का कुर्ता पकड़कर उन बिना आँखवालों को पंक्तिबद्ध खड़ा कर दिया जाये तो उस आँख वाले के साथ-साथ बिना आँखवालेभी पार हो जायेंगे। मैंने तुम्हारा नाम ठाकुर घनश्याम के साथ जोड़ रखा है।'

पूज्य राधा बाबा की परिक्रमा एवं श्रीठाकुरजी

सन् १९६५ में आश्विन कृष्ण द्वादशी बुधवार को श्रीभाईजी का पावन जन्मदिवस था। इसबार इनके जन्मदिवस को उत्सव के रूप में मनाने का निश्चय किया गया। पूज्य श्रीराधाबाबा की कुटिया के सामने बाड़े के बाहर, जन्मदिवस का कार्यक्रम पूज्य बाबा ने अपने निर्देशानुसार आयोजित करवाया। पूज्य श्रीभाईजी स्वभावतः बड़े संकोची थे। अपने को बाहर प्रकट नहीं करते थे। उनसे कार्यक्रम में आने का अनुरोध किया गया तो उन्होंने स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया। अन्त में श्रीठाकुरजी पूज्य श्रीभाईजी के पास गए। इनकी प्यार भरी मनुहार से श्रीभाईजी राजी हो गए और निर्धारित समय पर कार्यक्रम में पधारे। उनके आते ही उच्च स्वरों में जय-जयकार के साथ भगवन्नाम संकीर्तन आरम्भ हुआ। पूज्य श्रीबाबा ने श्रीठाकुरजी से नृत्य करवाया। बाद में श्रीठाकुरजी के द्वारा किए गए पदगान ने श्रीभाईजी को अन्तर्मुखी कर दिया।

देहातीत अवस्था में श्रीभाईजी को अधिक देर तक बैठाए रखना, पूज्य बाबा ने उचित नहीं समझा अतः उन्होंने भाई श्रीनटवरजी द्वारा प्रतिनिधि रूप से पूज्य श्रीभाईजी को तिलक करवाया, फूलों की माला पहनवाई एवं भूमि पर लेटकर साष्टांग प्रणाम करवाया। तभी लोगों के

बीच बैठे हुए एक भावुक हृदय सज्जन कुछ अधिक ही भावप्लावित हो गए और श्रीभाईजी की प्रशंसा में एक रचना सुनाने लगे, यह श्रीभाईजी को बिल्कुल रुचिकर नहीं था। वे कार्यक्रम से उठकर चले गए। उन सज्जन के उल्लासाधिक्य ने रस की बाढ़ में बाधा डाल दी। कार्यक्रम की पूर्व निर्धारित सुनिश्चित प्रक्रिया का यथावत् पालन न होने से उपस्थित भक्तों एवं स्वयं पूज्य बाबा को अच्छा न लगा। पूज्य बाबा ने कार्यक्रम में आए भावदोष के परिहार के लिए अपने को जिम्मेदार मानते हुए सदा के लिए श्रीगिरिराजजी की तलहटी में रहने का निश्चय कर लिया। बाबा के इस निश्चय ने अनेक धर्मसंकट उपस्थित कर दिये। यदि पूज्य बाबा गोवर्धन चले जायेंगे तो श्रीभाईजी भी फिर पूरे 'कल्याण' परिवार के साथ क्या श्रीगिरिराजजी गोवर्धन में रहेंगे? अन्ततः धर्मसंकट के निवारण के लिए एक समाधान निकाला गया कि गीतावाटिका में ही श्रीगिरिराजजी की स्थापना कर ली जाए और उसी स्थापित श्रीगिरिराज तलहटी में पूज्य बाबा निवास करें।

पूज्य बाबा ने उसी समय श्रीठाकुरजी को बुलवाया और कहा-'ठाकुर! इसी स्थान पर श्रीगिरिराजजी की स्थापना होगी एवं परिक्रमा पथ में आने वाले सभी स्थानों जैसे श्रीराधाकुण्ड, गोवर्धन, आन्यौर, पूँछरी, जतीपुरा आदि की भी मानसिक रूप से स्थापना होगी। इस हेतु तुम उचित दूरी का निर्धारण करो'। श्रीगिरिराजजी की परिक्रमा के लिए पूरी भूमिपथ को नापा गया। पूज्य बाबा की कुटिया को बरसाना ग्राम मानकर अन्य स्थानों का निर्धारण पूज्य श्रीठाकुरजी ने अपनी धोती से नाप-नापकर किया। इसप्रकार उस स्थान की सैंतालीस परिक्रमा से श्री गिरिराज गोवर्धन की एक मील की दूरी पूरी होती थी।

श्रीगिरिराजजी की परिक्रमा तेरह मील की होने के कारण यह भी तय हुआ कि एक सप्ताह में दो परिक्रमा पूरी हो जायेंगी। पूज्य बाबा ने पहले दिन गोवर्धन से आन्यौर तक की परिक्रमा लगाई। जब परिक्रमा का शुभारम्भ हुआ तो पदगान एवं कीर्तन नहीं होता था। पूज्य बाबा द्वारा रचित 'कृष्ण गोविन्द गोविन्द गोपाल नन्दलाल..' का कीर्तन हुआ। पदगान एवं कीर्तन के क्रम के जुड़ने के साथ ही श्रीगिरिराजजी के पूजन एवं भोग-राग का भी विस्तार होता गया। पूज्य बाबा ने स्वयं कहा-'जब मैने यहाँ गीतावाटिका में श्रीगिरिराजजी की स्थापना करके परिक्रमा लगानी आरम्भ की, तब प्रियतम नीलसुन्दर ने अत्यधिक एकान्तिक सम्बोधन पूर्वक मुझसे कहा कि तुम्हारे परिक्रमा के नियम से और भी अनेक लोगों को विशेष लाभ होगा। जो भी इन श्रीगिरिराजजी का दर्शन, अर्चन, वन्दन करेंगे उनकी ब्रजभाव की ओर गति होगी।' परिक्रमा लगाते समय पूज्य बाबा उपस्थित भक्तों पर दृष्टिपात किया करते थे और उन्हें भाव प्रदान किया करते थे।

जब कभी श्रीठाकुरजी गीतावाटिका में होते तब वे पूज्य बाबा का हाथ पकड़कर उनके संग-संग चलते थे। कीर्तन के मध्य उनके अलाप को सुनकर पूज्य बाबा को अत्यधिक उद्दीपन होता था। पूज्य बाबा कहते थे-'जब ठाकुर अलाप लेता है तब मैं जान जाता हूँ कि जो वस्तु मैंने इसे प्रदान की थी वह ज्यों की त्यों इसके पास सुरक्षित है।'

एकबार पूज्य बाबा ने परिक्रमा करते समय हाथ पकड़े हुए श्रीठाकुरजी से कहा--'क्यों ठाकुर तुम्हें मेरी कलाईयों की चूड़ियों की खनक सुनाई दे रही है?' श्रीठाकुरजी बोले कि बाबा मुझे तो कुछ भी

सुनाई नहीं दे रहा है, तब बाबा ने कहा कि मेरी आँखों से देखो। इसके बाद से श्रीठाकुरजी जब बाबा का हाथ पकड़कर परिक्रमा लगाते तो उन्हें भाव राज्य की स्फूर्ति होती। पूज्य बाबा के स्थान पर उन्हें विरहिणी श्रीराधा दिखाई देतीं। श्रीठाकुरजी स्वयं को भी अपने भाव देह में पाते।

श्रीठाकुरजी जब वृन्दावन से श्रीगिरिराजजी की परिक्रमा के लिए गोवर्धन जाया करते थे तो वे गिरिराजजी के ऊपर चढ़ जाया करते थे। उन्होंने श्रीगिरिराजजी की शिलाओं पर श्रीकृष्णलीला सम्बन्धी अनेकों चिन्ह देखे थे। उसकी चर्चा पूज्य बाबा से की थी। गीतावाटिका में श्रीगिरिराजजी के विधिवत् पूजन, परिक्रमा आदि नियमों की स्थापना के बाद से पूज्य बाबा की आज्ञानुसार श्रीठाकुरजी ने श्रीगिरिराजजी पर भूल से भी चरण रखना बंद कर दिया।

सन् १६७१ में पूज्य श्रीराधाबाबा के पैर में फ्रैक्चर हो गया था उनकी सम्हाल के लिए श्रीठाकुरजी को तार द्वारा वृन्दावन से बुलवाया गया। श्रीठाकुरजी कई माह पूज्य बाबा की सेवा में रहे। यहाँ से पूज्य बाबा के स्वास्थ्य की सूचना पत्र द्वारा श्रीधाम वृन्दावन पूज्य श्रीमहाराजजी को देते रहा करते थे। इन्हीं दिनों भोपाल में पूज्य महाराजजी के भक्त श्रीहीरालालजी के यहाँ संकीर्तन का आयोजन था। पूज्य महाराजश्री भोपाल पहुँच चुके थे। वहाँ से उन्होंने श्रीठाकुरजी को भोपाल आ जाने के लिए पत्र लिखा था।

महाराजजी के पत्र के उत्तर में श्रीठाकुरजी ने जो पत्र लिखे थे, उन पत्रों के अंशो को देखकर श्रीठाकुरजी की सेवा तत्परता एवं पूज्य बाबा का इनके प्रति विश्वास स्पष्ट झलकता है।

दिनांक ०५.०७.१९७१

पत्र :-१

'... पूज्य बाबा के पैर की हड्डी इतनी बुरी तरह टूटी है कि दूसरा व्यक्ति तो उठ ही नहीं सकता। दो सर्जन मात्र गरम पानी का सेंक करके धोती फाड़कर बाँध देते हैं। इसके सिवा करें क्या बेचारे। दवा के नाम पर कुछ लेने को तैयार हो तब न। बैठे-बैठे घसीट-घसीटकर परिक्रमा का नियम पूरा करते हैं। इतनी तकलीफ में भी दिनभर बात करते हैं। सब लोगों के साथ मीटिंग में भाग लेते हैं। विचित्र लीला है इनकी।...'

दिनांक २६.०७.१९७१

पत्र :-२

'... पूज्य श्रीबाबा अब एक मील चल लेते हैं। पाँच-छः दिन में बिना सहारे के चल सकेंगे। तभी मुझे वृन्दावन भेजने का विचार किया है। वैसे मन तो इनका कुछ और रोकने का ही है।...'

दिनांक ३१.०७.१९७१

पत्र :-३

'... पूज्य श्रीबाबा अभी एक मील चलते हैं बाकी के चार मील बैठकर परिक्रमा करते हैं। जब मैंने पूज्य श्रीबाबा से कहा कि महाराजजी ने बुलाया है तो उन्होंने कहा-"बहुत खुशी से आज ही जा सकते हो। पूज्य महाराजजी मेरी दृष्टि में पूर्ण पुरुषोत्तम हैं। उनकी आज्ञा माननी ही चाहिए। यदि मैं चार मील परिक्रमा करने लग जाऊँ तब तो तुम्हारी सहायता की आवश्यकता नहीं रहेगी परन्तु अभी तो आवश्यकता है ही। दूसरे से सहायता लेनी होती तो तुम्हें बुलाने का कोई कारण नहीं था। अभी दो-तीन हफ्ते से पहले तो चार मील चलना कठिन ही जान पड़ता है। उसके बाद तो तुमको खूब प्रसन्नचित्त होकर भेजा जा सकता है।"

पैर अभी शरीर का पूरा वजन नहीं सम्हालता। कमजोर जो है। यदि पैर की बात न होती तो मैं किसी भी हालत में आ जाता। परिस्थिति तो है ही ऐसी।...'

१९७८ में काष्ठमौन के पूर्व, पूज्य श्रीराधाबाबा अनेक लोगों से मिलते थे। उन्हें समय देकर उनकी समस्याएँ सुनते और समाधान देते। उस समय श्रीठाकुरजी भी वहाँ उपस्थित रहते थे। उन्होंने भी अपनी समस्याओं के समाधान के लिए एकान्तिक समय माँगा। पूज्य बाबा ने कहा कि क्या तुमको भी समय चाहिए? श्रीठाकुरजी बोले-'हाँ बाबा मुझे दो घण्टे का समय चाहिए।' निर्धारित समय पर श्रीठाकुरजी बाबा के पास पहुँच गए। बाबा ने उनसे पूछा-'बोलो ठाकुर, तुम्हारी क्या समस्या है?' तब श्रीठाकुरजी ने कहा-'बाबा मेरी कोई समस्या नहीं है। बस मैं चाहता हूँ कि आप कुछ देर आराम कर लें। इन दो घण्टों में आप कुछ भी नहीं बोलेंगे। मैं आपकी चरण सेवा करूँगा।' इतना कहकर श्रीठाकुरजी उनकी चरण सेवा करने लगे। पूज्य बाबा इनके इस अद्‌भुत सेवाभाव से रीझ गए। पूज्य बाबा ने कहा-'ठाकुर! मैं सचमुच बहुत थक गया था। मेरा रोम-रोम दर्द कर रहा था, किन्तु किसी का भी ध्यान मेरे कष्ट की ओर नहीं गया।' इसके बाद बाबा थोड़ी देर में ही सो गए।

वीणा-वादन

एकबार पूज्य राधाबाबा को अपने अन्तरंग भावराज्य में प्रिया-प्रियतम की वीणा-वादन लीला का स्फुरण हुआ। कुछ दिन बाद उनके मन में उसी लीला का पुनः आस्वादन करने की इच्छा हुई तब उनकी भावना के अनुरूप एक वीणा मुम्बई से मँगवाई गई। वीणा के उपलब्ध हो जाने पर उन्होंने इसका विधिवत् पूजन करवाया और

श्रीठाकुरजी से उसे बजाने के लिए कहा। श्रीठाकुरजी ने कहा– 'बाबा मैने वीणा कभी नहीं बजाई।' इस पर बाबा ने कहा–'ये मेरा खेल है, तुम तो बस वीणा के तारों को छेड़ भर दो।' श्रीठाकुरजी ने बाबा के कहने से वैसा ही किया। वीणा मधुर स्वरों से निनादित हो उठी। वीणा की स्वर लहरियों को सुनकर बाबा अति प्रसन्न हुए और भाव समाधि में डूब गए। बाद में वह वीणा पूज्य बाबा ने श्रीठाकुरजी को भेंट कर दी जो अद्यावधि वेणु विनोद कुञ्ज वृन्दावन में सुरक्षित रखी है।

सारंगी बालक

एकबार कलकत्ते के श्रीरामनिवासजी ढाँढनिया किसी सारंगी कलाकार को पूज्य श्रीराधाबाबा की सेवा में प्रस्तुति हेतु गोरखपुर लेकर आए। इन कलाकार को भारत सरकार ने सम्मानित किया था। पूज्य बाबा के सामने उन्होंने अपनी कला का प्रदर्शन किया। जब वह अपनी प्रस्तुति दे चुके तब श्रीबाबा ने उनसे कहा कि एक सारंगी बालक हमारे पास भी है। हम आपको उससे कुछ सुनवाना चाहते हैं। उनदिनों श्रीठाकुरजी गीतावाटिका गोरखपुर में थे। पूज्य बाबा ने उनको बुलवाकर सारंगी वादन करने के लिए कहा। श्रीठाकुरजी ने पूज्य बाबा के कहने पर सांरगी में एक–दो रागें बजाई, जिसे सुनकर वे कलाकार आश्चर्यचकित रह गए। ऐसा निपुण वादक पूज्य बाबा की सेवा में रहता देखकर वे बहुत प्रभावित हुए।

सारंगी साधना को विराम

एकबार श्रीठाकुरजी गोरखपुर में अपनी कुटिया में बैठकर सारंगी बजा रहे थे। उसकी मधुर ध्वनि सुनकर कुछ श्रोता वहाँ एकत्रित हो

गए। संयोग से पूज्य भाईजी उस ओर आ गए। श्रीठाकुरजी की कुटिया पर उनकी दृष्टि पड़ी। सारंगी साधना को भजन में विक्षेप जानकर उन्होंने श्रीठाकुरजी से एकान्त में कहा–'भइया! क्या तुम्हें मालूम है कि यह वाद्य किन लोगों के बीच प्रचलित है। नाचने-गाने वाले लोग इसे मनोरंजन के लिए संगीत की महफिलों में बजाते हैं। हमको कहाँ प्रदर्शन करना है! तुम तो इसे बाबा के कहने पर ही बजाया करो। लोग क्या समझें, वे तो तुमसे बजाने के लिए आग्रह करेंगे ही।' श्रीठाकुरजी श्रीभाईजी का आशय समझ गए और उसके बाद सारंगी को सदा के लिए पेटी में बन्द कर दिया। न तो पूज्य बाबा ने कभी कहा और न ही इन्हें समय मिला कि स्वान्तःसुखाय बजाएँ। इसप्रकार इनकी सारंगी साधना का सदा के लिए विराम हो गया।

पूज्य श्रीराधाबाबा के श्रीचरणों में निवेदन करते हुए एकबार श्रीठाकुरजी ने अपने लिए कुछ साधनात्मक निर्देश प्रदान करने की प्रार्थना की। तब पूज्य राधाबाबा ने कहा–'तुम्हारे लिए नियम के बारे में मैं 'पिछड़िया' (श्रीकृष्ण) से पूछकर बताऊँगा।' दूसरे दिन पूज्य राधाबाबा ने श्रीठाकुरजी से कहा–'ठाकुर! श्रीकृष्ण ने मुझे इंगित करते हुए कहा कि यह बालक पूर्वजन्म में पर्याप्त साधना कर चुका है अब इस जन्म में इसे विशेष साधना करने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए तुम्हें अभी मैं कुछ नहीं कहता। यदि बाद में प्रेरणा हुई और कभी कुछ करने के लिए कहूँ, तो तुम उस नियम को कर लेना।' कई दिनों बाद पूज्य श्रीबाबा ने श्रीठाकुरजी को 'श्रीराधासुधानिधि' के दो श्लोक पढ़ लेने का नियम बताया था जिसे श्रीठाकुरजी ने अपने नित्यपाठ में जोड़ लिया।

बाबा की थाली

पूज्य श्रीराधाबाबा अपनी कुटिया में बैठकर प्रायः गुप्तरूप से अपनी भावनिधि को अपने से जुड़े हुए समस्त परिकरजनों को प्रदान किया करते थे। बाबा इस प्रक्रिया को अपनी भाषा में थाल परोसना कहते थे। कभी-कभी जब सूक्ष्मरूप से प्रेषित की गई अध्यात्मिक भावनिधि की थाली, जिस व्यक्ति को भेजते एवं उस व्यक्ति के मानसिक धरातल को, उसके मन के बिखराव के कारण, भावनिधि के योग्य न पाते तो निराश होकर अपनी निधि को वापस ले लेते थे।

एकबार उन्होंने अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कहा कि *बस एक ठाकुर है, जिसे जब-जब मैं थाल परोसा तो मुझे थाल वापस लेना नहीं पड़ा। उसके मन का धरातल सदैव मेरी भावनिधि के अनुकूल ही मिला। इसका द्वार मुझे सदा खुला मिलता है और जो वस्तु मैं इसे प्रदान करता हूँ यह उसे ज्यों का त्यौं ग्रहण कर लेता है। ठाकुर में एक आना भर ठकुराई अभी भी विद्यमान है।*

कृष्ण भक्त बहुत चतुर

श्रीकृष्णभावभाविता मति स्थूल विषयों को निस्सार समझकर पुनः उस ओर नहीं लुभाती। श्रीकृष्णाविष्ट चित्त में जड़ माया का छद्म नहीं चल पाता है। जैसे भुने हुए चने को पानी से सींचा जाए तो भी उसमें अंकुर नहीं फूटते, ऐसे ही जो साधक, सिद्ध महापुरुषों के आनुगत्य में रहकर अपने मन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म गतिविधियों का निरीक्षण करता रहता है,उन्हें नियंत्रित रखता है, अपनी बुद्धि की एक-एक वृत्तियों से भगवान के मधुर श्रीअंगों का पूजन करता रहता है, भला उसके

कृष्णाविष्ट चित्त को जागतिक आकर्षण कैसे प्रभावित कर सकते हैं?

जब श्रीठाकुरजी गीतावाटिका गोरखपुर में सघन वृक्षों व झाड़ियों के मध्य स्थित अपनी एकान्तिक कुटिया में भजन करते थे। उस समय की एक घटना है कि एकबार एक युवती उनके निकट आई। अचानक उसे वहाँ आया देखकर श्रीठाकुरजी को अटपटा लगा, किन्तु गीतावाटिका में आने-जाने वाली ही एक परिचिता होने से संकोचवश वे उससे तुरन्त चले जाने के लिए न कह सके। उस युवती ने पहले इधर-उधर की चर्चा शुरू की किन्तु व्यर्थ की चर्चा से श्रीठाकुरजी को अपने नियम व साधना में बाधा हो रही थी। बातों-बातों में ही उस युवती ने यह कहा कि आपने भी विवाह नहीं किया है और मेरा भी विवाह नहीं हुआ है। उसकी यह बात सुनकर श्रीठाकुरजी तुरन्त बोल पड़े कि तुमसे किसने कहा कि मेरा विवाह नहीं हुआ, मैं तो विवाहित हूँ। मेरे तीन बच्चे भी हैं एक लड़की और दो लड़के। यहाँ तो मैं गृहस्थी चलाने के लिए पड़ा रहता हूँ। इसी बहाने मुझे खर्चा-पानी मिल जाता है।

श्रीठाकुरजी की बात सुनते ही वह युवती अवाक् रह गयी। उसने कहा- 'अरे! आप क्या बात कह रहे हैं, मुझे तो मालूम था कि आप अविवाहित हैं।'

श्रीठाकुरजी ने कहा-'हाँ, ठीक ही मालूम था क्योंकि यह बात अभी तक मैंने किसी को बताई नहीं है अब तुम्हारे पूछने पर मैं सच्ची बात तुमसे बता रहा हूँ'। श्रीठाकुरजी विवाहित हैं, इनके तीन बच्चे हैं यह सुनकर वह युवती तुरन्त उठकर चली गई।

कुछ देर बाद जब श्रीठाकुरजी पूज्य बाबा की सेवा में पहुँचे तो पूज्य

बाबा ने श्रीठाकुरजी से प्रश्न किया–'ठाकुर! तुम्हारे पास अभी कौन आया था?' श्रीठाकुरजी बोले–'बाबा वह अमुक आयी थी।'

पूज्य बाबा बोले–'हाँ, वह अभी–अभी यहाँ से होकर गई है। भईया! वह तो कह रही थी कि ठाकुरजी का विवाह हो चुका है। उनके तीन बच्चे हैं। क्यों, तुम उससे झूठ बोले?' श्रीठाकुरजी ने कहा– 'बाबा! मैंने सच ही कहा था।'

बाबा बोले–'क्यों! भईया तुमने ये बात हमें तो कभी बतायी ही नहीं?' तब श्रीठाकुरजी ने हँसते हुए कहा–'बाबा आपने ही एक बार बताया था वही बात मैने कह दी कि पुरुष और प्रकृति ये दो ही इस देह के कारण हैं उस पुरुष का मायिक–प्रकृति से संसर्ग हुआ तभी तो वह जीव भाव को प्राप्त होकर संसार में भटक रहा है तब "प्रकृति" स्त्री हुई कि नहीं? मन, बुद्धि और चित्त ये ही उस प्रकृति के विकार हैं तो फिर ये संतान हुईं कि नहीं। बुद्धि (मति) लड़की है तथा मन और चित्त ये दोनों पुत्र हैं। श्रीठाकुरजी की बात सुनकर बाबा हँस पड़े और बोले–अरे! वाह ठाकुर! बात तो तुमने बिलकुल ठीक कही। तुम तो बड़े चतुर निकले। माया से पीछा छुड़ाने के लिए तुमने ये अच्छी युक्ति निकाली।

बाबा का आह्लाद

१९६५ में मथुरा में विख्यात श्रीकृष्णजन्मस्थान पर श्रीभागवत भवन का शिलान्यास होना था। पूज्य श्रीभाईजी एवं पूज्य राधाबाबा मथुरा पधारे थे। सभी लोग बिड़ला मन्दिर में ठहरे हुए थे। श्रीठाकुरजी भी उनकी सेवा में उपस्थित हुए। श्रीभाईजी ने श्रीठाकुरजी से कहा– 'ठाकुर! तुम वृन्दावन से जल्दी से आ जाया करो और बाबा की सम्हाल

कर लिया करो, क्योंकि ब्रजमण्डल में आने के बाद बाबा बहुत ही अन्तर्मुख हो जाते हैं।' श्रीठाकुरजी को पूज्य श्रीभाईजी का इतना संकेत पर्याप्त था। वे सवेरे की पहली बस से चलकर बिड़ला धर्मशाला पहुँच जाते थे। दिनभर पूज्य बाबा की सेवा में रहते थे। एकदिन श्रीठाकुरजी ने बसन्त राग में श्रीराधाजी की रूपमाधुरी से सम्बन्धित एक पद का गान पूज्य बाबा के भावोद्दीपन के लिए किया-

तेरी नवल तरुणता नव बसन्त। नव नव विलास उपजत अनन्त।।
नव अरूण अधर पल्लव रसाल। फूले विमल कमल लोचन विसाल।।
चल भृकुटि भंग भृंगन की पाँति। मृदु हँसनि लसनि कुसुमनि की भाँति।।
भई प्रकट अलप रोमावलि मौर। स्वासा सौरभ मलय पवन झकोर।।
कल फल उरोज सुन्दर सुठान। मधु मधुर बोलन कोकिला गान।।
देखत मोहे ब्रज कुँवर राई। बाढ़यौ मन्मथ मन चौगुनो चाई।।
तोहिं मिलि विलस्यो चाहत हैं स्याम। जाहि देखत लज्जित कोटि काम।।
तब चलीं चरण मन्थर विहार। बाजै रुनन झुनन नूपुर झंकार।
पुलकित गोकुल कुलपति कुमार। मिलि भयौ 'गदाधर' सुख अपार।।

पद को सुनकर पूज्य बाबा अपने भाव राज्य में डूब गए। भाव को प्रशमित होने में काफी समय लग गया।

प्राकृत धरातल में आने पर पूज्य श्रीराधाबाबा ने कहा-'ठाकुर तुमने मेरे अनुरञ्जन के लिए यह पद गाया है। तुम्हारी यह भावना अत्यन्त सराहनीय है। इस पद के माध्यम से मेरे ही स्वरूप का वर्णन हुआ। इससे मेरा अनुरञ्जन तो हुआ ही किन्तु अब मेरे परमानुरञ्जन के लिए

प्रियतम की रूपमाधुरी का वर्णन करो। तब श्रीठाकुरजी ने यमन राग में श्रीकृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन किया-

मोहन मुखारबिंद पर मनमथ कोटिक बारौं री माई।
जिहिं जिहिं अंगन दृष्टि परत है तिहिँ तिहिँ रहत लुभाई।।
अलक तिलक कुण्डल कपोल छवि इक रसना मोपै वरनि ना जाई।
'गोविन्द प्रभु' की बानिक ऊपर बलि बलि रसिक चूड़ामणि राई।।

श्रीठाकुरजी पदगान को विराम देकर निर्निमेष लोचनों से पूज्य बाबा को देखने लगे। दोनों ही पाषाणवत् निशब्द बहुत देर तक ऐसे ही विराजमान रहे। जब बाबा प्रकृतिस्थ हुए तो उनमें भाव की एक विशेष लहर आयी और उन्होंने श्रीठाकुरजी को अपने हृदय से लगा लिया।

कीर्तन पाण्डाल में मूर्च्छा

सन् १९६७-६८ की बात है, श्रीराधाष्टमी के अवसर पर गीतावाटिका के कीर्तन पाण्डाल में पूज्य श्रीबाबा एवं पूज्य श्रीभाईजी विराज रहे थे। उद्दाम नाम संकीर्तन चल रहा था, तभी पूज्य बाबा ने श्रीठाकुरजी को नृत्य करने का संकेत किया। पूज्य बाबा की आज्ञानुसार श्रीठाकुरजी ने विभिन्न भाव-भंगिमाओं से नृत्य करना आरंभ किया। नृत्य करते-करते श्रीठाकुरजी को देह का भान नहीं रहा। भावावेश में वे भूमि पर गिर पड़े। भक्तों ने उन्हें सम्हाला एवं पूज्य श्रीभाई जी की गोद में लिटा दिया। पूज्य श्रीभाईजी बड़े ही स्नेह पूर्वक उनके सिर पर हाथ फेरते रहे। थोड़ी देर बाद जब चेतना आयी तो श्रीठाकुरजी, पूज्य भाईजी से लिपटकर रोने लगे। काफी देर बाद

सामान्य हो पाए। लोगों के पूछने पर पूज्य श्रीभाईजी ने बताया कि ठाकुर पर श्रीराधारानी की विशेष कृपा हुई है। श्रीभाईजी ने बताया कि साक्षात् दर्शन तो बहुत दुर्लभ हैं परन्तु यह भी एक विशेष प्रकार की अनुभूति है, जो बड़े भाग्य से प्राप्त होती है। श्रीठाकुरजी ने उस समय अपने आप को पात्रों के मध्य सखी मण्डल में पाया था।

एक अन्य श्रीराधाष्टमी महोत्सव पर श्रीठाकुरजी ने गोपीवेष धारण करके नृत्य किया था। जिसमें उन्होंने नथ पहनी, कुण्डल पहने एवं लहँगा-चूँदरी धारण करके नृत्य किया। पूज्य श्रीभाईजी एवं श्रीबाबा की प्रसन्नता के लिए श्रीठाकुरजी यंत्र बनकर उनकी इच्छानुसार नाचते थे।

भाव ऐक्यता

स्थान जितना जनशून्य और वायुमण्डल जितना रवशून्य रहेगा बाबा के लिए उतनी अनुकूलता रहेगी अतः श्रीभाईजी ने ऐसा कह रखा था कि बाबा की कुटिया के पास कोई शोरगुल न होने पावे। इस प्रकार का स्थाई निर्देश होने के कारण कुटिया के चारो ओर का वातावरण बड़ा शान्त रहा करता था। एकबार की बात है, श्रीठाकुरजी बाबा की कुटिया के पासवाली पगडंडीसे होते हुए अपनी कुटियापर जा रहे थे। पगडंडी पर चलते-चलते वे स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज का एक पद गुनगुना रहे थे--

तू रिस छाड़ि री राधे राधे।

ज्यों ज्यों तोकों गहरु त्यौं त्यौं मोकों बिथा री साधे साधे।।

प्राननि कों पोंषत हैं री तेरे वचन सुनियत आधे आधे।

श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा तेरी प्रीति बाँधे बाँधे।।

गायन की मस्ती में श्रीठाकुरजी बीच-बीच में अलापचारी पूर्वक उच्चस्वर से गा उठते। कुटिया में पहुँचकर भी पदगान होता रहा समय का भान नहीं रहा।

इसी बीच श्रीभाईजी बाबा के पास आए। मध्यान्ह का समय था। उन्होंने बाड़े का कपाट धीरे से खोला। देखा कि बाबा बाड़े के भीतर स्थित लीची के पेड़ की एक डाल को अपने दोनों हाथसे पकड़कर, कुछ लटकते हुए से खड़े हैं और मस्ती में झूम रहे हैं। बाबा को पता नहीं चला की श्रीभाईजी बाड़े के भीतर आ गए हैं। कुछ देर तक वे बाबा की भावपूर्ण मुद्रा को निहारते रहे फिर बाबा को धीरे से संबोधित किया। श्रीभाईजी को आया देखकर बाबा वहीं भूमि पर बैठ गए और उन्हें भी बैठा लिया तथा कहने लगे-'पता नहीं, यह बात कैसे बन गई कि आज यह ठाकुर उसी भाव का पद गाने लगा जिस भाव में मैं डूब रहा था। इस ठाकुर को भला क्या पता कि मेरी मनःस्थिति क्या चल रही है पर इसने मेरे भाव के अनुरूप पद गाया।'

आर्थिक संकट का निवारण

एकबार एक प्रतिष्ठित धनाढ्य परिवार पर आर्थिक संकट आया। उस परिवार की प्रमुख महिला श्रीराधाबाबा की कृपापात्र थीं। पूज्य बाबा के पास आकर इन्होंने अपनी समस्या का निवेदन करते हुए कहा-'बाबा मेरी आर्थिक स्थिति बड़ी डावाँडोल है और अर्थाभाव के कारण पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन बड़ा कष्टपूर्ण है।' पूज्य बाबा का करुण हृदय उनकी आर्तप्रार्थना से द्रवित हो उठा। उन्हें सान्त्वना देते

हुए बाबा ने कहा--'यह तुम्हारे द्वारा घटित अशुभ कर्मराशि का स्वाभाविक परिणाम है। तुम कह तो रही हो पर यह कार्य बड़ा कठिन है। अच्छा! मैं कोई उपाय सोचूँगा।'

पूज्य बाबा के शब्दों से आश्वस्त होकर वह महिला अपने घर आ गई। इसके बाद बाबा ने श्रीठाकुरजी को बुलवाया और उनसे कहा कि भइया तुम्हें मेरा एक काम, जैसे मैं कहूँ वैसा ही करना है। इस कार्य को तुम्हीं कर सकते हो। फिर बाबा ने कदम्ब वृक्ष का एक पत्ता मंगवाया और उसपर इत्र से कुछ लिखा, फिर पत्ते को श्रीठाकुरजी को देते हुए कहा कि इसे लेकर वृन्दावन चले जाओ। वृन्दावन के सेवाकुञ्ज में अमुक दिशा में किसी झाड़ी के नीचे बैठ जाना और प्रतीक्षा करना किसी साधू की। तीन दिन तक कुछ घंटे वहाँ बैठकर उस साधू की प्रतीक्षा करते रहना। जब वह साधू तुम्हारे सामने खड़े होकर यह पत्ता माँगे तो उन्हें दे देना। यदि तुम्हें दो-तीन घंटे से कुछ ज्यादा भी बैठना पड़े तो तुम्हें बैठना है। यह कार्य तुम्हें ही करना है।

पूज्य बाबा के निर्देशानुसार श्रीठाकुरजी सेवाकुञ्ज में जाकर बैठने लगे। दो दिन तो कोई नहीं आया। तीसरे दिन दो-तीन घंटे बैठने के बाद एक साधू जिनकी आँखे बड़ी-बड़ी एवं लाल थीं, इनसे कुछ ही दूर आकर खड़े हो गए एवं जोर-जोर से हँसने लगे। उन साधू का वेष भी बड़ा अस्त-व्यस्त था। श्रीठाकुरजी ने सोचा कि अब ये मुझसे पत्ता माँगेंगे किन्तु उन्होंने पत्ता नहीं माँगा तब श्रीठाकुरजी ने उन्हें दूर से पत्ता हिलाकर दिखाया किन्तु वे हँसते हुए वहाँ से चले गए। श्रीठाकुरजी ने वह पत्ता सेवाकुञ्ज की रज में दबा दिया। गोरखपुर पहुँचने पर

श्रीठाकुरजी ने सारा वृत्तान्त पूज्य बाबा को सुनाया, जिसे सुनकर बाबा बोले-'ठीक है काम हो गया' और कुछ ही दिनों में उन महिला की आर्थिक स्थिति सुधर गई।

अमोघ आश्वासन

गीतावाटिका के परम एकान्त में एकबार श्रीठाकुरजी के हृदय में श्रीकृष्णदर्शन की लालसा ने बड़ी व्याकुलता उत्पन्न कर दी। उन्होंने पूज्यराधाबाबा से पूछा-'बाबा, मुझे श्रीकृष्णदर्शन कब होंगे?'

पूज्य बाबा ने श्रीठाकुरजी के व्याकुलहृदय को सान्त्वना देते हुए कहा-'*भईया प्रतीक्षा, एकमात्र प्रतीक्षा ही इसका उत्तर है। हमें तो चातकीवृत्ति का आश्रय लेकर केवल उनकी प्रतीक्षा ही करनी है। श्रीकृष्ण परम स्वतंत्र हैं, फिर भी उनकी एक महान दुर्बलता है कि वे किसी की पुकार सुनकर पलभर के लिए भी रुक नहीं पाते, उसके सन्मुख स्वयं को प्रकट कर देते हैं। 'अनुभावयति च भक्तान्' भक्त का हृदय इसका अनुभव करता है पर अतृप्ति बनी रहती है। वे परम दयामय हैं, परम कृपामय हैं। वे कब किसके, कौन से गुण पर रीझ जाएँ कहा नहीं जा सकता। कहो तो एकक्षण में आवरण हटा लें, कहो लुकाछिपी की लीला करते रहें किन्तु तुम्हारे लिए तो मैं यही कहूँगा कि तुम्हें इसी जन्म में दर्शन होंगे।*

श्रीठाकुरजी पुनः बोले- 'बाबा! वह समय कब आएगा, अभीतक तो उनका प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त हुआ नहीं।'

पूज्य बाबा ने उत्तर दिया-'ठाकुर तुम्हें अंत समय में उनके प्रत्यक्ष दर्शन होंगे।'

श्रीठाकुरजी उदास होते हुए बोले-'बाबा अन्तिम समय मिले तो क्या मिले, पूरा जीवन तो यों ही निकल गया। जीवन रहते-रहते मिलते तो सुख था।' पूज्य बाबा ने आश्वासन देते हुए स्पष्ट किया-'ठाकुर! नाम स्मरण व लीलास्मरण ही उनकी प्राप्ति का साधन है किन्तु जीवन के अंतिम तीन वर्षों में तो वे तुम्हारे लिए प्रत्यक्ष हो जाऐंगे। उस स्थिति में यह प्राकृत देह अधिक दिनों तक टिक नहीं पाती है।' पूज्य बाबा के इस अमोघ आश्वासन को पाकर श्रीठाकुरजी कृतकृत्य हो गए। उन्होंने नित्यलीला प्रवेश से कुछ वर्ष पहले एक साधक से इस सुगुप्त वार्ता का संकेत किया था।

पूज्य ब्रह्मचारी जी के गोलोक धाम में

सन् १९६६ में गोरक्षा के लिए अखिल भारतीय स्तर पर आन्दोलन आरम्भ किया गया था। पूज्य प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी ने यमुनापार एक गोशाला का निर्माण कराया था जिसका नाम गोलोकधाम रखा था। वे वहीं पर गायों की सेवा में रत रहा करते थे। इसी अवधि में पूज्य श्रीभाईजी का ब्रज में आगमन हुआ। साथ में पूज्य बाबा भी थे। ये बिड़ला धर्मशाला में ठहरे थे। ब्रह्मचारी जी का आग्रह था कि पूज्य बाबा, पूज्यभाईजी एवं पूज्या माँ (पूज्य भाईजी की धर्म पत्नी) एक बार गोलोकधाम अवश्य पधारें। पूज्यभाईजी ने उनके स्नेहाग्रह को स्वीकार कर लिया। तिथि निश्चित कर दी गई। उसदिन गोलोकधाम में एक सभा का आयोजन भी रखा गया। वहाँ तक जाने का मार्ग सीधा वृन्दावन होकर ही था किन्तु पूज्य राधा बाबा किसी अन्तरङ्ग भावनात्मक कारण से श्रीधाम वृन्दावन में प्रवेश नहीं करते थे। इसलिए मथुरा-राया-माँट

मार्ग से होकर यमुना पार गोलोकधाम में जाने का कार्यक्रम बना। मोटरकार में पूज्य बाबा, पूज्य भाईजी आगे की सीट पर तथा श्रीठाकुरजी, पूज्या मैय्या व आदरणीया बाई (पूज्य भाईजी की पुत्री) पीछे की सीट पर बैठे थे।

मोटर में बैठतेही भाईजी ने श्रीठाकुरजी जी से पूछा–'क्यों घनश्याम! तुम रास्ता जानते हो न!'

ठाकुर जी ने कहा–'जी बाबूजी, यहाँ का एक–एक रास्ता हमारा देखा हुआ है।'

श्रीभाईजी ने कहा–'अच्छा तो तुम ड्राइवर को बताते रहना कि कहाँ दाये–बायें मुड़ना है।'

कार जब मथुरा शहर के बाहर आ गई तो श्रीभाईजी ने ठाकुर जी को आगे की सीट पर पूज्य बाबा के बगल में बैठा दिया और स्वयं पीछे बैठ गए। जिससे मार्ग में आने वाले विशेष स्थानों का परिचय, पूज्य बाबा को श्रीठाकुरजी द्वारा प्राप्त होता रहे। कार ज्यों ही माँट से गोलोक धाम के लिए वृन्दावन की ओर बढ़ी कि थोड़ी दूर पर श्रीयमुना की नील धारा का दर्शन होने लगा। उस पार वृन्दावन के विशाल मंदिरों के जो जो मुख्य शिखर दिखाई देते श्रीठाकुरजी उनका परिचय पूज्य बाबा को देते जाते थे। वर्णन सुनकर पूज्य बाबा की दशा कुछ और ही हो जाती। बाबा को बतलाने में और उनकी अभिभूत मुखाकृति को देखने में श्रीठाकुरजी को मार्ग का भान न रहा और वे पहुँच गए 'गोलोक धाम' की बजाय 'मानसरोवर'।

श्रीभाईजी ने विनोद की भाषा में कहा–'तुम तो अच्छे राह दिखलाने वाले मिले!'

फिर भाईजी अत्यन्त प्यार से बोले–'मुझे इन स्थानों का दर्शन बड़ा प्रिय लगता है। यह भूमि यह सुन्दर कुँजे, यह रज, यह सरोवर, यह शान्ति, कितनी अच्छी लग रही है। मुझे ही नहीं पूज्य बाबा को भी ये सब बड़े प्रिय हैं।'

सभी ने सरोवर के जल का आचमन किया। अपनी अञ्जली में जल भरकर श्रीठाकुरजी ने पूज्य बाबा को दिया। बाबा ने भी आचमन किया। मानसरोवर स्थान का दर्शन करके सभी लोग गोलोक धाम की ओर चल पड़े। 'गोलोक धाम' पहुँचने पर पूज्य ब्रह्मचारीजी ने सभी का स्वागत किया। श्री भाईजी ने ब्रजभूमि एवं गायों की महत्ता पर भाषण दिया। कार्यक्रम के समापन के बाद पूज्य भाईजी ने कहा–'ब्रह्मचारी जी ने हम लोगों पर बड़ा उपकार किया है। अबतक ऐसा होता था कि मृत्यु के बाद 'गोलोक धाम' का दर्शन मिल पाता था किन्तु अब तो हम लोग अपने जीवनकाल में ही 'गोलोक धाम' का दर्शन कर रहे हैं।' यह सुनकर श्री ब्रह्मचारी जी ठहाका लगाकर हँस पड़े।

*****

१० पूज्य महाराजश्री की सेवा में रत

महादुर्लभ भगवद् प्रेम का प्रादुर्भाव एकमात्र महापुरुषों की कृपा से ही संभव है। पूज्य श्रीभाईजी, पूज्य श्रीराधाबाबा व पूज्य श्रीमहाराजजी इन तीनों महापुरुषों के बीच रहकर श्रीठाकुरजी की अध्यात्मिक सम्पदा में वृद्धि हुई। श्रीठाकुरजी के ही शब्दों में:-

'मेरे ऊपर बाबूजी, बाबा और महाराजजी की विशेष कृपा है। लोक व्यवहार बाबूजी से सीखा। भजन एवं उपासना महाराजजी की है, पर संस्कार बाबा के हैं। तीनों ही सन्त ऐसे विलक्षण थे कि जिनके जीवन में भजन मूर्त था। इनकी छोटी से छोटी चेष्टाएँ व सामान्य सी भगवद् प्रसाद पाने की क्रिया भी अलौकिकता से परिपूर्ण थी। ये किसी और ही राज्य में रहते हुए यह सब क्रियाएँ कर रहे हैं, ऐसा स्पष्ट अनुभव होता था। ये सभी संत इतने उच्च कोटि के थे कि जिनके दर्शन मात्र से मन में दिव्य भाव जाग्रत होते थे।'

रुचि लै शुचि सेवा करै सेवक कहिए सोय।
तन मन धन अर्पण करै रहै अपनपौं खोय।।

पूज्य महाराजश्री की सेवा ही अब श्रीठाकुरजी के भजन का प्रधान अंग हो गया। पूज्य महाराजजी की रुचि ही अब उनकी अपनी रुचि थी। ये महाराजश्री के मनोभावों को भाँपकर तद्नुसार उपयुक्त सेवा सम्पन्न कर देते थे, जिसे देखकर श्रीमहाराजजी बड़े प्रसन्न होते थे।

अपने नित्य नियम को पूरा करके जब ये अपनी कुटिया से परम पूज्य

महाराजश्री के दर्शनार्थ आ रहे होते थे तो इसके पूर्व ही महाराजश्री अपने निकटस्थ परिकरजनों से कहते कि देखिए जी ! ठाकुरजी अब आने ही वाले हैं क्योंकि मुझे संगीत की स्फूर्ति होने लगी है और कुछ ही क्षणों बाद ऐसा देखा जाता कि श्रीठाकुरजी श्रीचरणों में आकर प्रणाम निवेदित कर रहे हैं। तुरन्त ही हास्य विनोदपूर्ण वातावरण छा जाता था। ठाकुरजी उनदिनों बहुत ही वैराग्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे।पूज्य महाराजश्री इनके लिए कहा करते थे कि ये पूर्वजन्म के कोई योगभ्रष्ट महात्मा हैं। पूज्य महाराजश्री के आनुगत्य में रहने वाले अन्य सभी परिकरजन का जीवन भी बड़ा विरक्तिपूर्ण था। बाह्य-परिवेश की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता था। आलस्य का नाम नहीं। सभी भजन साधन में लगे रहते। श्रीकृष्ण स्फूर्ति से भरे हुए वहाँ के वातावरण में पूज्यश्री का सत्संग अद्‌भुत रस की वर्षा करता। उनकी वाणी पात्रापात्र का भेद किए बिना सभी के हृदय को समान रूप से स्पर्श करती। पूज्य चरण स्वयं जिस स्वरूप के आस्वादन में निमग्न रहते थे, निकटस्थ परिजन को भी अनायास उस चिन्मय भूमिका में प्रतिष्ठित कर देते। श्रीमहाराजजी का परिकर अपने आप में निराला ही था, जागतिक प्रचार-प्रसार वैभव से दूर, धामीय रस के समास्वादन मे चूर अलमस्त परिकर। पूज्य श्रीमहाराजजी व उनके परिकरजनों की रहनी को देखकर श्रीचैतन्य महाप्रभु व उनके परिकर मण्डल की जीवन शैली का स्मरण हो आता है। श्रीकृष्ण मिलन व्याकुलता व **नाम... नाम... नाम...**।

पूज्य महाराजश्री की दृष्टि में प्राकृत प्रपंच था ही नहीं। वे कहते- 'एकमात्र अखण्ड रसमय व्यापक प्रेम साम्राज्य की ही सत्ता है। हमारा श्रीकृष्ण से एक पल के लिए भी विछोह नहीं है। हम अभी भी उनके

निकट ही हैं। उन्होंने अर्धक्षण के लिए केवल बीच में एक लुकाछिपी का कौतुक किया है तथा पास में ही छिपे हैं। इस मध्यकालिक अर्धक्षण में भी हम श्रीकृष्ण के निकट ही हैं किन्तु उनकी निकटता में रहने वाले अपने पूर्वीय निज मूल सखी स्वरूप की हमें विस्मृति हो गई है। हाँ! वस्तु का पूर्णानुभव निज मूल अवस्था में होकर ही हो सकता है। **बिना अवस्था में आए हम नहीं कर सकेंगे किञ्चित भी झलक का अनुभव।'**

उस मूल स्वरूप का स्मरण कैसे हो ? इस प्रश्न के उत्तर में पूज्यश्री कहते।

'अपने स्वरूप की हम जबतक प्रतीक्षा करते रहेंगे तबतक न हमें स्वरूप की प्राप्ति होगी न भगवान की ही। भजन करते-करते मुझे ऐसा स्वरूप प्राप्त हो जाएगा तब मै उनका दर्शन करूँगा ऐसा विचार अपने स्वतः सिद्धस्वरूप को साथ-साथ भगवद निकट स्थिति को अत्यन्त दूर करा देता है। अपना स्वरूप न भविष्य में प्राप्त होने वाला न भविष्य के ये श्रीकृष्ण।'

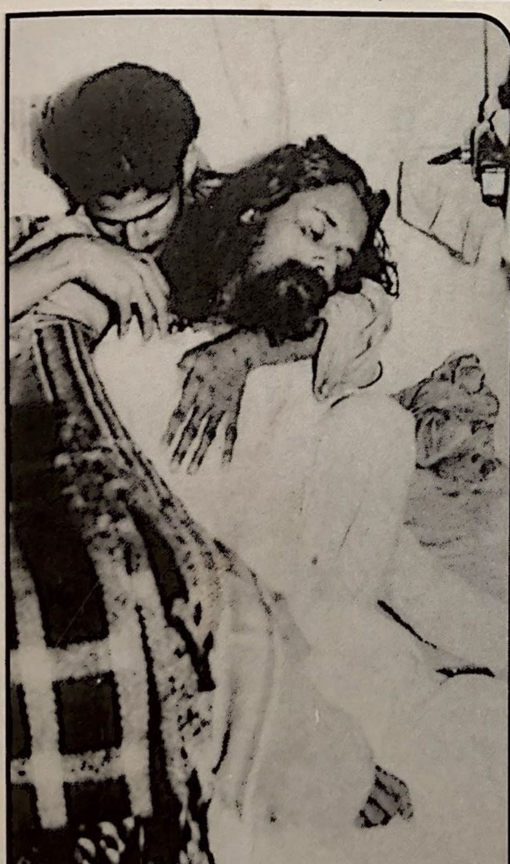
'हमारा स्वतःसिद्ध रसिक स्वरूप पूर्व से ही तैयार है। हमारा प्रतिक्षण 'साध्य-समागम' से युक्त है। आवश्यकता है अपने विमल स्वरूप के स्मरण होने की। श्रीकृष्ण स्मरणाधीन हैं। प्रगाढ़ स्मरण की दशा में उनका प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है।'

अनुगतजनों के प्रति पूज्यश्री का यही संकेत था। वे नाम स्मरण के साथ-साथ मानसिक सेवा व लीला-चिन्तन पर जोर देते थे।

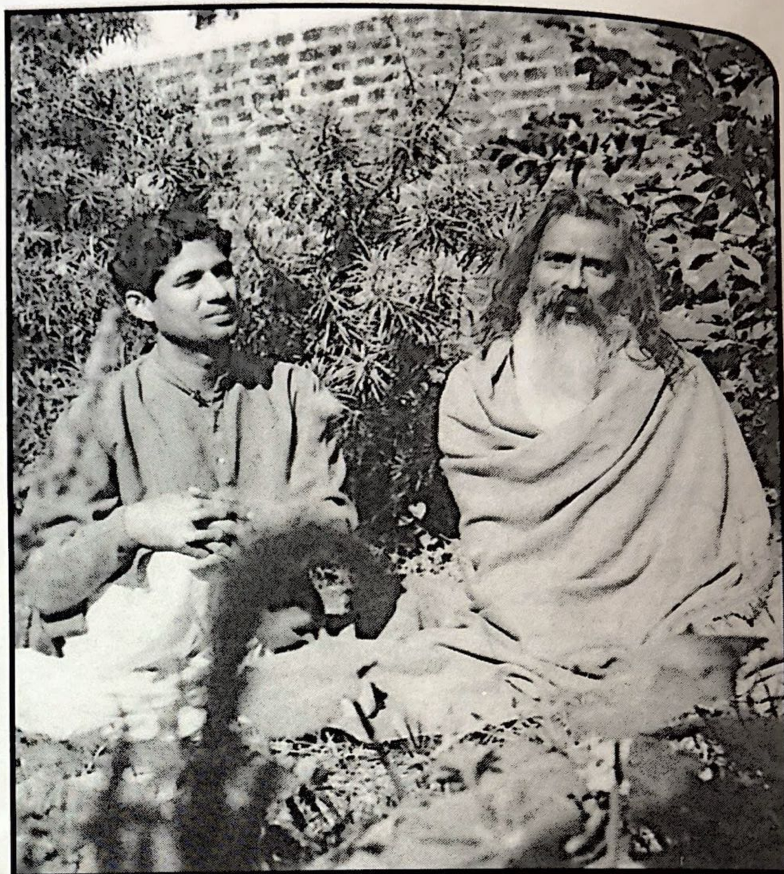
पूज्य महाराजजी के पास रहकर श्रीठाकुरजी ने अनेक ग्रन्थों का अनुशीलन किया। भक्त चरित्र श्रवन-पठन में इनकी विशेष रुचि थी।

भावावेश की स्थिति में
पूज्य महाराजजी को
संभालते हुये श्रीठाकुरजी





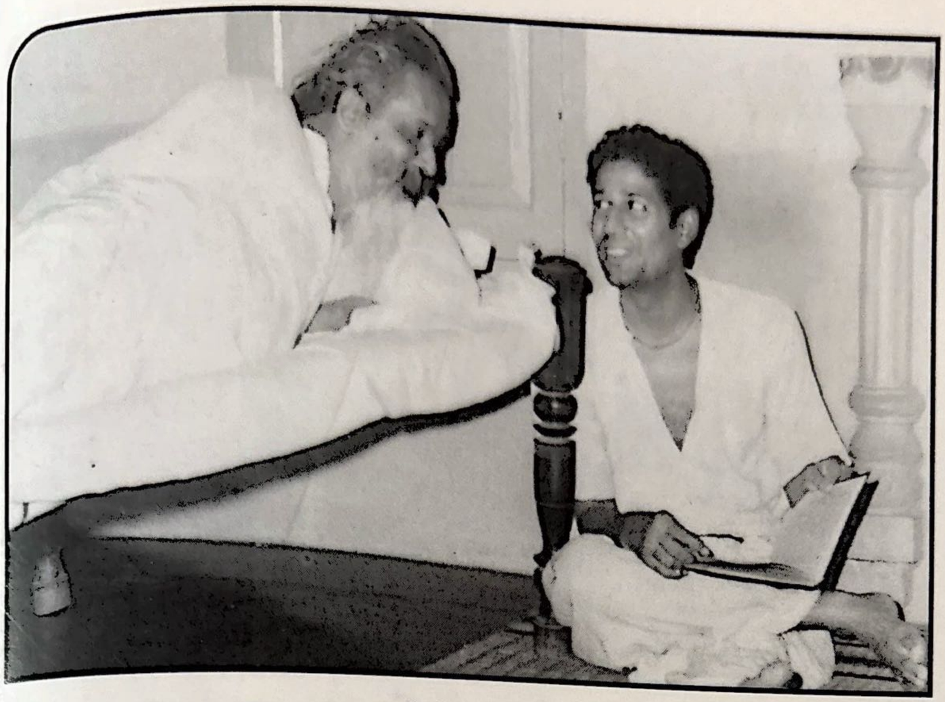
भावावेश की स्थिति में
पूज्य महाराजजी को
संभालते हुये श्रीठाकुरजी



पूज्य महाराजजी
के साथ



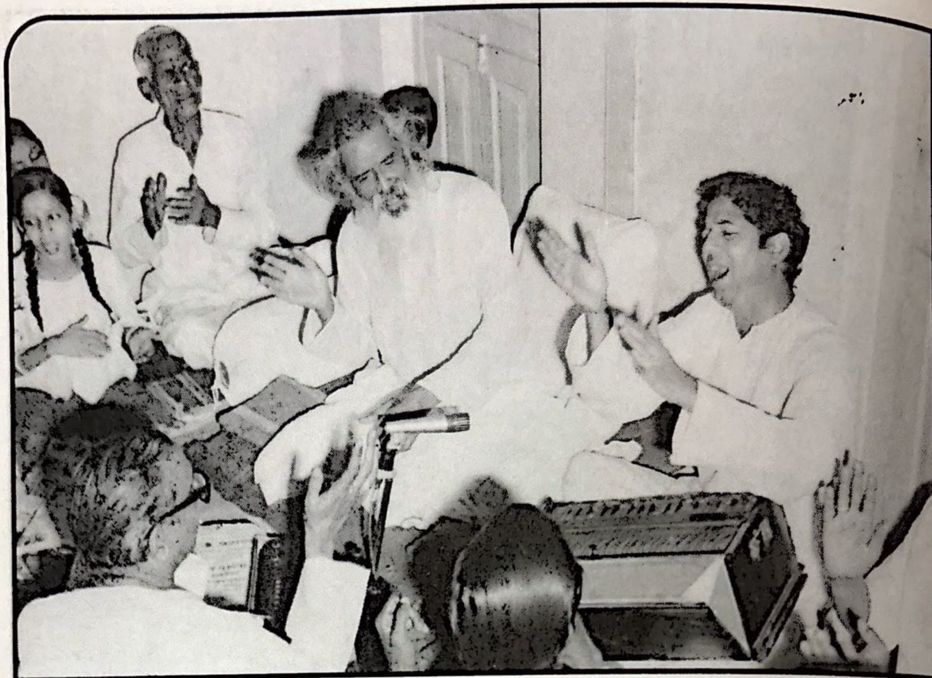
सारंगी बजाते हुए
श्रीठाकुरजी



पूज्य महाराजश्री से चर्चारत श्रीठाकुरजी



एक भक्त की बाड़ी में पूज्य महाराजजी के साथ



संकीर्तन रस में उन्मत्त पूज्य महाराजजी व श्रीठाकुरजी



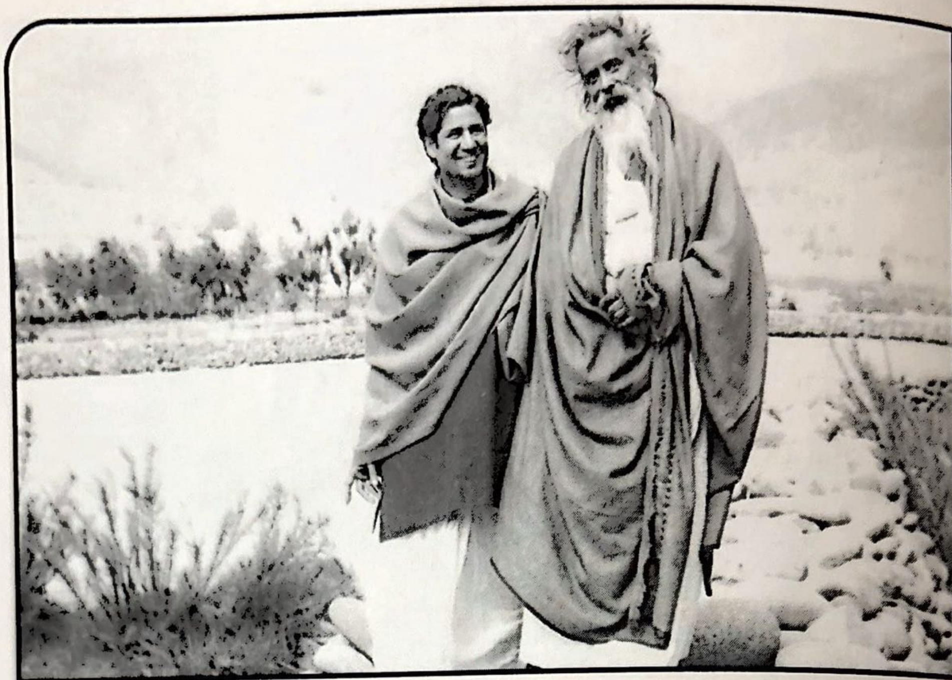
संकीर्तन करते हुए श्रीठाकुरजी



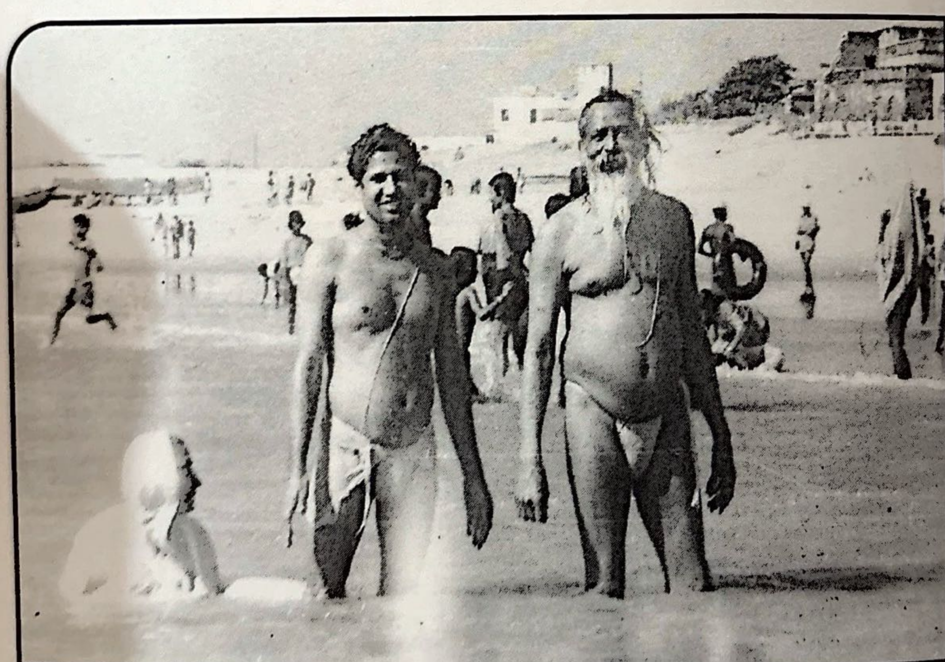
महाराजजी की सेवा
में रत



महाराजजी के चरणों में
श्रीठाकुरजी



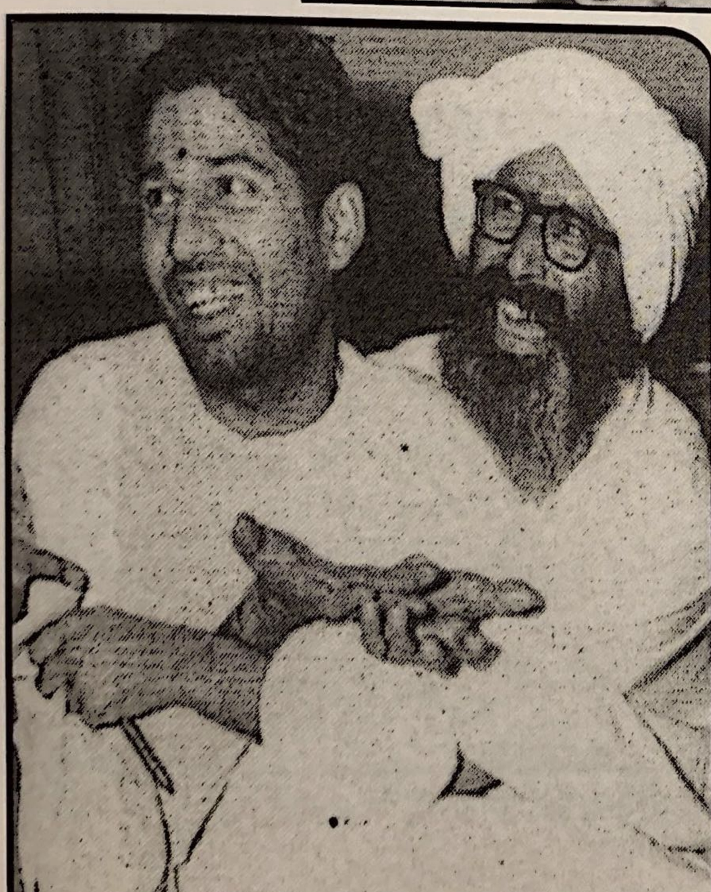
कश्मीर में पूज्य महाराजजी के साथ



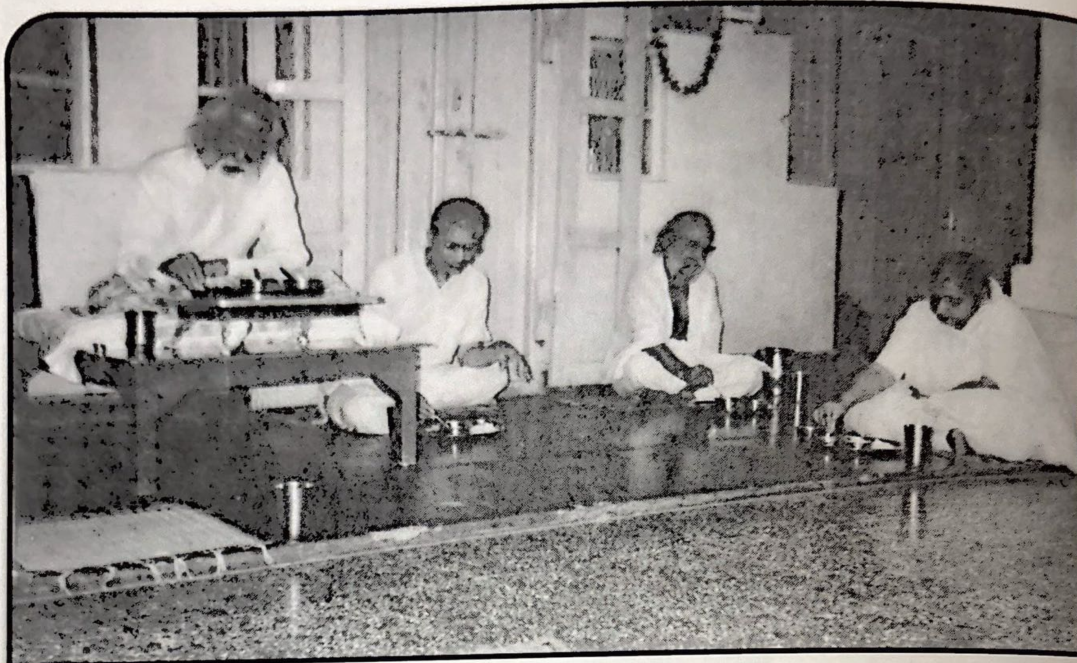
समुद्र स्नान करते हुए

pूज्य महाराजजी
एवं
देवीजी के साथ





श्रीमनोहरबाबा
के साथ



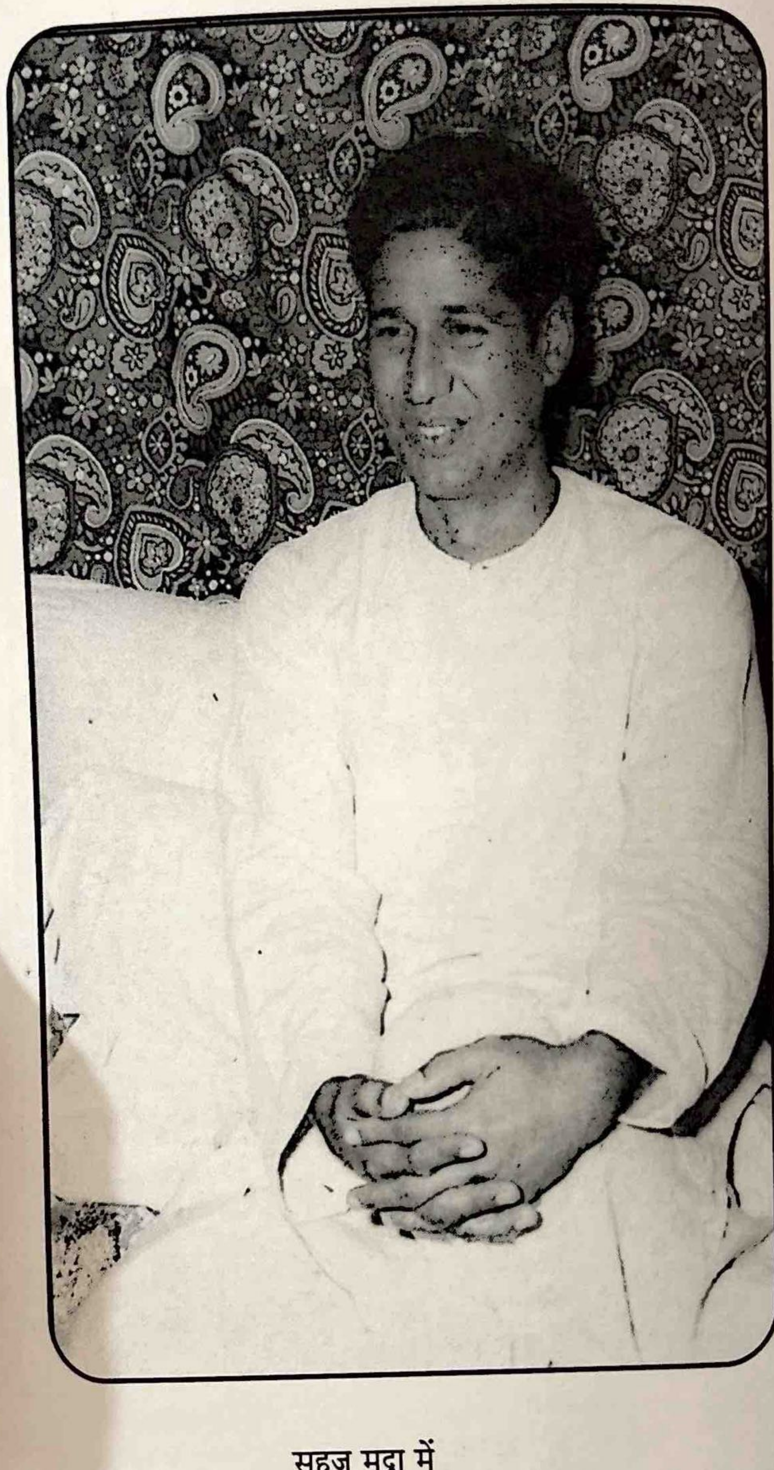
वेणु विनोद कुञ्ज में पूज्य श्रीमहाराज जी
एवं परिकर के साथ प्रसाद पाते हुए ठाकुरजी



पूज्य महाराजश्री के जन्मोत्सव के अवसर पर



सौम्यमूर्ति श्रीठाकुरजी



सहज मुद्रा में

जिन-जिन ग्रन्थों से उन्हें विशेष प्रेरणा मिली उनमें श्री चैतन्य चरितावली (रचयिता-श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी), श्रीश्रीचैतन्य चरितामृत (रचयिता-श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी), श्रीविष्णुप्रियाजी का चरित्र, श्रीलक्ष्मीप्रियाजी का चरित्र, गंभीरा में गौराङ्ग, नीलाचल में ब्रजमाधुरी, बड़े बाबा श्रीराधारमण चरणदासजी महाराज का जीवन चरित 'चरितसुधा', स्वामी श्रीरामकृष्ण परमहंसजी का जीवन चरित्र, गीताप्रेस गोरखपुर से निकलने वाले अनेक भागों में प्रकाशित भक्तों के जीवन चरित्र, श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती, श्रीरूप-सनातन, श्रीनरोत्तम ठाकुर के जीवन चरित्र, श्रीजगद्बन्धुजी का जीवन चरित्र एवं अमिय निमाई आदि ग्रन्थ प्रमुख हैं।

श्रीठाकुरजी को अनेक रसग्रन्थों के अनुशीलन का भी अवसर प्राप्त हुआ जिनमें श्रीरसिक चन्द्रिका (कालाचाँद गीता), श्रीकृष्णकर्णामृतम्, श्रीवृन्दावन महिमामृतम्, श्रीगीतगोविन्दम्, श्रीविद्यापतिजी पदावली आदि ग्रन्थ प्रमुख हैं। ब्रज के रसिक सन्तों द्वारा रचित वाणी साहित्य तो श्रीठाकुरजी की अपनी ही वस्तु थी।

सन् १९६३ में '**श्री वेणुविनोद कुञ्ज**' का निर्माण हुआ। महाराजश्री अपने पूर्व निवास 'गोपाल मन्दिर' को छोड़कर सपरिकर यहाँ रहने लगे। जिसमें पूज्य श्रीमहाराजजी के पावन कक्ष के आलावा साधकों की कुटियाएँ भी हैं। निर्माण कार्य में श्रीठाकुरजी, श्रीमनोहरबाबा, श्रीदेवीजी, श्रीकुसुमजी आदि ने श्रमदान किया। भक्तों के अर्जित शुद्धधन से इस कुञ्ज का निर्माण हुआ। श्रीठाकुरजी ने अपनी परिकल्पना के आधार पर पूज्यश्री के कक्ष को बनवाया। वे स्वयं अपनी कुटिया 'श्री राधा केलि कुञ्ज' में ही रहते रहे।

भजनक्रिया में श्रीठाकुरजी को अनेक विक्षेपों का भी सामना करना पड़ा किन्तु पूज्य गुरुदेव की असीम अनुकम्पा से इनकी भजननिष्ठा परिपक्व होती चली गई। कभी गुरुनिष्ठा की तो कभी धामनिष्ठा की परीक्षा तो कभी चरित्रनिष्ठा की परीक्षा होती रही पर इन्होंने साधना मार्ग की घाटियों को श्रीगुरुसेवा के प्रताप से सहज पार कर लिया। वृन्दावन के अनेक सम्भ्रान्तजन श्रीठाकुरजी का सम्मान करते थे। अनेक धनपति इनकी निकटता के लिए लालायित रहते किन्तु श्रीठाकुरजी केवल भगवद्सम्बन्ध को लेकर ही उनसे व्यवहार रखते, वह भी बहुत ही सीमित।

एकबार एक धामनिष्ठ भक्त हृदय धनाढ़्य महानुभाव ने श्रीठाकुरजी से एक साधक की ओर संकेत करते हुए कहा कि देखिए आपके श्रीमहाराजजी के सत्संग में आने वाले इन महात्मा में अब कितना विलक्षण परिवर्तन आ गया है। इनका वैराग्य गजब का है। अब ये स्वतंत्र रूप से अनेक लोगों को अध्यात्म पथ में लगा रहे हैं; किन्तु आप विरक्त होकर भी लाँगदार धोती और कुर्ता पहनते हैं। क्या आपके महाराजजी इसके लिए आपसे कुछ कहते नहीं? आप भी विरक्त वेष धारणकर स्वतंत्र रहकर भजन करें।

श्रीठाकुरजी ने उन महानुभाव की बात सुनी और बड़ी विनम्रता पूर्वक कहा–'मैं उनके पास कोई भजन के लिए थोड़े रह रहा हूँ। उनके पास बड़े–बड़े लोग आते हैं। वहाँ पड़ा रहता हूँ तो वो लोगों के द्वारा मुझे कुछ न कुछ दिलवा दिया करते हैं जिससे मेरी आजीविका चल जाती है। मुझे यहाँ लोग 'ठाकुरजी' कहकर सम्मान भी दे देते हैं अन्यथा रास के स्वरूपों को बाद में कौन पूछता है?' कुछ ही दिनों बाद उन धनाड्य

महाशय को उस तथाकथित साधक की वास्तविक स्थिति का पता चला जिसके विषय में उन्होंने पूर्व में श्रीठाकुरजी से कहा था। अब तो उन्होंने श्रीठाकुरजी से मिलकर क्षमा प्रार्थना करते हुए कहा कि मेरी बात से आपके हृदय में ठेस पहुँची होगी। आप ठीक मार्ग पर हैं मैं ही भ्रमित हो गया था।

एकदिन श्रीठाकुरजी की कुटिया में चोरी हो गई, चोर खिड़की तोड़कर अंदर घुसे तथा धन के रूप में रखे मात्र दस रूपयों को चुरा ले गए। इसके अलावा अभी उपयोग में न लाए गए एकदम नए रजाई-गद्दे को उठा ले गए। श्रीठाकुरजी के पास एक सिराहना (मोटा तकिया) था जिसमें पूज्य श्रीराधाबाबा के कई जोड़ी खड़ाऊँ, कुछ प्रसादी वस्त्र थे जिससे यह बहुत भारी हो गया था। चोर उसे भी कीमती वस्तु समझकर उठा ले गए। ठाकुरजी को बाबा के खड़ाऊँ आदि चले जाने से बहुत दुख हुआ। कुछ दिनों बाद एक व्यक्ति के माध्यम से ठाकुरजी के पास चोरों ने यह खबर भेजी कि उनके खड़ाऊँ पास में पड़े हैं उसे उठा लें। श्रीठाकुरजी ने बड़ी प्रसन्नता से अपनी उन बहुमूल्य वस्तुओं को सँभाला। बाद में भी उनकी कुटिया में दो-तीन बार चोरी हुई। श्रीमहाराजजी ने यह सोचकर कि चोर कहीं श्रीठाकुरजी पर आघात न कर दें, उन्हें अपने पास श्रीवेणुविनोद कुञ्ज में बुला लिया और स्थायी रूप से यहीं रहने का आदेश दिया। इसप्रकार लगभग सात वर्ष अपनी कुटिया में कठोर साधन-भजन के बाद श्रीठाकुरजी पूज्य श्रीचरणों के निकट आकर रहने लगे।

श्रीठाकुरजी के साधक जीवन को निखारने के उद्देश्य से पूज्य श्रीमहाराजजी कभी-कभी उन्हें अपने साथ ले जाते। एकबार पूज्य

श्रीमहाराजजी उन्हें अपने साथ श्रीगिरिराजजी की परिक्रमा करने गोवर्धन ले गए और लगातार दो परिक्रमा की। श्रीठाकुरजी को दूसरी परिक्रमा करते समय बुखार आ गया, तब पूज्यश्री महाराजजी ने जतीपुरा के पास एक वैद्य से बुखार की दवा दिलवा दी परन्तु परिक्रमा पूरी करके ही लौटे। अत्यधिक श्रम एवं तीव्र ज्वर हो जाने के कारण श्रीठाकुरजी को बड़ा कष्ट हुआ किन्तु पूज्य श्री के प्रति श्रद्धा भाव में किसी प्रकार की कमी नहीं आई। जैसा श्रीमहाराजजी आज्ञा देते उसे बिना किसी तर्क के यथावत् पालन करते जाते। उनका समर्पण भाव उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया।

एकबार पूज्य महाराजजी को पूज्य श्रीहरिबाबा महाराजजी के दर्शन करने की इच्छा हुई। पता चला कि वे दिल्ली में पूज्या आनन्दमयी माँ के नवनिर्मित मन्दिर के उद्घाटन में सम्मिलित होने गए हुये हैं। बिना किसी पूर्व योजना के पूज्य महाराजजी, श्रीठाकुरजी को लेकर दिल्ली चल पड़े। आश्रम का पता ज्ञात न होने से दिनभर इधर-उधर ढूँढते हुए काफी थक गये थे। रात्रि भी हो चुकी थी। श्रीठाकुरजी, पूज्य महाराजजी को विश्राम हेतु दिल्ली के बिड़ला मन्दिर में ले गये। बिड़ला मन्दिर के मैनेजर श्रीठाकुरजी के पूर्व परिचित थे। वहीं पर माँ आनन्दमयी के निवनिर्मित मन्दिर 'चन्द्रलोक' के उद्घाटन सम्बन्धी सूचना का बोर्ड दिखाई दिया जिसमें पूज्या आनन्दमयी माँ के आश्रम का पता लिखा था। पता ज्ञात होते ही श्रीमहाराजजी तुरन्त बिना विश्राम किए चल पड़े। गन्तव्य स्थान पर पहुँचे तो देखा कि पूज्य हरिबाबा प्रवचन कर रहे हैं। उनको देखकर श्रीमहाराजजी बोले-'इनके तेजपुञ्ज मुख को तो देखो! हमारी सारी थकावट इनके दर्शन मात्र से दूर हो गई।'

सत्संग के पश्चात् जब दोनों महापुरुषों का परस्पर मिलन हुआ। दोनों ही संत लगभग पाँच मिनट तक एकदूसरे का हाथ पकड़े हुए खड़े रहे। श्रीठाकुरजी इन दोनों के मध्य उनके मिले हुए हाथों को अपने हाथ में लेकर आत्मविस्मृत से हो गए। पुनः जब सचेत हुए और दोनों संतो को भावगम्भीर दशा में देखा तो उन्हें सामान्य अवस्था में लाने के उद्देश्य से श्रीठाकुरजी ने दोनों संतों के चरण स्पर्श किए। इससे दोनों महापुरुषों का भाव कुछ शमित हुआ और सहज होने पर पूज्य हरिबाबा इतना ही बोले–'श्री महाराजजी तो मूर्तिमान रस रूप हैं। इनमें इतनी सरलता है। इनके लिए मैं कह ही क्या सकता हूँ। वृन्दावन से यहाँ मुझसे मिलने आए। मैं तो वृन्दावन आ ही रहा था।'

दूसरे दिन पूज्य महाराजजी व श्रीठाकुरजी ने दिल्ली के कई स्थानों में भ्रमण किया। श्रीठाकुरजी के पास के सब पैसे खर्च हो गये। देर भी काफी हो चुकी थी और भूख भी लग आई थी। श्रीठाकुरजी ने पूज्य श्रीमहाराजजी से कहा कि किराए के लिए पैसे तो बचे ही नहीं हैं अब क्या होगा, वृन्दावन कैसे पहुँचेंगे? पूज्य महाराजजी इनकी बात सुनकर मुस्कराए और कहा–'श्रीकृष्ण पर विश्वास रखिए वे ही कोई व्यवस्था करेंगे।' उनका इतना कहना ही था कि उसी समय एक सज्जन पूज्य महाराजजी के पास आए उन्होंने पूर्व में श्रीमहाराजजी को वृन्दावन में देखा था। वे बोले–'महाराजजी आप यहाँ कैसे? आप यहाँ आए हैं तो कृपा करके पास में ही मेरी दुकान में पधारें।' ये दोनों लोग उनके साथ चल दिए। अपनी दुकान ले जाकर उन सज्जन ने बड़े ही आदरपूर्वक स्वल्पाहार कराया। बाद में टिकट खरीदकर उन्हें वृन्दावन की बस में बैठा दिया। एकदम सहजरूप से घटित हुई इस योगक्षेम की घटना को

देखकर श्रीठाकुरजी को बड़ा आश्चर्य हुआ।

पूज्य श्रीमहाराजजी को कभी कोई असुविधा न हो, इस बात का श्रीठाकुरजी सदैव ध्यान रखते थे। एकबार किसी रेलवे स्टेशन पर श्रीमहाराजजी ट्रेन के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। गाड़ी आने में कई घण्टों का विलम्ब था। प्लेटफार्म में विश्राम हेतु कोई उपयुक्त स्थान नहीं दिखाई दे रहा था। महाराजजी को विश्राम कराना था- क्या करें, श्रीठाकुरजी इसी उहापोह में पड़े थे। पास में बिछाने के हेतु कोई चादर भी न थी।जब श्रीमहाराजजी प्लेटफार्म में जमीन पर ही बैठने लगे तब श्रीठाकुरजी ने झट से अपनी धोती की फेंट खोलकर भूमि पर बिछा दी। आधी फेंट उनके कमर पर बंधी रही और आधी पर पूज्यश्री महाराजजी को लिटा दिया। पूज्य महाराजश्री इनकी इस सेवा से बहुत संतुष्ट हुए।

भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में पूज्य महाराजजी प्रायः अपने भक्तों के यहाँ जाया करते थे। भ्रमण के दौरान कभी-कभी गाँवों में मीलों पैदल चलना पड़ता था। सामान के नाम पर मात्र एक झोला रहता था। भोजन व ठहरने की व्यवस्था समुचित नहीं रहती थी। कभी-कभी निराहार भी रहना पड़ता था। कभी किसी के घर की टूटी छत के नीचे ही सोना पड़ता था तो कभी खपरैल के नीचे। एकबार तो एक भक्त के घर में जगह न होने से खपरैल के ऊपर ही सोना पड़ा था। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि घर में जगह का अभाव है, केवल एक पलंग पड़ने भर की जगह है। तब श्रीठाकुरजी पूज्य महाराजजी के पलंग के नीचे ही सो जाते थे। इस प्रकार अनुकूल-प्रतिकूल सभी परिस्थितियों में समभाव से रहने का अभ्यास श्रीठाकुरजी को हो गया था।

जहाँ भी जाते वहाँ पूज्य श्रीमहाराजजी का धाराप्रवाह गम्भीर सत्संग

एवं कीर्तन होता। पूज्य महाराजजी ने गाँव-गाँव में संकीर्तन की धारा बहाई। सन् १९६० से श्रीठाकुरजी भी उनके साथ गाँव-गाँव जाने लगे थे। कीर्तन में श्रीठाकुरजी की मुख्य भूमिका होती थी। खरगौन, भोपाल, इन्दौर, बड़वानी आदि स्थानों में समय-समय पर साप्ताहिक, चतुर्मासीय, अष्टमासीय संकीर्तन के आयोजन भी हुए। विभिन्न रागों में मधुर कण्ठ से पूज्य महाराजश्री व ठाकुरजी की जोड़ी के द्वारा संकीर्तन सुनकर भक्तसमुदाय झूम उठता।

श्रीठाकुरजी, पूज्यश्री के मनोभावों को पढ़कर तत्काल यथोचित सेवा कर देते। इनके अद्भुत सेवाकौशल को देखकर सभी भक्त चकित रह जाते। महाराजश्री कहीं भी अकेले न जाए साथ में श्रीठाकुरजी को ले जाए, यह उन सबका आग्रह रहता, क्योंकि ठाकुरजी के रहने से सभी महाराजश्री के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में निश्चिन्त हो जाते थे।

पहले पूज्य महाराजश्री भावावेश की स्थिति में किसी को बिना कुछ बताए अज्ञातवास में चले जाया करते थे। पुनः लौटने पर उनका स्वास्थ काफी गिर जाता था, क्योंकि महाराजश्री का ध्यान अपनी सुविधा की ओर नहीं जाता था और देहभान भी प्रायः नहीं रहता था। प्रकृतिस्थ होने पर भी खान-पान के प्रति वे उदासीन रहा करते थे। इसीलिए अब श्रीठाकुरजी महाराजश्री के संग निरन्तर छाया की भाँति रहने लगे।

श्रीठाकुरजी ने पूज्यश्री महाराजजी के साथ सन् १९५५ में रामेश्वरम्, १९६८ में कश्मीर इसके आलावा समय-समय पर श्रीश्रीजगन्नाथ धाम, श्रीतिरुपति बालाजी, श्रीकाशी विश्वनाथजी, श्रीतीर्थराजप्रयाग, श्रीडाकौरजी व श्रीनर्मदा तीरस्थ अनेक स्थानों की यात्राएँ कीं। पूज्य श्रीचरणों का संस्पर्श एवं उनकी दिव्य सन्निधि की

मस्ती में ये दिवारात्रि का भान भूलकर सतत् सेवा में सचेष्ट रहते थे।

भजन भेद न्यारो 'परमानन्द' जानत बिरलो कोई।।

भजन का बाह्य स्वरूप कैसा भी हो, हृदय ने किसे अपना मान रखा है यही महत्व की वस्तु है। श्रीठाकुरजी का मन पूज्य श्रीमहाराजजी के भौतिक कलेवर की रक्षा एवं उसकी सुख-सुविधा की चिन्ता में तन्मय रहता था। पूज्य महाराजजी के कहने से पहले ही उनकी इच्छा को कृति में लाना, बिना आलस्य आठों प्रहर तत्परतापूर्वक उनकी सेवा करना श्री ठाकुर जी का स्वभाव बन गया। पूज्य महाराज जी के छायावत् संग से उनकी अध्यात्मिक सम्पत्ति श्रीठाकुरजी के हृदय में प्रकाशित होने लगी।

अपने संकोची स्वभाव के कारण श्रीठाकुरजी ने अपनी तरफ से कभी भी श्रीमहाराजजी से कोई प्रश्न नहीं किए। पूज्य महाराजश्री की निकटता में एक तो कोई प्रश्न उठता ही नहीं था, यदि कभी उठता भी तो उसका स्वतः समाधान हो जाता था। गुरुसेवा के प्रभाव से उनके साधना अभिनिवेशमय जीवन की परिणति उत्तरोत्तर भगवद् रति की अभिवृद्धि के रूप में होती गई।

मन में अपनी कोई पृथक इच्छा थी नहीं। श्रीमहाराजजी की निकटता के प्रभाव से बिना प्रयास ही श्रीकृष्ण-लीलाओं की स्फूर्ति होने लगी। अनेक बार ऐसा होता कि श्रीमहाराजजी का कोई अनुभूत लीला प्रसंग श्रीठाकुरजी को स्फुरित हो जाता। श्रीठाकुरजी के संशयों का निवारण बिना पूछे ही महाराजश्री तुरन्त बोलकर अथवा मन ही मन विचार संप्रेषण द्वारा कर देते।

एकबार श्रीठाकुरजी को तेज ज्वर था। इस स्थिति में पूज्य श्रीमहाराजजी ने श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी का नख से शिख तक बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया जिसे सुनकर ठाकुरजी को बहुत सुख प्राप्त हुआ और ज्वर जाता रहा। माधुर्य रस से कभी तृप्त न होने वाले इनके व्याकुल विरही प्राणों की व्यथा पूज्य श्रीमहाराजजी के शीतल दृष्टिपात से शमित हो जाती। उनके अंतर से निरंतर यही प्रार्थना निकला करती-

'हे अकथनीय! हे अवर्णनीय! हे हृदयाहृदय! हे सुन्दर! आपकी परम रसमयि सुधाधारा में निमज्जित प्लावित रहूँ -प्रतिक्षण बस, यही अभिलाषा है।' पूज्यश्री इनकी कोमल भावनाओं का स्पर्श प्राप्तकर विगलित हो उठते और अपने कोमल स्पर्श, शीतल दृष्टिपात तथा अपार वात्सल्य से श्रीठाकुरजी को नहला देते।

अब श्रीठाकुरजी का मन श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी के अवलोकन में अखण्ड रूप से तल्लीन रहने लगा। नवीन-नवीन लीलाओं की स्फूर्ति से हृदयकमल प्रफुल्लित रहता। इनके श्रीमुख पर मन्द मुस्कराहट बनी रहने लगी।

वेणुविनोद कुञ्ज में रहते समय श्रीठाकुरजी की दिनचर्या कुछ इस तरह की थी। श्रीठाकुरजी नित्यप्रति ब्रह्ममुहूर्त में चार बजे उठ जाते थे। महाराजश्री अपने पलंग पर बैठे मिलते। उन्हें प्रणाम करके ऋतु के अनुसार ठण्डा सा गर्म जलपीने को देते थे। तत्पश्चात् उनके शौच स्नानादि की व्यवस्था करते। जब पूज्य महाराजजी स्नान करके अपने पलंग पर विराज जाते तब श्रीठाकुरजी प्रात:कालीन क्रियाओं से निवृत होकर अपने छोटे से कोठरीनुमा साधना कक्ष में नित्यपाठ एवं लीला स्मरण के लिए बैठ जाते। आसन में बैठकर संक्षिप्त रूप में अपनी

चित्रपट सेवा करके संतो द्वारा प्रदत्त प्रसादी वस्त्र को अपने मस्तक से लगाते, पूज्य श्री का चरणोदक ग्रहण करते पश्चात वे पूज्य महाराजश्री के कक्ष में आ जाते।

प्रातः लगभग साढ़े छः बजे श्रीवेणुविनोदबिहारीजी की आरती में वे पूज्य श्रीमहाराजजी के साथ सम्मिलित होते। आरती के पश्चात् सभी लोग महाराजश्री को प्रणाम करते। तत्पश्चात् सामूहिक स्वल्पाहार होता। लगभग नौ बजे पूज्य महाराजजी के साथ टहलने चले जाते। कभी यमुनाजी की ओर, कभी रंगजी की बगीची तो कभी राधाबाग व बिहारीजी की बगीची आदि स्थलियों की ओर लगभग एक घंटे टहलकर वापस आते। इस प्रकार साढ़े दस बजे तक वापस आकर महाराजजी अपने पावन कक्ष में विराजते थे। सभी परिकर महाराजजी के समक्ष उस समय कुछ देर बैठते थे। इसके बाद महाराजजी अपना कक्ष बन्द कर लेते। इसी बीच श्रीठाकुरजी अपने नाम जप आदि शेष नियमों को पूरा कर लिया करते थे। बारह बजे सभी परिकर पूज्य महाराजजी के साथ प्रसाद ग्रहण करते थे। दोपहर के विश्राम के बाद सायं चार बजे पूज्य महाराजश्री चाय ग्रहण करते थे। उसके बाद महाराजश्री कुछ भगवद् चर्चा करते। सभी परिकर शान्तभाव से बैठे रहते थे। इस समय आगन्तुकजन भी पूज्य महाराजजी के दर्शनों के लिए आते थे। पूज्य महाराजजी को जो भी बात कहनी होती थी, उसे वह सत्संग के माध्यम से ही कहते थे। यह गोष्ठी लगभग छः बजे तक चलती थी।

प्रत्येक एकादशी को दो घंटे नाम संकीर्तन भी होता था। इस अवसर पर पूज्य महाराजजी अपने आसन पर विराजते और पास में बैठे हुए

श्रीठाकुरजी को पदगान के लिए प्रेरित करते। पूज्य महाराजजी के भावनानुकूल पद का गायन श्रीठाकुरजी द्वारा प्रारंभ किया जाता। एक के बाद एक रसीले पदों की झड़ी लग जाती। विभिन्न राग रागिनियों में गाए श्रीठाकुरजी के भावपूर्ण पदगान एवं श्रीहरिनाम संकीर्तन को सुनकर पूज्य महाराजश्री से भी रहा नहीं जाता और वे भी अपनी दक्षिणात्य शैली में वीणा विनिन्दित स्वरों की झंकार बिखेरते हुए श्रीकृष्ण रूप-लीला सम्बन्धी पदावलियों व श्लोकों का गायन करने लगते। वातावरण सात्विक परमाणुओं से भर उठता। उपस्थित भक्तों की आँखें अश्रुओं से भीग जातीं। रस की खूब लूट मचती। सभी को एक अलौकिक सुख का अनुभव होता। 'मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद' यह भगवद् वाणी मानों मूर्त हो जाती। सन्ध्याकाल लगभग साढ़े छः बजे श्रीवेणुविनोदबिहारीजी की आरती होती थी। उसके बाद सभी लोग पूज्य महाराजजी के साथ श्रीबाँकेबिहारीजी के दर्शनार्थ जाते। रात्रि साढ़े आठ बजे व्यारू ग्रहण करके दस बजे के बाद पूज्य महाराजश्री विश्राम के लिए कक्ष में चले जाते। श्रीठाकुरजी उनकी चरण सेवा करते। तदोपरान्त निकट ही भूमि पर चटाई बिछाकर सो जाते थे।

वेणु विनोद कुँज में पूज्यश्री की उपस्थिति से नित्य उत्सव का सा वातावरण छाया रहता। एकबार पूज्यमहाराजजी व श्रीठाकुरजी किसी लीलानुभूति में तीन दिन तक बहुत हँसे। रहरहकर ठहाके लगते रहे। जब से श्रीवेणुविनोदकुञ्ज में श्रीवेणु विनोद बिहारीजी के श्रीविग्रह की प्रतिष्ठा हुई तब से कुञ्ज में उत्सवों का विस्तार होने लगा। वर्ष के प्रधान-प्रधान उत्सव यथा- बसंत पंचमी, होली, गुरुपूर्णिमा,

जन्माष्टमी, दीपावली आदि एक-एककर इस श्रृंखला में जुड़ते चले गए। 'मोक्षदा एकादशी' श्रीगीता जयन्ती के दिन श्रीमहाराजजी का आविर्भाव हुआ था। यह दिन श्रीमहाराजजी के प्राकट्योत्सव के रूप में बड़े ही उत्साह से मनाया जाने लगा।

संकीर्तन रस वृष्टि

श्रीधाम वृन्दावन से बाहर विभिन्न स्थानों में श्रीमहाराजजी का जाना होता था। श्रीमहाराजजी प्रत्येक स्थान में संकीर्तन का आयोजन रखते। श्रीमहाराजजी की उपस्थिति में इस संकीर्तन रस का परिवेषण श्रीठाकुरजी के द्वारा होता। विशुद्ध शास्त्रीय रागों पर आधारित उनके भावपूर्ण नाम संकीर्तन को सुनकर कीर्तन प्रेमी भक्तों का चित्त विगलित हो जाता। संकीर्तन के महानन्द में विभोर पूज्य श्रीमहाराजजी व श्रीठाकुरजी की झूमती हुई युगल जोड़ी का दर्शनकर भक्तगण मुग्ध हो जाते। इनके चुम्बकीय व्यक्तित्व का ऐसा प्रभाव था कि जिन्होंने भी एकबार दर्शन किया है वे हमेशा के लिए उनके हो गए। प्रायः निम्न पदों व कीर्तनों की धूम मचती:-

- **राधिकारमण अम्बुजनयन नन्दनन्दन नाथ हे।**
  गोपिकाप्राण मन्मथमथन विश्वरञ्जन कृष्ण हे।।
- **यशोदानन्दन पीतवसन माधव मुरलीधर जय हे।**
  राधापदधर नवजलधर चंचल लोचन प्रियतम जय हे।।
- **जय गोपीजन बल्लभ जय मुकुन्द, मुख मुरली नाद आनन्दकन्द।**
  उद्भासित अद्भुत वदनचन्द्र, राधे संग राजत अति स्वच्छन्द।।

- केशवा माधवा गोपाला घनश्यामा श्यामाऽऽ
  मधुसूदनाऽमधुऽसूदना जय जय जय श्रीश्यामा।।
- अच्युतं केशवं राम नारायणं कृष्ण दामोदरं वासुदेव हरिं।
  श्रीधरं माधवं गोपिका बल्लभं जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे।।
  जानकी नायक रामचन्द्र भजे राधिका नायकंकृष्णचन्द्रं भजे।
- कृष्ण गोविन्द गोविन्द गोपाल नन्दलाल।
- जय राधा माधव जय कुञ्ज बिहारी,
  जय गोपीजन बल्लभ जय रास बिहारी।
- हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
  हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।। आदि।

११ श्रीराधानाम की निष्ठा

श्रीठाकुरजी की श्रीराधा नाम में विशेष निष्ठा थी। एकबार कार्तिक मास में इन्होंने श्रीयमुनाजी स्नान एवं परिक्रमा का नियम लिया। दोपहर के बारह बजे तक मौन का भी नियम था। उसी समय की बात है ये स्नान हेतु केशीघाट आए और उसकी एक बुर्जी पर खड़े होकर छलाँग लगाई। उस स्थान पर जल बहुत गहरा था। छलाँग लगाते ही वे जल के भीतर काफी गहराई में चले गए। घाट के निचले हिस्से में पानी के कटाव के कारण एक खोह बन गई थी। निकलते समय उसी खोह से इनका सिर जा टकराया अब ऊपर कैसे आयें। थोड़ा बहुत प्रयास किया किन्तु बाहर नहीं निकल पाए। कुछ ही क्षणों में उनका दम घुटने लगा। अन्तिम क्षण जानकर इनके भीतर से स्वतः ही श्रीराधा-श्रीराधा नाम का उच्चारण होने लगा। अभी श्रीराधा नाम का स्मरण किया ही था कि इनके हाथों में न जाने कैसे सीढ़ी का एक छोर पकड़ में आ गया। जिसके सहारे श्रीठाकुरजी झट से बाहर निकल आए। कुछ देर वहीं बेसुध से लेटे रहे। तत्पश्चात वृन्दावन की परिक्रमा के लिए निकल गए। जब वे वापस श्रीवेणुविनोदकुञ्ज आए तो इनकी मुख मुद्रा कुम्हलाई हुई देखकर लोगों ने पूछा क्या बात है स्वास्थ्य तो ठीक है? श्रीठाकुरजी ने विस्तार पूर्वक सारी घटना बताई।

संध्या के समय श्रीवेणुविनोदकुञ्ज में पूज्या संतोष बहिनजी आईं। ये सिंहपौर वाले हनुमानजी का भोग लगाकर सीधे कुञ्ज में आई थीं। लोगों ने पूछा आज किस उपलक्ष्य में भोग लगाया। तब इन्होंने

रहस्योद्घाटन करते हुए कहा कि आज मैने तन्द्रा में देखा कि श्रीठाकुरजी पर कोई संकट आया है। मैने उसी समय श्रीहनुमानजी महाराज से प्रार्थना की। कुछ ही देर में मुझे दिखाई दिया कि श्रीठाकुरजी सुरक्षित हैं तब मैंने जाकर श्री हनुमानजी का भोग लगवाया। श्री संतोष बहिन जी के मुख से यह बात सुनकर सभी को आश्चर्य हुआ।

एकबार वेणुविनोद कुञ्ज में स्नान करते समय श्रीठाकुरजी से बिजली के हीटर की रॉड छू गई। करंट का तेज झटका लगते ही उनके मुख से 'राधा' नाम का उच्चारण हुआ। निकट के कक्ष में पूज्य महाराजजी विराज रहे थे, उन्हें श्रीठाकुरजी की आवाज सुनाई दी। वे तेजी से स्नानगृह की ओर आए और बिजली का प्लग हटाकर श्रीठाकुरजी को संकट से बचाया।

यात्रा करते समय, किसी अशुभ घटना को सुनकर, किसी के साथ दुर्व्यवहार होता देखकर और किसी भी जीव को कष्ट पाता देखकर श्रीठाकुरजी के मुख से स्वतः ही श्रीराधानाम का उच्चारण होने लगता था।

एक साधु का अपराध बोध

श्रीठाकुरजी के एक परिचित साधु थे। वे श्री ठाकुरजी के सामने अपनी कोई समस्या रखना चाहते थे इस हेतु उन्होंने समय माँगा। श्रीठाकुरजी भी उनका सम्मान करते थे। आग्रह करने पर श्रीठाकुरजी उनके साथ सेवाकुञ्ज गए। वहाँ उन्होंने अपने पूर्वाश्रम के अनेक अपराधों को श्रीठाकुरजी के समक्ष रखा। उनके द्वारा साधु जीवन के पूर्व कोई भारी अपराध बन गया था। साधू हो जाने के इतने दिनों बाद भी

उनके मन से वह बात निकल नहीं पाई थी, यह घटना निरन्तर इनके हृदय में शूलवत् चुभती रहती थी। यद्यपि वर्तमान में इनका जीवन साधनामय व पवित्र था, तो भी वे उस दुर्घटना की स्मृति से उबर नहीं पा रहे थे। अन्ततः अत्यन्त दुखित होकर उन्होंने श्रीराधारानी के चरणों में प्रार्थना की। श्रीराधारानी की प्रेरणा से उन्होंने अपने सारे अपराध रोते-रोते श्रीठाकुरजी के चरणों में निवेदित कर दिए। श्रीठाकुरजी यद्यपि अवस्था में उनसे छोटे थे तथापि श्रीठाकुरजी के प्रति उनकी विशेष श्रद्धा थी। श्रीठाकुरजी ने उनकी पूरी बात शान्तभाव से सुनी। अपनी बात कह चुकने के बाद उन साधु महोदय ने कहा कि अब ऐसा लग रहा है कि मैं बहुत हल्का हो गया हूँ।

इसी प्रकार एक अन्य प्रसंग में एक सच्चे युवक साधक ने जो अनेक वर्षों से ऋषीकेश में रहकर विरक्तिपूर्ण जीवन बिता रहे थे, अपनी मानसिक उलझन को श्रीठाकुरजी के समक्ष रखा और उनके आदेशानुसार भविष्य में गृहस्थ आश्रम को स्वीकार किया।

ये प्रसंग मात्र संकेत रूप में दिए गए हैं। ऐसे ही अनेक प्रसंग हैं, जिनमें गृहस्थ साधकों, विरक्तों, साधुओं ने श्रीठाकुरजी के समक्ष अपने अपराधों एवं समस्याओं को रखा तथा उनकी प्रेरणा से बल पाकर भजन में अग्रसर हुए।

******

१२ सन्तों के मध्य सेतु रूप

पूज्य श्रीमहाराजजी को पूज्य श्रीराधाबाबा से मिलाने में श्रीठाकुरजी निमित्त बने। श्रीमहाराजजी के पास रहते समय बहुधा पूज्य श्रीभाईजी एवं श्रीराधाबाबा की उच्च भागवती स्थिति की बात चला करती थी। सन् १९६८ में एक अवसर पर जब श्रीभाईजी एवं श्रीराधाबाबा बिड़ला मन्दिर मथुरा पधारे थे तब श्रीमहाराजजी ने श्रीठाकुरजी के साथ जाकर उनके दर्शन किए थे किन्तु सम्भाषण का अवसर नहीं प्राप्त हुआ था। इसके कुछ वर्ष पश्चात् पूज्य श्रीभाईजी की पुत्री, आदरणीया सावित्रीबाई फोगला वृन्दावन के फोगला आश्रम आई थीं। उन्होंने श्रीठाकुरजी से श्रीमहाराजजी के बारे में सुन रखा था अतः दर्शनार्थ श्रीवेणुविनोदकुञ्ज भी आईं।

पूज्यश्री महाराजजी के दर्शन एवं सत्संग से वे बहुत प्रभावित हुईं। उन्हें यहाँ का वातावरण भी बड़ा सात्विक लगा। जाते समय उन्होंने श्रीमहाराजजी से गीतावाटिका गोरखपुर पधारने का आग्रह किया। पूज्य श्रीमहाराजजी ने उन्हें गोरखपुर आने का आश्वासन दे दिया। दो वर्ष बाद सन् १९७० में श्रीठाकुरजी के साथ श्रीराधाष्टमी के अवसर पर श्रीभाईजी एवं राधाबाबा से श्रीमहाराजजी की भेंट हुई। जब पूज्य महाराजजी ने पूज्य श्रीभाईजी के पावन कक्ष में प्रवेश किया तब पूज्यभाईजी अपने पलंग पर बैठे थे। पूज्य महाराजजी ने प्रणाम करने के उद्देश्य से उनके कुछ-कुछ दिखाई दे रहे एक चरण का स्पर्श किया। एक सन्त द्वारा प्रणाम करता देख पूज्य भाईजी ने अपने दूसरे पैर को

छिपा लिया और कहा कि आप सन्त हैं, आपने यह अनुचित किया। पूज्य महाराजजी ने प्रत्युत्तर में कहा कि अनुचित कैसे मैं दूसरे चरण के स्पर्श से तो वंचित ही रह गया। पूज्य श्रीभाईजी ने मधुर मुस्कान बिखेरते हुए श्रीमहाराजजी को पृथक उच्चासन पर बैठाया। श्रीभाईजी के अद्‌भुत दैन्य को देखकर श्रीमहाराजजी बहुत प्रभावित हुए। पन्द्रह मिनट बातचीत के बाद श्रीभाईजी ने आपको श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल के साथ पूज्य श्रीराधाबाबा के पास भेज दिया। श्रीमहाराजजी जब बाबा की कुटिया में पहुँचे तो वे बरामदे में बैठकर किसी व्यक्ति से चर्चा कर रहे थे। एक सेवक ने पूज्य बाबा को उनके आने की सूचना दी। पूज्य बाबा तत्परता से उठे और बोले- 'बड़ी कृपा की, बड़ी कृपा की' यह कहकर एक कम्बल श्रीमहाराजजी को बैठने के लिए बिछवाया। परस्पर दण्डवत् प्रणाम होने के पश्चात् श्रीमहाराजजी कम्बल को प्रणाम कर भूमि पर ही बैठ गए। कुछ समय तक प्रेमवार्ता होती रही तत्पश्चात् निश्चित स्थान पर श्रीमहाराजजी के ठहरने की व्यवस्था कर दी गई।

पूज्य बाबा व श्रीभाईजी से मिलने के बाद श्रीमहाराजजी ने कहा कि मुझे ऐसे उच्चकोटि के महानुभावों के दर्शनों की इच्छा थी। पूज्य महाराजजी वहाँ सात दिन रहे। सन्ध्या के समय नियमित रूप से होने वाला पूज्य श्रीभाईजी का सत्संग उनके अस्वस्थ होने के कारण कुछ दिनों से बन्द था किन्तु श्रीठाकुरजी ने जब उनसे ये कहा कि श्रीमहाराजजी तो आपके श्रीमुख से कुछ सुनने के लिए यहाँ आए हैं तब वे राजी हो गए और उन्होंने जबतक श्रीमहाराजजी वहाँ रहे, तब तक नित्य थोड़ी देर प्रवचन किया। उस समय पूज्य महाराजजी के मन में

श्रीहरिभाऊजी (एक भक्त जो श्री महाराजजी के चरणाश्रय में रह रहे थे) के निधन को लेकर एक प्रश्न था कि इतने उच्चकोटि के साधक, अचेतावस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हुए, अन्त समय में भगवद् स्मरण कैसे कर पाये होंगे? यथासमय श्रीभाईजी का सत्संग पद्मपुराण (पाताल खण्ड) के इस श्लोक से प्रारम्भ हुआ–

यदि वातादिदोषेण मद्भक्तो माम् हि विस्मरेत्।
अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम्।।

'अर्थात् मृत्युकाल में यदि वातादि दोषों के उत्पन्न होने से मेरे भक्त को मेरा विस्मरण हो जाए तो मैं स्वयं अपने भक्त का स्मरण करता हूँ और उसे परमगति प्रदान करता हूँ।'

श्रीभाईजी के प्रवचन में पूज्य श्रीमहाराजजी को अपने आन्तरिक प्रश्न का उत्तर मिल गया। बाद में श्रीमहाराजजी ने श्रीठाकुरजी से कहा कि श्रीभाईजी में गजब का अन्तर्यामित्व है, ये बहुत बड़ी सम्पत्ति को छिपाकर बैठे हैं। यही पूज्य श्रीमहाराजजी एवं पूज्य श्रीभाईजी का प्रथम व अन्तिम मिलन था। क्योंकि सन् १९७१ में पूज्य श्रीभाईजी निकुञ्जगमन कर गए। उनके निकुञ्ज गमन की पूर्वानुभूति श्रीमहाराजजी को श्रीधाम वृन्दावन में ही हो गई थी।

पूज्य श्रीभाईजी का महाप्रयाण

सन् १९६९ से पूज्य श्रीभाईजी का स्वास्थ्य बिगड़ना शुरू हो गया था। सूचना मिलते ही श्रीठाकुरजी गोरखपुर पहुँच गए थे। इनके साथ श्रीमनोहरबाबा भी थे।

गोरखपुर पहुँचकर श्रीठाकुर जी, पूज्य श्रीभाईजी की सेवा में लग गये। पूज्य राधाबाबा, श्रीभाईजी की गम्भीर स्थिति को देखकर चिंतित थे। उनको पूज्य श्रीभाईजी के महाप्रस्थान का पूर्वाभास हो गया था। पूज्य श्रीभाईजी का अन्तिम समय जानकर पूज्य श्रीराधाबाबा ने अपनी समस्त पूजा-पाठ व नियमों का विसर्जन कर दिया। इसके एकमात्र साक्षी श्रीठाकुरजी थे। श्रीठाकुरजी, पूज्य बाबा की कुटिया के बाहर खड़े थे, उन्होंने देखा कि बाबा अपनी पूजा की चौकी पर शान्त भाव से जाकर बैठ गये और अपने दोनों हाथों को जोड़कर पुष्पाञ्जलि की मुद्रा बनाई तथा अपने पूजापाठ के समस्त बाह्य अङ्गों व नियमों को सदा-सदा के लिए विसर्जित कर दिया। उसके बाद उन्होंने स्नान किया तथा नूतन वस्त्र पहनें। पूज्य बाबा अभी अपनी कुटिया में ही विराजमान रहे। इसी बीच श्रीठाकुरजी थोड़ी देर के लिए, अपनी कुटिया में आ गए थे। कुछ देर बाद पूज्य श्रीराधाबाबा शीघ्रता से पूज्य श्रीभाईजी के कक्ष की ओर गये। इधर अपनी कुटिया में बैठे-बैठे श्रीठाकुरजी को भी अचानक प्रेरणा हुई और वे भी शीघ्रता से उठकर पावन कक्ष में पहुँच गए। कुछ ही क्षणों में पूज्य श्रीभाईजी ने दीर्घश्वास के साथ अपनी प्राकृत लीला संवरण कर ली। श्रीठाकुरजी को पूज्य श्रीभाईजी के जाने से बहुत आघात लगा। उन्होंने अपनी पीड़ा को श्रीहीरालालाजी गुप्ता, भोपाल को लिखे एक पत्र में इस प्रकार व्यक्त किया-

'तुलसी ममता राम सौं समता सब संसार।
राग न रोष न दोष दुःख दास भए भवपार।।

यह दोहा पूज्य श्रीभाईजी के द्वारा अक्सर कहा जाता था जो मुझे

रह-रहकर याद आ रहा है। जिसके वे सजीव विग्रह ही थे। उनकी अलौकिक बातों को तो कहते बनता नहीं पर लौकिक व्यवहार भी उन सरीखा कोई नहीं कर सकता। ईसाई, मुसलमान भी रो रहे थे। अपना पुराना वर्षों का सम्बन्ध बताकर आँसू बहा रहे थे। भयंकर पीड़ा में भी उन्होंने श्रीकृष्ण के मधुर-अतिमधुर दो बंग भाषा में पद रचनाएँ कीं। जिनका भाव यही कि यह शरीर की भीषण पीड़ा आपके चरण कमल, हस्तकमल, मुखकमल के दर्शन के मधुर आनन्द के आगे क्या अर्थ रख सकती है? मेरा मन बस आपके दर्शनानन्द में मग्न होना ही चाह रहा है। यह दिनांक १४.०३.१९७१ को लिखे पद थे। दिनांक २२.०३.१९७१ को उन्होंने लीला संवरण कर ली। कभी मिलने पर सारी बात हो सकेगी। बहुत कठिनाई से इतना लिख पाया हूँ। मन की बात मन ही में रह गई पर अब श्रीबाबा, श्रीश्री..जी (महाराज जी) कुछ विशेष कृपा से कोई खेल करें तो सम्भव है कि सर्वप्रियजनों को कोई दूसरी लहर मिलजाए अन्यथा सम्भव नहीं।'

पूज्य श्रीभाईजी की इस महाप्रयाण लीला को लिपिबद्ध करवाकर पूज्य श्रीराधाबाबा ने कुछ लोगों को नित्य पाठ हेतु दिया था। उसका शीर्षक 'खण्डित-वीणा-रोता-रव' रखा था। श्रीठाकुरजी भी इसका नित्य पाठ करते थे।

वृन्दावन में पावन स्मरण ग्रन्थ का विमोचन

परमपूज्य भाईजी की स्मृति में 'पावन स्मरण' नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। श्रीधाम वृन्दावन में इसका सर्वप्रथम विमोचन होना था। पूज्य श्रीभाईजी की पुत्री आदरणीया सावित्रीबाई फोगला ने

श्रीठाकुरजी को पत्र लिखा कि इस ग्रन्थ के रूप में पूज्य बाबूजी ही श्रीधाम वृन्दावन पधार रहे हैं। श्रीधाम में इस ग्रन्थ का स्वागत भव्य रूप से हो। श्रीठाकुरजी के शब्दों में इस प्रसङ्ग का विवरण इस प्रकार है :-

'बाई का कथन मेरे लिए आदेश के समान था। मैं हृदय से चाहता था कि इस महान ग्रन्थ का स्वागत तथा विमोचन भव्य रूप से हो, पर मैं स्वयं को बड़ा असहाय अनुभव कर रहा था। सार्वजनिक कार्यक्रमों के आयोजन का कार्य मैने कभी नहीं किया था। मैं सर्वथा अनुभवविहीन था, साथ ही एक कष्टदाई फोड़े से परेशान था। मुझ किंकर्तव्य विमूढ़ की निराशापूर्ण मनस्थिति को पूज्य श्रीमहाराजजी भाँप गए। मुझे प्रोत्साहित करते हुए महाराजजी ने कहा- 'आप चिन्ता क्यों करते हैं जी, श्रीभाईजी का उत्सव मैं मनाऊँगा।' पूज्य महाराजश्री की सान्त्वनात्मक वाणी सुनते ही मेरी सारी निराशा दूर हो गई। 'पावन स्मरण' ग्रन्थ लाने के लिए मुझे दिल्ली जाना था। एक स्वजन ने मुझे पूरे कार्यक्रम के लिए अपनी कार दे दी। यह उनकी सद्भावना थी। दिल्ली जाने के लिए जब मैं चलने लगा तो श्रीमहाराज जी भी मेरे साथ चलने लगे। हम सब परिकरजनों के बहुत मना करने के बाद भी वे साथ गए। मार्ग में श्रीमहाराजजी ने मुझसे कहा- 'आप अपने मन से इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में ग्रन्थ भावना निकाल दीजिए। यही मानिए कि आप श्रीभाईजी को लाने के लिए ही जा रहे हैं और इस ग्रन्थ के रूप में वस्तुतः श्रीभाईजी ही वृन्दावन पधार रहे हैं।' पूज्य महाराजजी की भावनाओं ने मेरे मन को एक दिशा प्रदान की। उस समय मुझे देखने को मिली महाराजजी के श्रद्धापूरित हृदय की एक मधुर झलक। ग्रन्थ मखमल की पेटी में रखा था। उस पर जरी की किनारी जड़ी हुई थी। ग्रन्थ को वृन्दावन लाया गया

तथा अगले दिन भव्य शोभायात्रा का आयोजन था। शोभायात्रा में सम्मिलित होने के लिए जिन-जिन सन्तों से प्रार्थना की गई, सबने आने के लिए प्रसन्नता पूर्वक अपनी सहमति प्रदान की।

ग्रन्थ का सर्वप्रथम पूजन 'वेणु विनोद कुञ्ज' में हुआ। महाराजश्री चाहते थे कि ग्रन्थ का विमोचन पूज्य स्वामी शरणानन्द जी महाराज के द्वारा हो। उनदिनों उनका स्वास्थ शिथिल चल रहा था। मैं मुँह लगे बालक की भाँति सीधे उनके आश्रम -'मानव सेवा संघ' पहुँच गया। जब मैं पहुँचा, तब स्वामीजी अपने कमरे में प्रवेश कर रहे थे। समीपस्थ लोग उन्हें मेरा परिचय देने लगे। स्वामी ने कहा- 'इसका परिचय देने की आवश्यकता नहीं। स्पर्श ही बता रहा है कि यह कौन है।'

मैंने कहा- 'मैं तो आपको लेने आया हूँ, पर आपका स्वास्थ.... वाक्य पूरा भी न हो सका कि स्वामी जी बोले-क्या काम है?'

मैंने कहा- 'पूज्य बाबूजी पर प्रकाशित 'पावन स्मरण' ग्रन्थ का विमोचन मैं आपके द्वारा करवाना चाहता हूँ।'

बाबूजी का नाम सुनते ही स्वामीजी गद्‌गद् हो उठे। मुख आरक्त हो गया। विभोर वाणी में स्वामी जी कहने लगे- 'भाईजी! भाईजी तो मेरे प्राण हैं। वे मेरी आत्मा हैं। उनके सम्बन्ध में कुछ कहते नहीं बनता।'

इतना कहते कहते उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। कुछ देर रुककर स्वामीजी ने कहा- 'मैं उत्सव में अवश्य चलूँगा।'

मैने चिंता व्यक्त की- 'आपका स्वास्थ.....'

बीच में ही स्वामीजी बोल उठे- '**स्वास्थ्य का सम्बन्ध शरीर से है। शरीर रुग्ण है, मैं थोड़े ही रुग्ण हूँ**। मैं श्रीभाईजी के उत्सव में अवश्य

चलूँगा।' इतना कहकर स्वामीजी कमरे में न जाकर मेरे साथ कार में बैठ गए। स्वामी श्रीकुँवरपालजी के रासमण्डल स्थल पर ग्रन्थ का विमोचन होना था।

वहाँ पहुँचकर स्वामीजी ने बाबूजी के चित्रपट को पुष्पमाला धारण कराई तथा ग्रन्थ का विमोचनकर अपनी भावाञ्जली अर्पित करते हुए कहा- 'वे क्या थे? कहाँ से आये थे? ये सब तो वे ही जाने, पर वे प्रेमीजनों के सर्वस्व थे। उनके वियोग में भोले भक्तों का हृदय पीड़ित है। अधिक बोला नहीं जाता। हृदय की पीड़ा कण्ठ को अवरुद्ध कर रही है।'

उपस्थित महानुभावों द्वारा बार-बार आग्रह किए जाने पर सभा के समापन होने से पहले पूज्य महाराजश्री (श्रीबालकृष्ण दासजीमहाराज) द्वारा अभ्यर्चना सम्पन्न हुई। श्रीमहाराजजी अश्रुभरे नेत्रों से केवल एक श्लोक का पाठ कर पाए'।

प्रियप्रायावृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते।।

(जिनकी वृत्ति प्रियता से परिपूर्ण होती है, जिनकी वाणी संयमित, विनीत एवं मधुर होती है। जिनकी मति स्वाभाविक ही कल्याणकारिणी होती है, परिचय प्रदान करने वाली जिनकी कृति अनिन्द्य होती है और जिनका हृदय रस से, भूत-वर्तमान-भविष्य अर्थात त्रिकाल में अन्यून

रहता है, ऐसे साधुजनों का जीवन सदा उत्कर्ष को प्राप्त होता है।)

११.६.१९७३ को श्रीठाकुरजी श्रीराधाष्टमी महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए गीता वाटिका गोरखपुर गए। पूज्य भाईजी के तिरोधान के बाद वाटिका में एक गहरा अभाव व्याप्त हो गया था। पूज्य बाबा भी बहुत अन्तर्मुखी हो गए थे। सन् १९७५ से पूज्य महाराजजी भी लगभग प्रतिवर्ष ही श्रीराधा-जन्माष्टमी के अवसर पर श्रीठाकुरजी के साथ गीतावाटिका गोरखपुर जाने लगे। उस अवसर पर पूज्य श्रीराधाबाबा एवं पूज्य श्रीमहाराजी के मध्य रसपूर्ण चर्चाएँ होती थीं। इस प्रकार की रसगोष्ठी प्राय: प्रतिवर्ष ही होती थी।

सन् १९७५ के श्री राधाष्टमी महोत्सव पर विविध कार्यक्रम हुए। अश्विन कृष्ण द्वादशी तिथि को पूज्यभाईजी के जन्मदिवस तक श्रीमहाराजजी वहाँ पर रुके। इस अवसर पर एक गोष्ठी का आयोजन हुआ जिसमें अनेक संतों एवं विद्वानों के भाषण हुए। पूज्य भाईजी के प्रेमपूर्ण जीवन पर प्रकाश डालते हुए पूज्य महाराजजी ने कहा- *'श्रीभाईजी का अर्थ है श्री राधामाधव की प्रीति। श्रीभाईजी के जन्मोत्सव मनाने का अर्थ है श्रीराधामाधव की प्रीति का विजयोत्सव। प्रिया-प्रियतम के निज-निकुञ्ज की कोई सखी कभी-कभी हमें उस निकुञ्ज देश की सुषमा का संकेत करने आ जाती है। उस दिव्य वृन्दावन में अनेक निकुञ्ज हैं। एक सखी एक निकुञ्ज से दूसरे निकुञ्ज में प्रवेश कर रही है। दूसरे निकुञ्ज में प्रवेश करने के पूर्व वह एक क्षण के लिये ठहर गयी। वह एक क्षण की अवधि ही श्री पोद्दारजी की जीवनावधि है। उनके आगमन और गमन के मध्य का समय, उनके*

आविर्भाव एवं तिरोभाव के मध्य के अस्सी वर्ष की वह जीवनावधि ही लीला-निकुञ्जीय देश का वह एक क्षण है। श्रीभाईजी की दृष्टि के साथ दृष्टि मिला लेने पर हमारी दृष्टि में भी वैसे ही दिव्य युगल श्री प्रिया-प्रियतम उद्भासित होने लगेंगे।'

पूज्य महाराजजी के इन उद्गारों को सुनकर पूज्य बाबा के अह्लादकी सीमा नहीं थी। उसके बाद पूज्य बाबा की कुटिया नेह-निकुञ्ज के पास लीची के पेड़ के नीचे रसमय चर्चा प्रारंभ हुई। पास में बैठे थे श्रीठाकुरजी। पूज्य बाबा ने मन्द और मृदुल स्वर में अपनी स्फुरणा को व्यक्त करते हुए ठाकुर जी से कहा-ठाकुर! महाराजजी से कुछ सुनाने के लिए कहो न! ठाकुरजी ने मुस्कराते हुए निवेदन किया-बाबा यह तो बड़ी सुन्दर बात है। पूज्य बाबा की रुचि को सदैव सम्मान देने वाले श्रीठाकुरजी की और पूज्य महाराजजी की आपस में संकेतों के रूप में कुछ बातचीत हुई और फिर पूज्य महाराजजी ने ललित स्वर में स्वामी श्रीप्रबोधानन्दजी सरस्वती द्वारा रचित निम्नलिखित अष्टपदी सुनायी-

स्मरतु मनो मम् निरवधि राधाम्।

मधुपति रूप गुण श्रवणोदित सहज मनोभव बाधाम्।।

वरसीमन्त रसामृत सरिणी धृत सिन्दूर सुरेखाम्।

श्री वृषभानु कुलाम्बुधि सम्भव सुभग सुधाकर लेखाम्।।

सुरुचिर कबरि विराजित कोमल परिमल मल्लि सुमालाम्।

मदचल खञ्जन खेलन गञ्जन लोचन कमल विशालाम्।।

मदकरिराज विराजदनुत्तम चलित ललित गति भङ्गिम्।
अति सुकुमार कनक नव चम्पक गौर मधुर मधुराङ्गिम्।।
मणि केयूर ललित वलयावलि मण्डित मृदु भुजवल्लीम्।
प्रति पदमद्भुत रूप चमत्कृत मोहन युवतिमतल्लीम्।।
मृदु-मृदु हास ललित मुखमण्डल कृत शशिबिम्ब विडम्बाम्।
किञ्किणि जाल खचित पृथु सुन्दर नव रस राशि नितम्बाम्।।
चित्रित कञ्चुलिका स्थगितोद्भट कुचहाटक घट शोभाम्।
स्फुरदरुणाधर सीधुसुधारस कृत हरि मानस लोभाम्।।
सुन्दर चिबुक विराजित मोहन मेचक बिन्दु विलासाम्।
सकनक रत्न खचित पृथु मौक्तिक रुचि-रुचिरोज्ज्वल नासाम्।।
उज्ज्वल राग रसामृत सागर सारतनुं सुख रूपाम्।
निपतित माधव मुग्ध मनो मृग नाभि सुधारस कूपाम्।।
नूपुर हार मनोहर कुण्डल कृतरुचिमरुण दुकूलाम्।
पथि-पथि मदन मदाकुल गोकुलचन्द्र कलित पद मूलाम्।।
रसिक सरस्वति गीत महाद्भुत राधा रूप रहस्यम्।
वृन्दावन रस लालस मनसामिदमुपगेयमवश्यम्।।

अष्टपदी सुना चुकने के बाद पूज्य महाराजजी के मन में भी यह अभिलाषा स्फुरित हो उठी कि पूज्य बाबा के श्रीमुख से भी कुछ सुनने को मिल जाय। महाराजजी की भावनाओं का आभास मिलते ही

श्रीठाकुरजी ने साँकेतिक रूप में पूज्य बाबा से निवेदन किया। उसी समय पूज्य बाबा ने हारमोनियम मंगवाया और श्रीहरिवल्लभजी को स्वर देने के लिए कहा। उस समय बाबा ने अपने 'जय-जय-प्रियतम' काव्य का निम्न अंश शिवरंजनी राग में सुनाया-

प्रक्षालित किये तरंगों ने फिर पद हम दोनों के, प्रियतम!
व्याकुल होकर आ चिपट गयी रेणुका किन्तु अमला, प्रियतम!
'क्यों छोड़ चले तुम मुझे यहीं दम्पति हे! थी कहती, प्रियतम!
उज्ज्वल वितान था तान रहा ऊपर हिमकर, करसे, प्रियतम!
मन में कुछ व्यथित हुई सी थी कह गयी-'न छोडूंगी, प्रियतम!
कोई भी हो, कैसी भी हो, जो जुड़ी तनिक-सी है, प्रियतम!
आशा उसकी मैं क्यों तोड़ूँ, साँवर तो हैं मेरे, प्रियतम!
दूँगी कह जो कर लेगें फिर यह तो है पद थामें, प्रियतम!
कितनी मृदुला, कितनी हल्की, कितनी उजली यह है, प्रियतम!
जड़ बनी अपनपौ खोकर है मेरे ही लिए पड़ी, प्रियतम!
साँवर की यह दासी इसकी निष्ठा कैसे भूले, प्रियतम!
हे धूलि! परम मंगल हो ये स्वीकार करें तुमको, प्रियतम।।
हे प्राणनाथ! हो गयी देर अब चलो कुञ्ज में हे, प्रियतम!
हे श्यामचन्द्र! किरणों का हूँ स्वागत करती कहती, प्रियतम!!
देते रहना शीतलता ही अविराम यहाँ सबको, प्रियतम!

फिर रास दिखाऊँगी तुमको, कह चली, चले तुम भी, प्रियतम।।

दो संत-कण्ठों के गायन ने लीची के पेड़ के नीचे वातारण को बड़ा भावमय बना दिया था। इस भाव-गोष्ठी के सम्पन्न होने के बाद ४ अक्टूबर १९७५ को पूज्य महाराजश्री श्रीठाकुरजी के साथ कार द्वारा वाराणसी चले गये और फिर वाराणसी से वृन्दावन आ गए।

अगले वर्ष श्रीराधाष्टमी के अवसर पर श्रीठाकुरजी अस्वस्थ हो गए। पेट में अल्सर के कारण गैस बनने व जलन की शिकायत हो गई। पूज्य महाराजजी के साथ गाँव-गाँव में संकीर्तन कराते समय श्रीठाकुरजी चार-चार घण्टें एक आसन पर बैठते और उच्च स्वर से कीर्तन कराते। कभी खाली पेट तो कई बार चाय पीकर ही रह जाते। इस अनियमितता के कारण ही श्रीठाकुरजी का स्वास्थ्य खराब हो गया था। उनकी रुग्णता को देखकर कभी-कभी उनके जीवन के बारे में लोगों को आशंका होने लगती थी।

९ सितम्बर सन् १९७६ को राधा-जन्म-महोत्सव था। लोगों को संदेह था कि इसबार श्रीठाकुरजी की रुग्णता की वजह से श्रीमहाराजजी भी गोरखपुर नहीं जा पाएँगें किन्तु पूज्यबाबा श्रीठाकुरजी को बुलाने के लिए कृत संकल्प थे। पूज्य श्रीराधाबाबा ने विशेष रूप से निर्देश देते हुए कहा कि **ठाकुर मेरी गोटी है उसके बिना मेरा खेल बिगड़ जायेगा।** यहाँ आकर भले ही उसका शरीर छूट जाए। उसे चाहे ट्रेन में लिटाकर लाना पड़े, उसे तो आना ही है। इधर गोरखपुर में श्रीभीमसेनजी चोपड़ा को स्वप्न आया कि पूज्य श्रीभाईजी गीतावाटिका के पीछे बने हुए बगीचे में बेंत लेकर टहलते हुए श्रीठाकुरजी की पुरानी

कुटिया की ओर उनसे मिलने जा रहे हैं। इस स्वप्न की बात सुनकर वहाँ सभी को विश्वास हो गया कि श्रीठाकुरजी अवश्य आयेंगे। पूज्य बाबा के संकल्पानुसार श्रीठाकुरजी को गोरखपुर ट्रेन में लिटाकर ले जाया गया। साथ में पूज्य श्रीमहाराजजी व श्रीमनोहरबाबा भी गए। श्रीठाकुरजी को देखकर पूज्य बाबा की आँखों में वात्सल्य उमड़ पड़ा।

पूज्य राधाबाबा की परिक्रमा के समय श्रीठाकुरजी को व्हील चेयर पर एक ओर बैठा दिया जाता। पूज्य बाबा परिक्रमा के मध्य ठाकुरजी पर दृष्टि डालते रहते। उचित चिकित्सा भी आरम्भ कर दी गई थी। क्रमशः श्रीठाकुरजी का स्वास्थ्य सुधरने लगा। औषधियाँ तो वही थीं जो पहले से दी जा रही थीं किन्तु वे ही औषधियाँ संत दृष्टि पड़ते ही चमत्कारिक रूप से लाभ करने लगीं।

श्रीराधाष्टमी महोत्सव सोल्लास सम्पन्न हो गया तथा अब भीड़ भी कम होने लगी। श्रीठाकुरजी भी कुछ-कुछ स्वस्थ हो चले थे। वे अब कभी-कभी पूज्य बाबा के पास उनकी कुटिया नेह-निकुंज पर चले जाया करते थे। श्रीमहाराजजी के मन में बड़ी चाह थी कि कुछ समय के लिए कभी एकान्त में पूज्य बाबा के पास बैठने का अवसर मिले और उनके श्रीमुख से ब्रजभाव की सरस चर्चा सुनने को मिले परन्तु मिलने वालों की अधिकता तथा पूज्य बाबा की अस्वस्थता के कारण वह अवसर सुलभ नहीं हो पाता। कुछ दिन बाद एक भक्त ने पूज्य श्रीमहाराजजी के भावों की आवृत्ति करते हुए पूज्य बाबा से अनुरोध किया- 'सुन्दर हो, यदि कुछ समय पूज्य श्रीमहाराजजी के साथ एकान्त वार्ता के लिए निकाल लें। यदि यहाँ एकान्त नहीं मिल पाता हो तो

श्रीठाकुरजी को देखने के बहाने से वहाँ उनकी कुटिया पर पधारें, जिससे कुटिया पर एकान्त मिल जायेगा।'

उस दिन सायंकाल ऐसा संयोग बना। पूज्य श्रीमहाराजजी तथा पूज्य श्रीबाबा एक साथ बैठ पाए। बैठे पूज्य श्रीबाबा की कुटिया नेह-निकुंज पर ही। पास में श्रीठाकुरजी व कुछ अन्य साधक भी उपस्थित थे। बैठते ही बाबा ने अपनी व्यस्तता की चर्चा की तथा एकान्त में बैठने का अवसर न मिल सकने के लिए खेद व्यक्त किया। पूज्य बाबा ने एक बात और बतायी कि 'मैं यही चाहता हूँ कि पोद्दार महाराज की समाधि, जहाँ तक बन सके, मेरी दृष्टि से ओझल न हो। आपके कुटीर पर आपकी सन्निधि प्राप्त करने के लिये मैं आ सकता था पर एक दीर्घकाल के लिये समाधि से दूर हो जाना पड़ता।'

इसके बाद ब्रज के संतों की तथा ब्रज की विभिन्न साधना पद्धतियों की चर्चा चल पड़ी। बाबा ने बताया-'ब्रज के जितने सम्प्रदाय हैं, लगभग सभी के साहित्यकार अपनी-अपनी दृष्टि से कहते हैं, पर कहते हैं एक ही बात को। प्राप्तव्य वस्तु को लक्ष्यकर साधक चले तो सही, अन्त में सभी को उसी महाभाव-समुद्र में निमज्जित होना है। मुझे जो वस्तु मिली है वह किसी साधना का परिणाम नहीं है। उस वस्तु की प्राप्ति तो नन्दनन्दन ने अपने सहज स्वभाव से मुझे करा दी।'

अगले दिन पूज्य श्रीबाबा तथा पूज्य श्रीमहाराजजी के मिलन के अवसर पर श्रीठाकुरजी ने एक जिज्ञासा व्यक्त की-*'प्राकृत मन में अप्राकृत राज्य की वस्तु को ग्रहण करने की क्षमता कैसे उत्पन्न हो?'*

पूज्य बाबा ने कहा-*'जहाँ तक इस मन की बात है, यह है तो प्राकृत*

ही। प्राकृत मन अप्राकृत वस्तु को ग्रहण ही कैसे कर सकता है? अप्राकृत राज्य की वस्तु को ग्रहण करने के लिये अप्राकृत मन की आवश्यकता है और इस अप्राकृत मन की प्राप्ति एक मात्र कृपा से होती है। अप्राकृत राज्य की वस्तु को देखने के लिये अप्राकृत आँख चाहिये। इसी प्रकार अप्राकृत घ्राणेन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय चाहिये, इन अप्राकृत इन्द्रियों की उपलब्धि एक मात्र कृपा से होती है।'

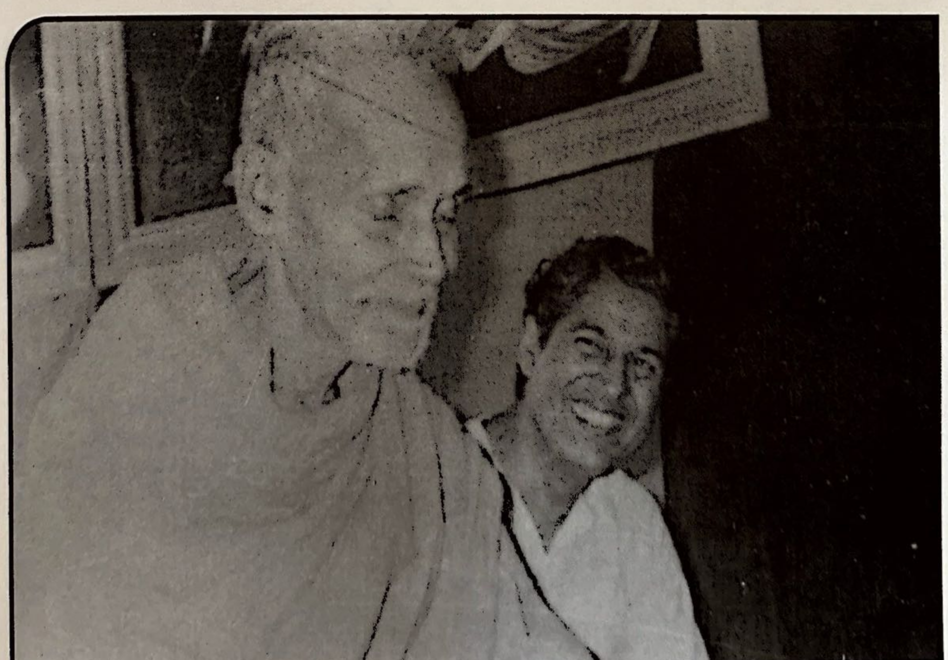
'वस्तु और वस्तु की छाया, बिम्ब और प्रतिबिम्ब सर्वथा अलग-अलग वस्तु है। इस स्थूल जगत में जो कुछ भी है, वह उस दिव्य राज्य की छाया मात्र है। जो इस छाया पर, इस प्रतिबिम्ब पर बहुत अधिक विलुब्ध है, वह भला कैसे मूल वस्तु पर, बिम्ब पर अपनी वृत्ति को केन्द्रित कर सकता है? प्रारम्भ में कुछ कठिनता सामने आती है, पर जो प्रतिबिम्ब से मन को हटाकर बिम्ब में अपना मन टिकानेका प्रयास करता है, उसे दिव्य राज्य की वस्तुओं की झलक मिल जाती है।'

पूज्य बाबा अब पुनः साध्य-साधन सम्बन्धी चर्चा करते हुए कहने लगे-'जहाँ तक साधना का प्रश्न है, साधक को लीला के जो भी पद मिलते हैं, उसके अनुसार वह लीला भावना करे। अवश्य ही वे पद किसी सिद्ध संत के द्वारा रचित हों। *पद में जो लीला वर्णित है, वह छाया ही है, प्रतिबिम्ब ही है, पर साधना-रत साधक उस छाया, उस प्रतिबिम्ब के चिन्तन के सहारे मूल वस्तु तक पहुँच जायेगा।'*

पूज्य श्रीमहाराजजी ने धीरे से एक जिज्ञासा व्यक्त की- *'यदि किसी महापुरुष का ही चिन्तन नित्य किया जाय तो क्या महापुरुष का चिन्तन करने वाले साधक को वस्तु की प्राप्ति हो जायेगी?'* पूज्य बाबा ने श्री

पूज्य भाईजी की गोद में
भावविभोर श्रीठाकुरजी

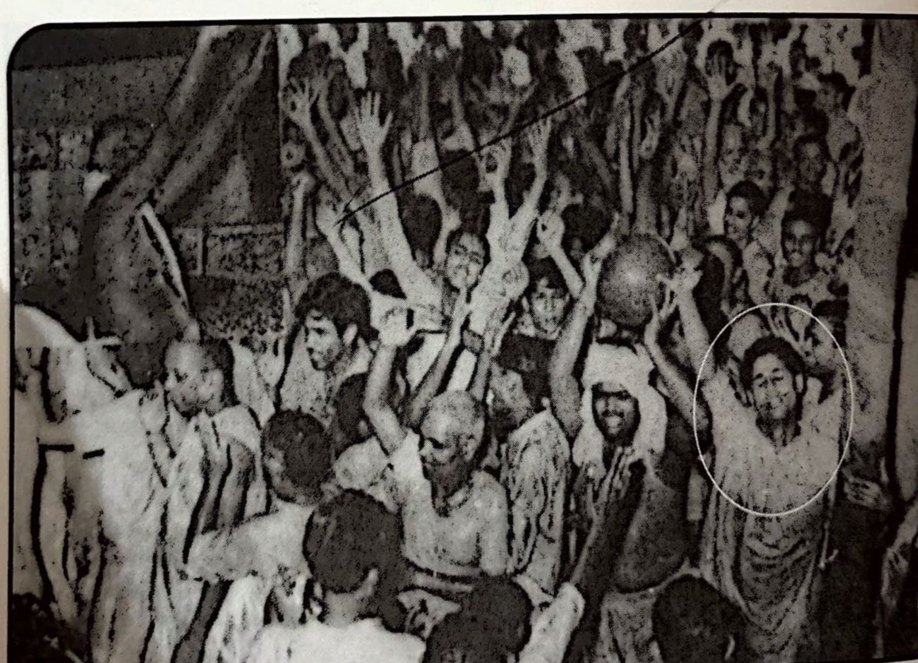




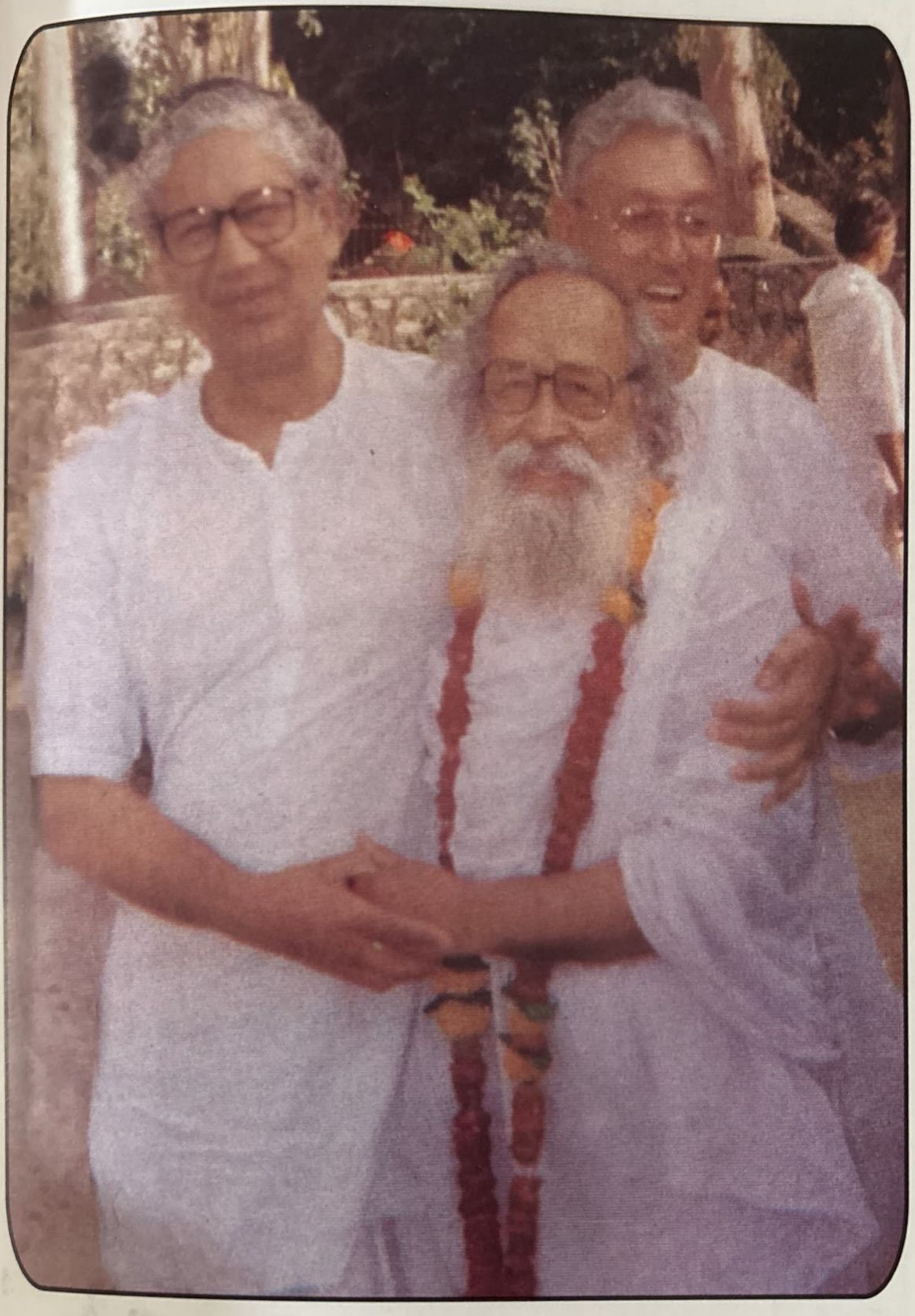
पूज्य राधाबाबा के साथ श्रीठाकुरजी



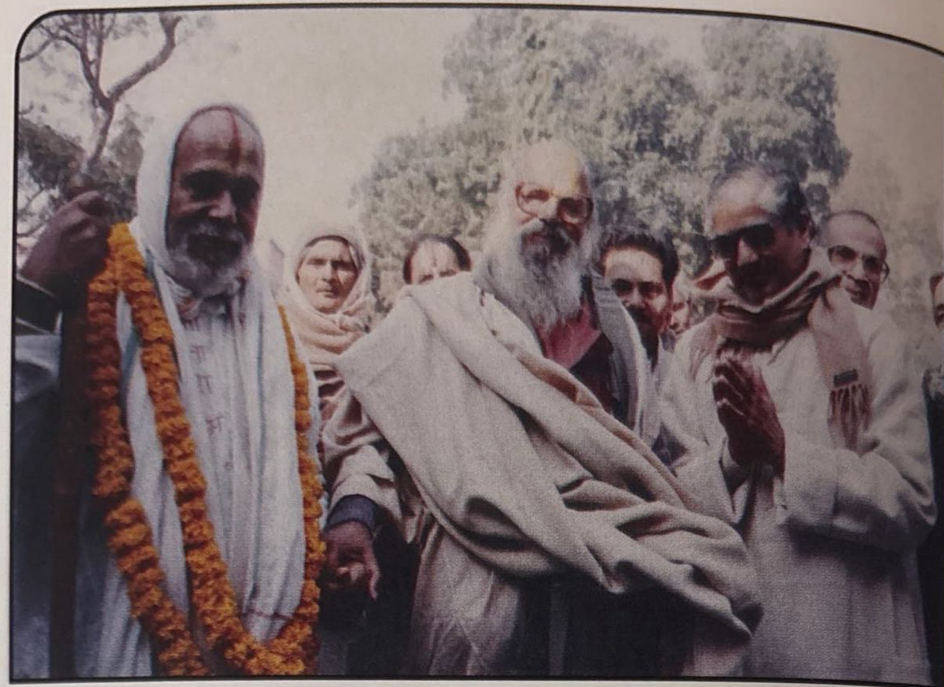
गीता वाटिका गोरखपुर में पूज्य राधाबाबा
की सेवा में श्रीठाकुर जी



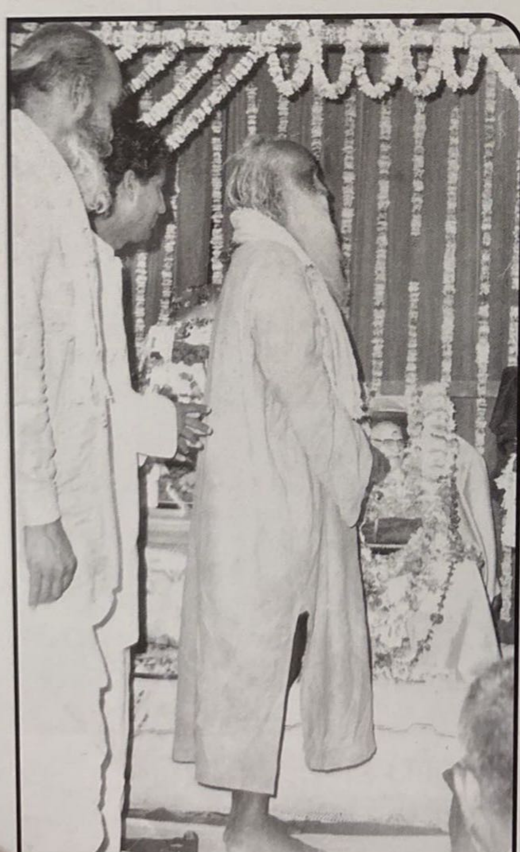
श्रीराधाष्टमी महोत्सव (गीता वाटिका, गोरखपुर) दधिकाँधौ
के अवसर पर भावाविष्ट श्रीठाकुरजी



पूज्य श्रीमनोहरबाबा के साथ



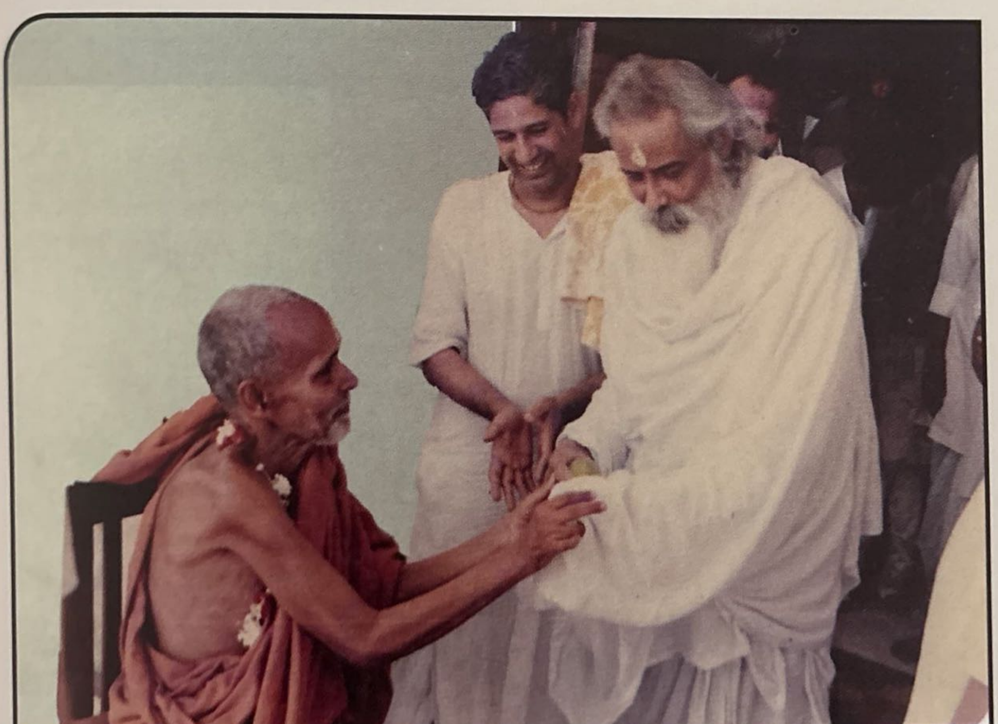
पूज्य श्रीमन्नारायणदास भक्तमाली जी (बक्सर) एवं पूज्य आचार्य कृपाशंकरजी महाराज के साथ



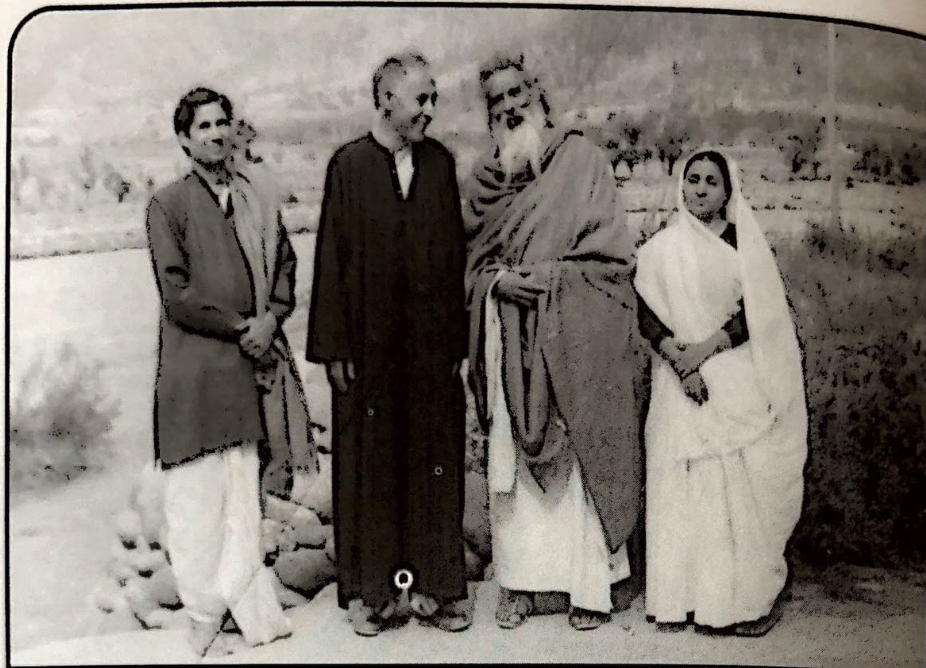
स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज के साथ

पूज्य राधाबाबा एवं
पूज्य महाराजश्री
के साथ
श्रीठाकुरजी





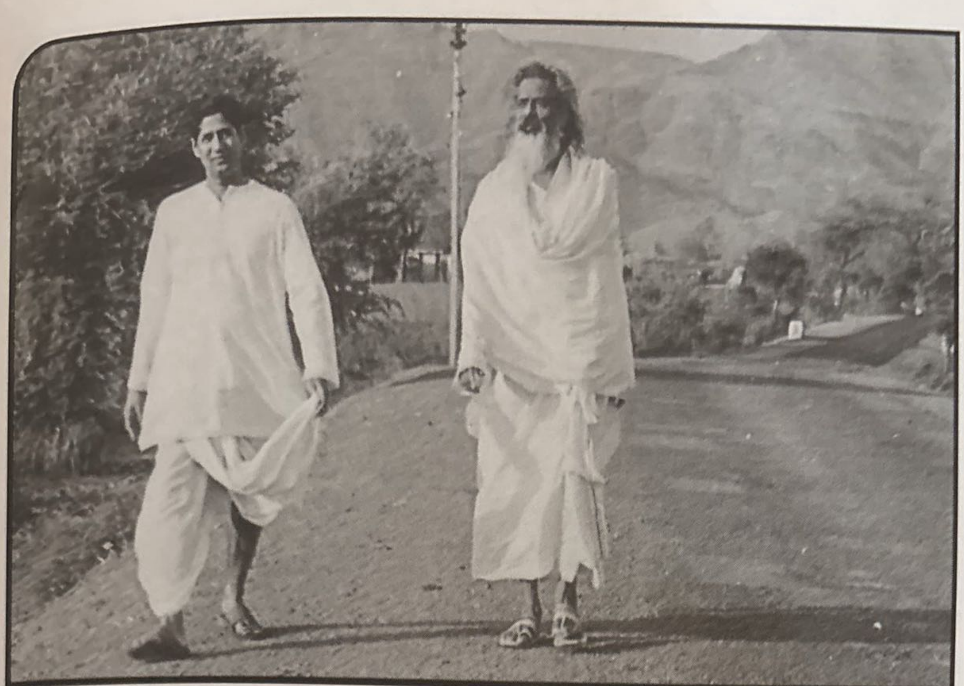
पूज्य राधाबाबा एवं पूज्य महाराजश्री के साथ श्रीठाकुरजी



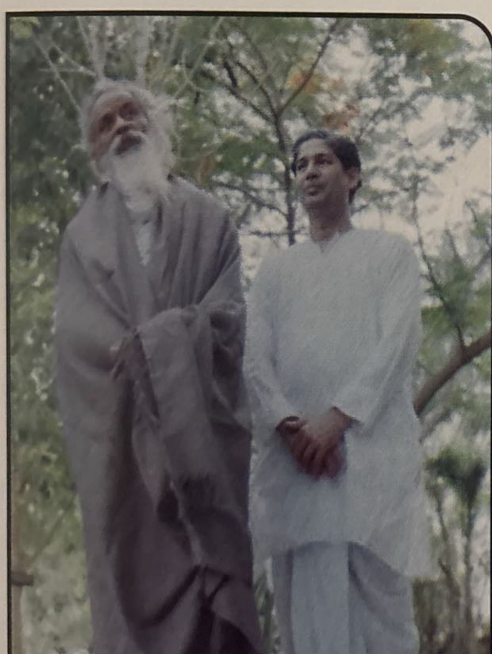
पूज्य स्वामी लक्ष्मणजू महाराज के बगल में श्रीठाकुरजी



पूज्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्यजी को माला धारण कराते हुए
पूज्य श्रीमहाराजजी एवं श्रीठाकुरजी



प्रातःकालीन भ्रमण के समय पूज्य महाराजश्री के साथ (बड़वानी)



पूज्य महाराजश्री
के साथ बड़वानी के
शिव मन्दिर में



दक्षिण भारत के एक मन्दिर में श्रीमहाराजश्री के साथ



दक्षिण भारत के एक मन्दिर में श्रीमहाराजश्री के साथ

चैतन्य महाप्रभु का उदाहरण सुनाया-'जो श्री महाप्रभु जी के वास्तविक स्वरूप को जानते थे। जो उनकी कृपा पर आश्रित थे, उन्हें वस्तु की प्राप्ति हुई। बस, यह सुगुप्त धारा चली चले। महापुरुष के कृपाश्रित को वस्तु की प्राप्ति होती है।'

'रासवाले जो लीला करते हैं, वह लीला तो अप्राकृत राज्य की लीला की छाया की छाया भी नहीं हैं, पर इस छाया के माध्यम से मूल वस्तु की ओर अग्रसर हुआ जा सकता है। आजकल रामण्डली वाले जो रासलीला करते हैं, वह लीला मुझे प्राय: 'भीतर' से 'बाहर' खींच लाती है, पर यह जो ठाकुर (पूज्य श्रीठाकुरजी) है, जब यह पहले रासलीला में ठाकुर का स्वरूप धारण करता था, तब यह अपनी ठकुराई में मुझे 'बाहर' से 'भीतर' ले जाता था। केवल एक या दो बार की बात नहीं है, सदा ही यह ठाकुर अपनी स्वरूपाई में मुझे मूल वस्तु की ओर ले जाता था और विचित्र भावोद्दीपन होता था। फिर पूज्य बाबा ने पूज्य श्री महाराजजी की ओर संकेत करके कहा- आप भी तो श्रीगोपाल भट्ट जी के वंश की परम्परा में है, तभी तो आपका स्वरूप ऐसा है।'

ऐसा कहकर पूज्य बाबा श्रीमहाराजजी की गोद में अपना मस्तक रखने लगे। वातावरण में अनोखी भावमयता छा रही थी। पूज्य श्रीमहाराजजी का विशेष परिचय देते हुए श्रीठाकुरजी ने कहा कि आपके नानाजी पूज्यश्री जटावल्लभ अप्रमेयङ्गाचार्यजी एक सिद्ध संत थे। वे थे तो ऐश्वर्योपासक, पर उन्हें सेवाकुञ्ज में दिव्य राज्य की सखियों के दर्शन हुए थे। जिन्होंने दूध से परिपूर्ण चाँदी के कलशों को सिर पर ले रखा था। उन्हें अपने महाप्रस्थान की तिथि पहले ही ज्ञात हो

गयी थी। उन्होंने बता भी दिया था और उसी पूर्व-निर्धारित समय पर अपने शरीर का परित्याग किया। पूज्य बाबा यह सब सुनकर प्रफुल्लित हो रहे थे।

नाम-जप की बात चली तो बाबा प्रसन्न होते हुए बोले-'इतना नाम-जप हो कि नाम में रस आने लगे। नाम जपते-जपते बड़ा प्रिय लगने लगे। नाम जब प्रिय लगने लगता है और जब मन में भाव का उद्वेलन होने लगता है, तब संख्या पूरी करनी कठिन हो जाती है।

वस्तु की प्राप्ति तो मात्र कृपा पर अवलम्बित है। मुझे जो वस्तु मिली है, वह एक मात्र कृपा का फल है और किसी को वस्तु मिलेगी तो कृपा से ही मिलेगी। इसका अर्थ यह नहीं कि कोई भजन नहीं करें। भजन यदि नहीं होगा तो जीवन में रजोगुण-तमोगुण बढ़ेगा। भजन करने से पात्रता का निर्माण होता है, पर वास्तविक प्राप्ति तो कृपा से होगी और कृपा का अधिकारी हर एक मनुष्य है।

अगले दिन पूज्य श्रीमहाराजजी ने तय कर रखा था कि आज नहीं जाना है, इसीलिये कि बाबा को दस्त लग रहे हैं, बहुत अस्वस्थ हैं तथा थके हुए हैं। श्रीठाकुरजी से उन्होंने कह भी दिया कि आज का बैठना स्थगित रखना चाहिये तथा बाबा सो जायें, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। श्रीठाकुरजी ने प्रयास भी किया, फिर भी पूज्य बाबा ने श्रीमहाराजजी को बुला ही लिया। पूज्य महाराजजी के आने पर श्रीठाकुरजी ने श्रीमहाराजजी के भावों की आवृत्ति करते हुए पूज्य बाबा से कहा-'आपको आराम देने की दृष्टि से श्रीमहाराजजी ने नहीं आने की बात तय कर रखी थी।' पूज्य बाबा लेटे हुए थे। लेटे-लेटे उन्होंने

श्रीठाकुरजी से कहा–'श्रीमहाराज जी के पास बैठने से ही मुझे वास्तविक आराम मिलता है।'

इतना कहकर पूज्य बाबा उठकर बैठ गये तथा बड़ी प्रसन्न मुद्रा में तथा विनोद के स्वर में श्रीमहाराज जी से पूछा–'क्या, मैं बुलाऊँ तो आप नहीं आइयेगा?'

गद्‌गद् हृदय श्रीमहाराज जी इस प्रश्न का उत्तर बोलकर भला क्या देते? उनके भाव भरे सजल नयन बिना बोले ही बहुत अधिक बोल रहे थे।

अगले वर्ष सन् १९७७ को पूज्य महाराज जी वृन्दावन से गीता वाटिका १७ सितम्बर को पधारे। प्रातःकाल पूज्य महाराजजी जब पूज्य बाबा से मिलने के लिये कुटिया पर गए, उस समय का भावभरा दृश्य बड़ा ही भव्य था। पूज्य महाराज जी ने पूज्य बाबा पर पुष्पों की वर्षा की। किसी को पता ही नहीं था कि पूज्य महाराजजी अपने आँचल में पुष्प छिपा करके लाये हैं। भावार्चन के इस दृश्य को देखकर सब आनन्द में डूब गये।

इसी मिलन के समय पूज्य बाबा ने श्रीठाकुरजी से पूज्य महाराजजी के सामने ही कहा–ठाकुर! मैं चाहता हूँ कि श्रीमहाराजजी से एकान्त मे बात करूँ, जिससे मन की कुछ बात कह सकूँ और कुछ सुन सकूँ। तुम्हारे और श्रीमहाराजजी के अतिरिक्त, बस, एक-दो व्यक्ति और हों। इसके बाद ऐसा संयोग बना और ब्रजभाव की चर्चा प्रारंभ हुई। व्रजभाव की चर्चा करते हुए पूज्य बाबा ने कहा–'**जिस व्यक्ति के जीवन में ब्रजभाव अवतरित होता है, उस जीवन की कल्पना जगत के साधारण**

प्राणी कर ही नहीं सकते। न वह स्थूल जगत में रहता है और न उसके सामने स्थूल जगत रह जाता है।'

पूज्य बाबा ने कहा – 'श्री पोद्दार महाराज के पास पहले श्री रघुजी को बाईस–बाईस घण्टे तक अनवरत रोते देखा है। इससे भी अधिक अप्रतिम उदाहरण है श्री चैतन्य महाप्रभु जी का, जिनकी अश्रुधारा बारह वर्ष तक सूखी ही नहीं। वे अपने जीवन के अन्तिम बारह वर्ष तक रोते ही रहे।'

अगले दिन पूज्य बाबा श्री गिरिराजजी की परिक्रमा करने के लिए श्री गिरिराज–परिसर में आये, तब किसी कारण से परिक्रमा किये बिना ही अपनी कुटिया पर लौट गये और ठाकुरजी से पूज्य बाबा ने कहा–'अभी परिक्रमा आरम्भ करने में किसी कारण से थोड़ा विलम्ब है, इसीलिए वहाँ जाकर लौट आया। इस अवधि में तब तक तुम एक पद सुनाओ।'

पूज्य बाबा के ऐसा कहने पर श्री ठाकुरजी ने सुनाया–

चलौ री आज ब्रजराज मुख निरखिये,
लोक की लाज से काज कहा सरैगो।
बहुरि कोउ कहैगो स्याम के ढिंग गई,
याहु ते अधिक कोउ और कहा कहैगो।।
नाचिबे लगी तो फेरि घूँघट कहा,
सूर रन चढ़े पै कौन ते डरैगो।

निरखिये रूप 'नारायण' या स्याम को,
बहुरि ऐसो सखी दाँव कब परैगो।।

यह पद सुनते ही पूज्य बाबा के मनने जागतिक धरातल छोड़ दिया। पूज्य बाबा को परिक्रमा करने के लिए आना था, अतः थोड़ी देर बाद श्रीठाकुरजी ने स्मरण दिलाया, पर पूज्य बाबा तो कहीं 'अन्यत्र' थे। बड़ी कठिनाई से पूज्य बाबा परिक्रमा करने के लिये आये, यन्त्रवत् सारा कार्य किया, पर रहे खोये-खोये ही। बाद में इस सबकी चर्चा करते हुए पूज्य बाबा ने पूज्य महाराज जी को बतलाया-'ठाकुर के गाने से जो रंग चढ़ा, वह शामित हुआ तीन बजे। चार घण्टे तक नशा बना रहा। यदि मिलने वाले नहीं आये होते और मेरी वृत्ति को उन्होंने नहीं झकझोरा होता तो चार घण्टे क्या, न जाने कबतक वह रंग चढ़ा रहता।'

अगले दिन जब पूज्य महाराजजी, पूज्य बाबा के पास पहुँचे तब पूज्य बाबा विश्राम कर रहे थे। वे चुपचाप पूज्य बाबा के पास बैठ गये। पूज्य बाबा जमीन पर बिछाये हुए अपने विस्तर पर सोये हुए थे। पूज्य बाबा के मुख पर बिजली की ट्यूब-लाइट का प्रकाश पड़ रहा था। उसको तो पूज्य महाराजजी ने बंद करवा दी। श्रीचोपड़ाजी और श्रीगुरुचरणजी वस्त्र से मच्छर उड़ाने लगे तथा श्रीठाकुरजी पूज्य बाबा के पैर दबाने लगे। पूज्य महाराजजी भी चुपचाप बैठे रहे तथा रह-रह करके संकेत कर रहे थे कि ऐसा कोई शब्द न हो जिससे कि पूज्य बाबा की नींद उचट जाये। भले ही संत सोये हों, उनके समीप बैठे रहना ही सत्संग है, अपनी उसी मान्यता का प्रत्यक्ष उदाहरण पूज्य महाराज जी अपनी सतत् उपस्थिति से प्रस्तुत कर रहे थे।

लगभग पौन घण्टे तक पूज्य महाराजजी चुपचाप बैठे रहे। इसी बीच जब श्रीठाकुरजी पूज्य बाबा का पैर दबा रहे थे तो पूज्य महाराजजी अपने हाथ के इशारे से श्रीठाकुरजी को कहने लगे-'मेरी चाह है कि श्रीबाबा के चरण मैं दबाऊँ।' श्रीठाकुरजी पूज्य बाबा की भावनाओं तथा मर्यादाओं से भली-भांति परिचित थे, अत: उन्होंने हलके से मुस्कराकर इस प्रसंग को टाल दिया। लगभग एक घण्टे बाद खाँसी आ जाने के कारण पूज्य बाबा की नींद भंग हो गईं। अपने पास श्रीमहाराजजी को देखकर पूज्य बाबा ने कहा- 'इस प्रकार का निर्मल स्नेह, इस प्रकार का अहैतुक प्यार जगत के धरातल पर देखने को कहाँ मिलता है?'

२२ अक्टूबर १९७७ को पूज्य श्रीमहाराजजी ने श्रीधामवृन्दावन के लिए प्रस्थान किया।

अगले वर्ष श्रीठाकुरजी वृन्दावन से एक मास पूर्व नवम्बर के आरम्भ में ही गोखपुर आ गये क्योंकि बाबा आगामी ७ दिसम्बर १९७८ से मौन व्रत लेने वाले थे। उसके बाद पता नहीं क्या परिस्थिति बने और पता नहीं महाराजजी के साथ फिर सम्मिलन सम्भाषण हो पाए या नहीं। बाबा के मौन हो जाने की सम्भावना से पूज्य श्रीमहाराजजी को बड़ी व्यथा हो रही थी। श्रीठाकुरजी का यह प्रयास था कि यदि बाबा से कोई समाधान मिल जाये तो श्रीमहाराजजी को बहुत संतोष हो जायेगा। श्रीठाकुरजी अवसर की टोह में थे कि तभी बाबा के नाम श्रीमहाराजजी का पत्र वृन्दावन से आया। इस पत्र को पूज्य बाबा के सामने पढ़ते समय श्रीठाकुरजी को जो कुछ देखने-सुनने को मिला, वह सब समाचार

लिखकर के पूज्य श्रीमहाराजजी के पास वृन्दावन भेज दिया। उस पत्र से पूज्य श्रीमहाराजजी को संतोष नहीं हुआ इसके बाद वृन्दावन से आदरणीया श्रीदेवीजी का एक पत्र श्रीठाकुरजी के पास गोरखपुर आया, वह इस प्रकार है।

श्री राधा

वृन्दावन

२४.११.१९७८

श्रीघनश्यामजी,

जय राधे।

आपका स्वास्थ्य ठीक ही होगा। पूज्य श्री महाराजजी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में तो मैं आपको लिख ही चुकी थी, पत्र आपको मिला ही होगा। अभी भी पूज्य श्रीमहाराजजी का ब्लड प्रेशर तथा शुगर कन्ट्रोल में नहीं है। जब तक वहाँ से पूज्य श्री बाबा का सान्त्वना युक्त उत्तर न आ जायेगा, तब तक ऐसी ही स्थिति बनी रहेगी। रात को २, ३ घण्टे क्या १ घंटा भी सुख से नहीं सोते। आपको तो मालूम ही है उनका स्वभाव। जिस बात की चिन्ता हो जाती है, बस उसी में निमग्न रहते हैं। आज श्री बंकाजी का पत्र आया, बड़ी ही उत्सुकता से सुना, परन्तु उन्हें संतोष नहीं हुआ, सान्त्वनामय उत्तर कुछ स्पष्ट रूप से नहीं था।

उनकी इच्छा है कि किसी भी प्रकार से पूज्य बाबा से स्पष्ट उत्तर लिया जाय। जिस समय पूज्या माँ (पूज्य श्री भाईजी की धर्मपत्नी) से मिलकर आते हैं, वह समय एकान्त का रहता है अथवा और कोई समय निकालकर आप स्पष्ट उत्तर लेने का प्रयास करें।

मैं तो क्या कहूँ? आप यहाँ उपस्थित रहते तो देखते श्री महाराज जी की दशा! बहुत ही चिन्तित रहते हैं तथा रस निमग्न। घूमकर आते हैं मानों कहीं नशा करके आये हैं, इन बातों का लिखना ही क्या, आपको सब पता ही है।

श्रीमहाराजजी की बस यही इच्छा है कि मेरे पत्र के उत्तर में स्पष्ट रूप से श्री बाबा कुछ कहें, जो कि सान्त्वना युक्त हो। ऐसी कोशिश आप तथा श्रीबंकाजी ही कर सकते हैं। आप प्रयत्न कर ही रहे होंगे। यदि इस विषय में कुछ भी प्रसंग श्रीबाबा ने न चलाया अथवा कुछ भी कहने का अवकाश न मिला और मौन हो गये तो भी महाराजजी की क्या मनोदशा होगी, वह तो कल्पना के परे की बात होगी। बहुत ही अशान्त हो जायेंगे। पत्र सुनकर कह रहे थे, अब वह क्या उत्तर देंगे, अब समय ही कहाँ है। ५, ६ दिन का समय बाकी है, बड़े गम्भीरभाव में तथा चिन्तित रूप में आज दीख रहे हैं। पत्र सुनते हुए भी लाल-लाल मुख हो रहा था। पत्र सुनने के पश्चात् प्रफुल्ल होना था, परन्तु और भी उदास-से हो गये हैं।

इसका समाधान तो विहारीजी ही जाने। हम तो ऊपर से सिर्फ दृश्य देख रहे हैं। यह जाने और वह जानें।

पूज्य श्री बाबा के चरणों में प्रणाम कहेंगे।

मौन होने के पहले स्पष्ट रूप से बातचीत करने का अवसर अवश्य निकालना।

रमा

गोरखपुर से प्रत्युत्तर स्वरूप एक पत्र भेजा गया जिसका कुछ अंश इस प्रकार है।

...'कल जो श्रीदेवीजी का पत्र आया, उसे पढ़कर हम सभी लोग बड़े विकल हो उठे। श्रीदेवीजी वाला पत्र श्री चोपड़ाजी को दे दिया गया कि अवसर मिले तो बाबा से बात कीजियेगा। मध्य रात्रि के समय बाबा के सोने के पूर्व श्री चोपड़ाजी ने वह पत्र बाबा को दिखलाया। बाबा ने कहा-ठाकुर को बुलाओ ? श्री चोपड़ा जी ने कहा-'वे तो सम्भवतः सो गये होंगे।' बाबा ने कहा-'मैं भी तो जग रहा हूँ। जाओ! उसे बुला लाओ।' श्रीचोपड़ाजी, ठाकुरजी को बुला लाये। ठाकुरजी के आते ही बाबा कहने लगे।-ठाकुर! देवीजी के इस पत्र को सुनकर मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि किस प्रकार श्रीमहाराज जी के हृदय में मैं अपनी भीतरी बात उतार दूँ। यह कभी संभव ही नहीं कि उनसे मेरा अलगाव हो। अब तुम यह बताओ कि वे चाहते क्या हैं?'

ठाकुरजी ने कहा-'आपके इस मौन का पर्यवसान महाप्रस्थान के रूप में होगा, इसे सुनकर श्रीमहाराजजी अति व्यथित हैं। आपने कहा था कि मेरा शरीर अभी कई वर्ष रहेगा। आपके कथन के अनुसार आपकी अवस्थिति बनी रहे। सर्व प्रथम श्रीमहाराजजी यही बात चाहते हैं।'

बाबा ने कहा-'ठाकुर! मैं कैसे कह दूँ कि मेरा शरीर रहेगा ही। मुझे स्वयं ज्ञात नहीं है कि इस कठोर मौन के लिये नीलसुन्दर ने मेरा आह्वान क्यों किया है। मैंने उनसे कह भी दिया था कि वे मुझे आह्वान का हेतु न बतलायें। अधिकतम सम्भावना है कि ७ दिसम्बर को वह हेतु मुझे

बतला दिया जाये। इस मौन की अवधि में मेरा शरीर रहेगा या नहीं, ये दोनों ही सम्भावनाएँ सर्वथा समान हैं।'

ठाकुर जी ने बाबा से पूछा–'मौन लेने के हेतु का परिज्ञान आपको दिसम्बर के बाद हो जायेगा। ७ दिसम्बर के बाद आप उस हेतु को नहीं बतला सकते क्या?

बाबा नेकहा–'मैं इस प्रकार का कोई संकल्प लेकर मौन लेना नहीं चाहता। जब विदाई ही लेनी है, फिर किसी प्रकार का संकल्प मन में क्यों हो या किसलिये रहे?'

ठाकुर जी ने पुनः निवेदन किया– 'श्रीमहाराज जी की व्यथा का दूसरा हेतु है कि आप मौन के बड़े कठोर नियम ले रहे हैं। यदि इसमें थोड़ी शिथिलता रहे तो सभी को कुछ समाधान हो जायेगा।

बाबा ने समझाने का प्रयास किया– 'जिस महान हेतु के लिये मेरा आह्वान किया गया है, उसमें किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित न हो, इसी कारण नियमों की यह कठोरता है। यह बात मेरे बस की नहीं है कि मैं नियमों में ढील दे दूँ।

पुनः प्रातःकाल ठाकुरजी के आते ही बाबा ने बात छेड़ दी– 'ठाकुर! रात भर मुझे श्री महाराजजी की चिन्ता बनी रही। महाराजजी को कैसे विश्वास दिला दूँ कि मैं उनसे अलग होऊँगा ही नहीं। मेरा और उनका जो सम्बन्ध है, यह अचिन्त्य है। मैंने उनको जिस दृष्टि से देखा है, दृष्टि की वह निर्मलता और पवित्रता ज्यों की त्यों है। महाराज जी को मैं जिस स्तर से देखता हूँ, वह मेरा हृदय ही जानता है। उनसे कभी वियोग की सम्भावना है ही नहीं। यह मैं कैसे बताऊँ कि श्रीमहाराजजी की व्यथा से

मेरा मन कितना विकल है, पर एक बात सही है कि भगवान श्रीकृष्ण उनकी जिज्ञासा का अवश्य समाधान करेंगे।'

बाबा बार-बार कह रहे थे कि शरीर के बने रहने अथवा चले जाने के सम्बन्ध में दोनों सम्भावनाएँ समान हैं, पर बाबा द्वारा ऐसा कह दिये जाने के बाद भी उनके कहने के ढंग से तथा उनके मुख की मुद्रा से यह स्पष्ट लग रहा था कि अभी बाबा का शरीर रहेगा। बस, बाबा शब्दों में स्वयं को बाँधना नहीं चाह रहे थे। बातचीत से इस प्रकार की आशा की कुछ किरणें तो बिखरी ही हैं और एक प्रकार से प्रच्छन्न आश्वासन मिला ही है।'

गोरखपुर से २६.११.१६७८ को जो पत्र आया, उसके वृन्दावन पहुँचने के पहले ही श्रीमहाराज जी की तबीयत इतनी अधिक खराब हो गयी कि उन्हें वृन्दावन के श्रीरामकृष्णमिशन अस्पताल में १ दिसम्बर १६७८ के दिन भर्ती कराया गया। अस्पताल में महाराजजी जब तक रहे, तब तक वे सामान्यतः प्राकृत धरातल पर रहे ही नहीं। इस अवधि में दिनाँक ३, ४ और ७ दिसम्बर को उन्हें विशेष अनुभूति हुई। भावाविष्ट अवस्था मे उन्हें अनुभव हुआ कि वे गोरखपुर की गीतावाटिका में हैं और उसी कुटिया में हैं जिसमें उन्हें हर बार ठहराया जाता था। वे उस कुटिया से अत्यन्त स्फूर्ति पूर्वक चलकर पूज्य बाबा की कुटिया 'नेह निकुञ्ज' पर पहुँच गए हैं। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि पूज्य बाबा अपने वास्तविक भाव स्वरूप में, अर्थात् महाभावस्वरूपा श्रीराधारानी के रूप में गम्भीर विचार करते हुए अपनी कोमल शैय्या पर लेटे हुए हैं। उन्होंने अपने कपोल पर एक अँगुली रख रखी है, जिससे उनकी छवि

और मुद्रा विलक्षण रूप से मनोहारिणी बन गई है। उनके निकट एक नव किशोरी सखी भी स्थित है। महाराजजी को सहसा आये हुए देखकर पूज्य बाबा ने लेटे-लेटे ही अपने चरण दूसरी ओर सरका लिये जिससे वे महाराजजी की ओर न रहें। पूज्य महाराजजी को एक और छवि दिखलायी दी कि पूज्य बाबा की कुटिया नेह निकुञ्ज में प्रियतम साँवर खड़े हैं। प्रियतम साँवर के शीश पर मोर मुकुट नहीं है। उसके स्थान पर पीले पुष्पों की माला है, पर उनके भाल पर कस्तूरी तिलक नहीं है और उनके श्रीमुख कमल की कान्ति कुम्हलायी हुई है। वह म्लान कान्ति ही संकेत दे रही है कि प्रियतम साँवर ने मान कर लिया है और उनके मान का कारण है अपनी प्रियतमा प्राणेश्वरी का मौन-व्रतवाला विपरीत निर्णय।

साँवर की इस मान-दशा का भान होते ही पूज्य श्री महाराज जी को यह लगने लगा कि मेरी बात निःसन्देह बन जायेगी। शीघ्र ही मान-मोचन होगा और साँवर को प्रसन्न करने के लिए महाभावनिमग्न बाबा को वही करना होगा जो मेरा अभीप्सित है।

तभी एक क्षण के लिए पूज्य बाबा अपने बाह्य स्वरूप में अर्थात् गैरिक वस्त्रधारी बाबा के रूप दिखलायी दिये और उनके समीप बैठी हुई नव किशोरी के स्थान पर श्रीठाकुरजी (ठाकुरश्रीघनश्याम जी) बैठे हुए दिखे। उन्होंने श्रीठाकुरजी की दृष्टि से दृष्टि मिला रखी थी। उसी समय पूज्य महाराजजी ने पूज्य बाबा से कहा-'आपकी एक बात समझ में नहीं आती।'

पूज्य बाबा ने पूछा-क्या ?

महाराजजी कुछ बोलें, बीच में ही श्रीठाकुरजी बोल उठे-'एक तरफ तो आप ऐसा कहते हैं कि श्रीमहाराजजी की आँखों में प्रारम्भ से ही पूज्य बाबूजी के प्यार की झलक मिलती है और दूसरी तरफ आप विपरीत निर्णय भी ले लेते हैं। इसीलिए महाराजजी की आँखें सदा सजल रहती हैं। आप इनकी ओर देखिए तो सही!'

श्रीठाकुरजी के ऐसा कहते ही पूज्य बाबा अश्रुपूर्ण लोचनों से महाराजजी की ओर एकटक देखने लगे। तब महाराजजी ने कहा-'आपने कई बार कहा है कि मेरी दृष्टि में प्रकृति या प्रपंच है ही नहीं। एक ओर तो आप ऐसा कहते हैं और दूसरी ओर आप कहते हैं कि मैं प्रकृति-प्रपंच से हटने के लिए मौन ले रहा हूँ। आप ऐसी विरोधी बात क्यों कहते हैं? आप तो प्रकृति से अतीत दशा में -साऽहम्' (अर्थात् श्री राधा) हैं। फिर तो आपके लिए मौन और मुखरता का, दोनों का समान महत्व है। हम लोग यही चाहते हैं कि आप यहाँ चिरकाल तक विराजे रहें। वह विराजना भी बहुत अन्तर्मुखी बे-भान स्थिति में नहीं, अपितु इसी प्रकार से सहज स्वाभाविक रूप में हो। आप सभी को सहज स्वभाविक रीति से उपलब्ध रहें। मेरा तो निवेदन यह है कि आप अभी कम से कम तेरह चौदह वर्ष सबको आनन्द प्रदान करते हुए विराजे रहें।'

इन शब्दों को सुनकर पूज्य बाबा प्यार भरी दृष्टि से धीमे-धीमे स्वर में कहने लगे-'वे आपको स्वतः सब कुछ सही-सही समझा देंगे।'

इसके बाद श्रीमहाराजजी को जब चेतना आई तो उन्होंने अपने को वृन्दावन के रामकृष्ण मिशन अस्पताल के वार्ड में पाया। दिनाँक ४

दिसम्बर का दिवस भी भाव की गहरी स्थिति में व्यतीत हुआ। पूज्य महाराजजी को भावदशा में ऐसा दिखलायी दिया कि गोरखपुर की गीतावाटिका बहुत अच्छी तरह सुसज्जित है। मुख्य द्वार से लेकर बाबा की कुटिया तक कदली स्तम्भ प्रस्थापित किये गये हैं। पुष्पों की माला स्थान-स्थान पर परिशोभित हो रही है। पुष्पों को वसन्ती रंग के धागे में गुम्फित करके सुन्दर बन्दनवार बनायी गयी है और इससे सम्पूर्ण गीता वाटिका को समलंकृत किया गया है। समाधि परिसर को विशेष रूप से सजाया गया है। प्रवेश द्वार से लेकर बाबा की कुटिया 'नेह निकुञ्ज' तक जाने वाला पथ सुन्दर है। पथ की धूलि कण मृदुल मञ्जुल हैं। पुष्पों की वर्षा होने से यह पथ पुष्पों से अत्यधिक और आद्यन्त समाच्छादित है। यह सारा दृश्य अत्यन्त आह्लाद का सूचक था।

जब इस भावानुभूति की सरस धारा में विराम आया तो पूज्य महाराज जी ने स्वयं को वाह्य दशा में अस्पताल की बेड पर पाया। भाव की दशा में अब तक जो भी अनुभव में आया, उसकी स्मृति से मन अत्यधिक विस्मय में था पर भावानुभूति की सरस धारा में विराम आ जाने से हृदय में व्यथा भी कम नहीं थी।

अस्पताल के प्राइवेट वार्ड में उस समय जो लोग पूज्य श्रीमहाराज जी की सेवा-परिचर्या में संलग्न थे, उन लोगों से पूज्य श्रीमहाराजजी ने कहा-'जानते हो कि गीता वाटिका में क्या हो रहा है?'

सुश्रीकुसुमजी ने कहा-'हो क्या रहा होगा? पूज्य बाबा ने मौन ले लिया होगा और अब वहाँ सन्नाटा होगा'। पूज्य महाराजजी ने कहा-'सन्नाटा नहीं, इस समय परिक्रमा हो रही है।

इनके ऐसा कहते ही तारीख तथा घड़ी देखकर समय लिख लिया गया। बाद में पूछताछ करके मिलान करने पर पता चला कि सात दिसम्बर को पूज्य बाबा की गिरिराज परिक्रमा उसी समय पर हुई थी। इस सकारात्मक समाधान के मिलने पर स्थूल स्तर पर प्रत्यक्ष चमत्कार यह हुआ कि महाराज जी के स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार परिलक्षित होने लग गया और शरीर की पीड़ा क्रमशः प्रशमित होने लग गयी। बाद में पूज्य श्रीमहाराजजी के पास श्रीठाकुरजी ने एक पत्र लिख करके भेजा। श्रीठाकुरजी यही चाह रहे थे कि पूज्य श्रीमहाराजजी को किसी भी प्रकार से कुछ-न-कुछ सान्त्वना मिल जाए। श्रीठाकुरजी ने सांकेतिक भाषा में व्यक्त करते हुए पत्र में लिख दिया कि पूज्य बाबा ने कहा है कि महाराजजी से मेरी ओर से निवेदन कर देना कि श्रीकृष्ण जैसा चाहेंगे, वैसा करवा लेंगे। मेरा अपना कोई आग्रह नहीं है।

इस पत्र को पढ़कर पूज्य महाराजजी को एक अवलम्बन मिला। पत्र पढ़ते ही उन्होंने ताली बजायी और उल्लसित स्वर में बोल पड़े-'काम हो गया। पूज्य बाबा ने श्रीकृष्ण की जो ओट ली है, वह तो मेरी वस्तु हैं। उन पर मेरा अधिकार है।'

६-१२-१९७८ बुधवार की शाम को गोरखपुर में श्रीबाबा स्नान के पूर्व थोड़ी देर एकान्त में बैठे थे। श्रीठाकुरजी को अवसर मिल गया। गुरूवार को ब्राह्म मुहूर्त में पूज्य बाबा मौन लेने वाले थे अतः बहुत भीड़ थी एकान्त के लिये समय ही नहीं मिल पाता था। ठाकुरजी ने पूज्य बाबा से पूछा-'क्यों बाबा! वृन्दावन जाकर क्या ऐसा श्रीमहाराजजी से कह दूँ कि जब आप श्रीराधाष्टमी पर गोरखपुर आयेंगे तो आपसे पूज्य बाबा

आँख मिला सकते हैं? यदि इतना भी उनके प्रति हो सके तो उनको बड़ी सान्त्वना मिल जायेगी।'

श्रीठाकुरजी की इस बात को सुनकर पूज्य बाबा ने कहा-'भईया! मैं कैसे इसके लिये 'हाँ' कह दूँ? श्रीकृष्ण ने तो केवल मैय्या से आँख मिलाने की छूट दी है। मुझे समझ में नहीं आता कि श्री महाराजजी को किस प्रकार आश्वस्त करूँ? पर ठाकुर! वे श्रीकृष्ण बड़े ही स्नेही हैं, बड़े ही सुहृद हैं। वे अवश्य ही किसी न किसी प्रकार से श्रीमहाराजजी के संतोष और सान्त्वना के लिये कोई उपाय रखेंगे। उनकी योजना ही मेरी योजना है।'

अपने निश्चय के अनुसार पूज्य बाबा ने सात दिसम्बर को मौन-व्रत ले लिया। कुछ दिन वहाँ रहकर श्रीठाकुरजी श्रीधाम वृन्दावन वापस आ गए। यहाँ आकर एक पत्र गोरखपुर भेजा।

उस पत्र का आवश्यक अंश इस प्रकार है, जिसमें पूज्य श्री महाराजजी की रसमयी स्थिति की एक भावभीनी झलक है :-

'... परमपूज्य श्रीबाबाजी का नियमित कार्यक्रम प्रारम्भ हो ही गया। धीरे-धीरे स्वास्थ्य भी ठीक हो ही जायेगा। मेरा २३ तारीख को आना पक्का था, पर अब २५ तारीख को दिल्ली जाना अनिवार्य है। अब इधर का सुनो। पूज्य श्रीमहाराजजी का स्वास्थ्य अत्यन्त खराब हो गया था। किसी तरह एक दवाने लाभ किया। परीक्षण कराने पर पता चला कि किडनी में गड़बड़ है। अब शीघ्र ही दिखाने के लिए कार से देहली जाने का विचार है। श्रीमहाराजजी परम प्रसन्न हैं किन्तु अभी कमजोरी बहुत अधिक है। अस्वस्थता का मूल कारण तो तुमको पता ही है।

उसी-उसी में ये सब उपद्रव हो गये। रामकृष्णमिशन अस्पताल के प्राईवेट वार्ड में ही पूज्य श्रीमहाराजजी और पूज्य श्रीबाबा की भाव-दशा में कुछ गम्भीर चर्चा हुई, जिसके अस्फुट शब्द, जो बेहोशी में निकले थे, वे श्रीमनोहरजी ने नोट कर लिए हैं। वह सब तो आने पर अर्थात् मिलने पर ही बता सकूँगा। वहाँ के (अर्थात् गीतावाटिका के) सब समाचार पूछते-पूछते अघाते नहीं हैं। कुछ अत्यन्त संतोषपूर्ण वार्ता पूज्य बाबा ने की है, ऐसा लगता है।'

बाद मे गीतावाटिका गोरखपुर से जो समाचार आए उनसे पता चला कि पूज्य बाबा ने मौन व्रत के कठोर नियमों में कुछ शिथिलता कर दी है यही पूज्य महाराजजी को अभीष्ट था। उन्होंने संवरण लीला को भी स्थगित कर दिया और भक्तों के बीच लगभग तेरह-चौदह वर्ष तक विराजते रहे।

पूज्य बाबा श्रीठाकुरजी से कहते-'ठाकुर तुमसे तो हम हार गए। मेरा तुम्हारे ऊपर स्नेह अब और अधिक बढ़ गया है क्योंकि तुम श्रीमहाराजजी एवं मेरे बीच संदेशवाहक बन गए हो यहाँ के समाचार वहाँ और वहाँ के समाचार यहाँ प्रदान करते रहते हो।' इसप्रकार श्रीठाकुरजी इन दोनों महापुरुषों के मध्य सेतु बनकर परस्पर की भाव सरिता को सरसाने का कार्य करते रहे।

*****

१३ संतो के स्नेह भाजन

श्रीठाकुरजी को संतों के निकट जाने में भय या संकोच बिल्कुल नहीं होता था। वे बड़े-बड़े उच्चकोटि के संतों के पास बेहिचक चले जाते और उनके स्नेहपात्र बन जाते। पूज्य श्रीभाईजी, पूज्यश्रीराधा बाबा एवं श्रीमहाराजजी के स्नेह से तो इनका समग्र जीवन ही अभिसिञ्चित था। इसके आलावा भी अनेक महापुरुष श्रीठाकुरजी पर स्नेह रखते थे। जिनमें पूज्यश्री हरिबाबाजी महाराज, पूज्या माँ आनन्दमयी, पूज्य स्वामी शरणानन्दजी महाराज, श्रीश्रीराधासर्वेश्वर शरण देवाचार्यजी महाराज से सम्बन्धित प्रसंग पिछले पृष्ठों में दिए जा चुके हैं। कुछ अन्य संतों से संबन्धित बातें आगे दी जा रही हैं।

एक संत थे बाबा सुबलदासजी महाराज। ये श्रीराधाकुण्ड में बड़े ही गुप्तरूप से रहकर भजन किया करते थे। ये जिस कुटिया में रहते थे, उसके चारों ओर सघन झाड़ियों का एक बाड़ा बना हुआ था। बीच में एक छोटा सा दरवाजा था। जो सदा बंद रहता था। कोई भी भीतर जा नहीं पाता था। भीतर अपनी कुटिया में बैठकर ये लीलारस में तन्मय रहते थे। कभी-कभी तीन-तीन महीनों तक बाड़े से बाहर नहीं आते थे। इनके सेवक समय पर इनके लिए भिक्षा की व्यवस्था कर देते थे। आसपास भजनानंदी साधु के रूप में इनकी बड़ी ख्याति थी। इन्हें खुले नेत्रों से लीलादर्शन होता था। घोर ठंड में भी लीला के आवेश में उनकी देह से पसीना निकलता था। एकबार श्रीठाकुरजी को उनकी कुटिया तक पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बाहर से ही उन्होंने एक पद उच्च

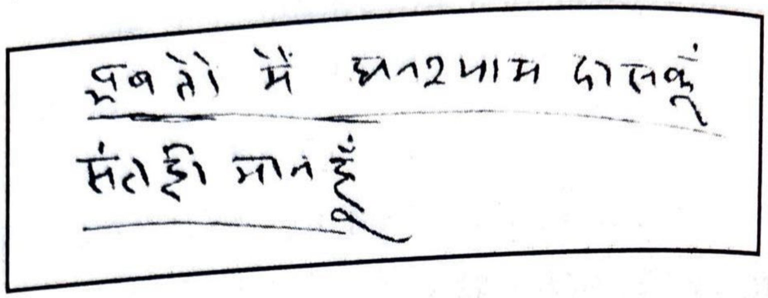
स्वर से गाया। पद सुनते ही बाबा सुबलदासजी कुटिया से बाहर निकल आए और प्रसन्न होते हुए श्रीठाकुरजी का हाथ पकड़ लिया फिर अपनी कुटिया के पीछे बने हुए छोटे से गुप्त रास्ते को दिखाते हुए कहा–'तुम जब भी श्रीगिरिराजजी आया करो, इस जगह से मेरे बाड़े के अन्दर आ जाया करो और मुझे पद सुना जाया करो। तुम्हारा पद सुनकर मुझे बहुत अच्छा लगा है।' तब से जब भी श्रीठाकुरजी श्रीराधाकुण्ड जाते तो श्रीसुबलदास बाबा की कुटिया में बने पीछे वाले मार्ग से कूदकर अन्दर चले जाते और ब्रजभाव के पद सुनाते।

सचल गिरिराज स्वरूप संत प्रवर पूज्य पंडित गयाप्रसादजी महाराज का श्रीठाकुरजी के प्रति बड़ा वात्सल्य भाव था। एकबार पूज्य पंडित का श्रीधाम वृन्दावन आगमन हुआ। श्रीठाकुरजी एक कोठरी में रहकर भजन करते थे। पूज्य पंडितजी, श्रीठाकुरजी के पास गए। संयोग से उस समय पूज्य श्रीमहाराजजी भी वहाँ पर उपस्थिति थे। दोनों संतों ने कुछ देर भगवत् चर्चा की। चलते समय पूज्य पंडितजी ने श्रीठाकुरजी का हाथ पूज्य महाराजजी के हाथ में थमाते हुए कहा कि इन्हे मैं आपको सौंप रहा हूँ। इनका ध्यान रखिएगा। हमें इनसे बहुत आशा है। पूज्य महाराजश्री ठाकुरजी के प्रति उनके स्नेह को देखकर गद्‌गद हो गए।

साधकों के मध्य चर्चा में पूज्य पंडितजी महाराज कहा करते थे कि ये संतों के सुखवर्धन हेतु ही जन्में हैं। इनमें संसार के लेशमात्र का भी प्रवेश नहीं है। एक तो भजन के मार्ग पर चलना ही कठिन है, उसपर संत की कृपा मिलना तो और कठिन है। यदि संत की कृपा प्राप्त भी हो जाए, तो उसे पचाना बहुत कठिन है। इनपर तो तीन-तीन महापुरुषों (श्रीभाईजी, श्रीराधाबाबा व श्रीमहाराजजी) की कृपा भई है। इन्होंने

तीनों संतों के प्रति अपना समर्पण निभाया है।

एकबार एक साधक को पत्र लिखते समय उन्होंने अपनी लेखनी द्वारा यह बात प्रकट की- **'अब तो मैं घनश्याम दास कूँ संत ही मानू हूँ।**


अब तो मैं घनश्याम दासकूं
संत ही मानू हूं

एक संत ऋषीकेश में गंगा जी के किनारे बालुका में पड़े रहा करते थे। लोगों के मध्य ये मस्तराम बाबा के नाम से विख्यात थे। अपने ऋषीकेश प्रवास के समय श्रीठाकुरजी प्रायः इनके दर्शनार्थ जाया करते थे। श्रीठाकुरजी को देखकर ये संत बहुत प्रसन्न होते थे। वे कहते- 'मैं वेदान्त सिद्धान्त को जानता हूँ जो यशोदा के आँगन में धूलि धूसरित होकर लोट रहा है।' ऐसा कहते समय वे अश्रु पुलक से भर जाते थे। ठाकुरजी को इनकी ब्रह्मानन्द में निमग्न आरक्तपूर्ण आँखों को देखकर बड़ा सुख मिलता था। वे ठाकुरजी से कहा करते थे कि बेटा ब्याह मत करना, अपने जीवन को भजन में लगाना।

काश्मीर के परम सिद्ध संत स्वामी लक्ष्मणजू महाराज की श्रीमहाराजजी से बड़ी आत्मीयता थी। दोनों संतों की प्रथम भेंट बरसाने में हुई। पूज्य लक्ष्मणजू महाराज की एक शिष्या सुश्री कमला बाबा के आग्रह पर वे बरसाने की लट्ठमार होली देखने आए थे। परम पूज्य श्रीमहाराजजी भी उसदिन बरसाने गए थे। स्वामीलक्ष्मणजू महाराज ऊपर श्रीजी मंदिर के प्रांगण में बैठे थे। इधर पूज्य महाराजजी,

श्रीठाकुरजी व अन्य परिकर नीचे मंदिर की सीढ़ियों पर स्थित श्रीदाऊ जी मंदिर में बैठे थे। श्रीठाकुरजी, स्वामीलक्ष्मणजू महाराज को लेने ऊपर श्रीजी के मंदिर में गए। श्रीठाकुरजी ने स्वामी लक्ष्मणजू महाराज को पहले कभी देखा तो था नहीं, वहाँ भीड़ में अनेक संत आए हुए थे, पहचानने में भूल हो सकती थी। लक्ष्मणजू महाराज का वेष भी सामान्य पजामा कुर्ता ही था किन्तु ऊपर पहुँचते ही ठाकुरजी की पैनी निगाह ने बिना किसी से पूछे उस भीड़ में से उन्हें ढूँढ़ लिया। ठाकुर जी ने सीधे जाकर उनके चरणों में प्रणाम किया और अपना परिचय देते हुए कहा कि श्रीमहाराजजी आपके दर्शनार्थ नीचे विराज रहे हैं। स्वामीजी अति प्रसन्न मुद्रा में बोले-'आपने पहले तो कभी मुझे देखा नहीं, फिर इतनी भीड़ में मुझे कैसे पहचाना।' श्रीठाकुरजी बोले-'आप भीड़ से एकदम अलग हैं।' इनका उत्तर सुनते ही वे खिलखिलाकर हँस पड़े और उन्हे गले से लगा लिया।

एक महात्मा, जो कि श्रीफक्कड़बाबा के नाम से प्रसिद्ध थे, वृन्दावन की गलियों में जहाँ-तहाँ पड़े रहते थे। ये श्रीठाकुरजी को उनके स्वरूपाई के समय से जानते थे। श्रीठाकुरजी के त्याग एवं तितिक्षापूर्ण रहनी की चर्चा सुनकर ये एकबार श्रीठाकुरजी से स्वयं चलकर मिलने आए। उन दिनों श्रीठाकुरजी जुगल घाट के निकट श्रीवासुदेव लोहिया के खण्डहरनुमा मकान में रहते थे। यहाँ श्रीठाकुरजी की तपश्चर्यापूर्ण रहनी देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। कुछ देर साधन सम्बन्धी चर्चा कर वे चले गए।

श्रीठाकुरजी के समकालीन संतों में श्रीपादजी महाराज बड़े प्रसिद्ध थे। श्रीठाकुरजी का व श्रीपादबाबा का परिचय तब से था जबकि

श्रीठाकुरजी बरसाने में रहकर एकान्त में भजन करते थे। उस समय श्रीपाद बाबा गहवरवन के मानमंदिर क्षेत्र में प्राय: ध्यानस्थ रहा करते थे। श्रीठाकुरजी की और उनकी केवल मंद मुस्कान से या नेत्रों से ही बातचीत होती थी। कुछ वर्षों बाद श्रीठाकुरजी की उनसे भेंट हुई मथुरा के श्रीद्वारिकाधीशजी मंदिर पर जहाँ कुछ भक्तों के साथ दर्शन हेतु श्रीठाकुरजी पहुँचे थे। पूज्य श्रीपादबाबा उनदिनों वहीं साधना निमग्न रहा करते थे। श्रीठाकुरजी को देखते ही वे पास आए और कुशलक्षेम पूछने के बाद उनका हाथ पकड़कर भीड़ को चीरते हुए सबसे आगे ले जाकर श्रीविग्रह के दर्शन करवाए तथा बहुत सा प्रसाद दिलवाकर उन्हें बिदा किया। बाद में पूज्य श्रीपाद बाबा, पूज्य श्रीमहाराजजी की सन्निकटता में आए तब श्रीठाकुरजी की सेवापरायणता से वे बहुत प्रभावित हुए।

संतश्री ठाकुरदास बाबा गोवर्द्धन धाम की महान विभूतियों में एक थे। परमपूज्य संत पंडित गयाप्रसादजी महाराज के प्रधान पार्षद श्रीठाकुरदास बाबा का श्रीठाकुरजी के प्रति बहुत ही सम्मान का भाव था। श्रीठाकुरजी यदि कभी बड़ी विनम्रता पूर्वक उनसे कुछ निवेदन करते तो वे उसे संत आज्ञा मानकर स्वीकार करते। जब कभी श्रीठाकुरजी से श्रीगोवर्द्धन धाम में भेंट होती तो वे श्रीठाकुरजी को दूर से ही साष्टाङ्ग प्रणाम किया करते। श्रीठाकुरजी उनके अद्‌भुत दैन्य को देखकर बड़े ही संकोच में गड़ जाते। उनके बार-बार मना करने पर भी श्रीठाकुरदास बाबा उनके जाने के बाद पीछे से उस भूमि को साष्टाङ्ग प्रणाम कर देते जिस स्थान पर श्रीठाकुरजी खड़े होते थे।

श्रीठाकुरजी की गुरुनिष्ठा, नाम निष्ठा, उपासनात्मक रस गंभीरता

एवं कसी हुई रहनी की प्रशंसा अनेक संत किया करते थे। संतश्रीगणेशदासजी भक्तमाली, आचार्यश्रीकृपाशंकरजी महाराज (अयोध्या), संत श्रीनारायणदासजी भक्तमालीजी (मामाजी, बक्सर वाले) का भी ठाकुरजी से बड़ा स्नेहपूर्ण सम्बन्ध रहा। इनके अलावा ब्रज की विभूति संत श्रीउषा बहनजी, दैन्यमूर्ति संत संतोषबहिन जी, प्रेममूर्ति संत धर्म बहनजी, पूज्यभाईजी व पूज्यबाबा की परम कृपापात्रा संत रुक्मिणी बाई, संतश्रीललितजी आदि भी श्रीठाकुरजी के उज्वल जीवन की बड़ी सराहना करती थीं।

बड़वानी में संकीर्तन

सन् १९८४ में पूज्य श्रीमहाराजजी ने बड़वानी (मध्य प्रदेश) के भक्तों को अष्टमासीय अखण्ड हरिनाम संकीर्तन के लिये प्रेरित किया। यह आयोजन अत्यन्त सफल रहा। पूरा बड़वानी संकीर्तन के रंग में रंग गया। जन-जन में स्फूर्ति का संचार हो गया और आठ माह की बजाय पूरे साढ़े दस माह तक संकीर्तनोत्सव चला। स्थानीय भक्तों को प्रारम्भ में यह आशंका थी कि इतने दिनों तक संकीर्तन कैसे चल पाएगा। बाहर से इतने लोग आएँगे सबके लिए रहने खाने की व्यवस्था कैसे होगी? पैसा कहाँ से आएगा? अधिकाँश लोगों का संकीर्तन से प्रायः नवीन परिचय था। वे इसकी शैली से अनभिज्ञ थे किन्तु पूज्यश्रीमहाराजजी व श्रीठाकुरजी ने वहाँ एक-एक माह तक रुककर अति सरस व मधुर-मधुर रागों में संकीर्तन कराकर लोगों के अन्दर संकीर्तन के प्रति रुचि जाग्रत कर दी। श्रीठाकुरजी का संकीर्तन बड़ा ही चित्ताकर्षक होता था। कठोर हृदय भी द्रवीभूत हो जाते थे। संकीर्तन के मध्य श्रीठाकुरजी की उन्मुक्त हँसी व भाव विभोर मुखमुद्रा तथा बीच-बीच

में उच्च स्वर में 'हरि बोल-बोल हरि' की ध्वनि को सुनकर तथा पूज्यमहाराजश्री की मन्द मनोहर हास्यपूरित झूमती छवि के दर्शनकर जनसमुदाय सहज ही संकीर्तन में प्रवृत्त होने लगा। संगीत के अनेक कलाकार दूर-दूर से आकर इस संकीर्तन महायज्ञ में सहयोग देने लगे। अनेक चमत्कार घटित हुए। अर्थ के लिए किसी को चिंता नहीं करनी पड़ी सारे कार्य सहज ही सम्पन्न होते रहे।

श्रीठकुरी बाबू को दिए वचन की पूर्ति

ठाकुरजी की स्वरूपायी में जब रासमण्डली पहली बार गोरखपुर गई थी तो वहाँ उसे श्रीठकुरीबाबू (श्री भाईजी के एक कृपापात्र) के यहाँ ठहराया गया था। पूज्य बाबा के कहने से एकदिन ठकुरी बाबू की बगीची में भी रासलीला का आयोजन हुआ था। ठकुरी बाबू का श्रीठाकुरजी के प्रति वात्सल्य भाव हो गया था। वे उन्हें 'ल़ाला' कहा करते थे। एकबार श्रीठाकुर जी गोरखपुर गए तो श्रीठकुरी बाबू ने उनसे कहा-'लाला जब मेरा शरीर पूरा हो तो तुम उपस्थित रहना।' पूज्य राधाबाबा के सामने ठाकुरजी ने उनको वचन दे दिया था। अब कालक्रम से उन्हें वह बात विस्मृत हो चुकी थी। कई वर्षों बाद संयोगवश जब श्रीठाकुरजी, श्रीमहाराजजी के साथ गोरखपुर में थे और वापस वृन्दावन जाने के लिए पूज्य बाबा को प्रणाम करने आए तब पूज्य बाबा ने कहा- ठाकुर, उजला कुर्ता पहनकर आए हो, लगता है वृन्दावन जाने की तैयारी हो रही है। ठाकुर, क्या तुम्हारा कार्यक्रम तीन-चार दिन और टाला नहीं जा सकता। मेरा मन तो चाह रहा है कि श्रीमहाराजजी अभी तीन चार दिन और रुक जाएँ। ठाकुरजी ने बात मान ली और महाराजश्री से निवेदन करके चार दिन के लिए अपना कार्यक्रम स्थगित

कर दिया।

इधर दूसरे ही दिन श्रीठकुरी बाबू का स्वास्थ गंभीर हो गया। श्रीठाकुरजी भी उनसे मिलने गए। अभी वे मिलकर लौटे ही थे कि उनके पधारने का समाचार प्राप्त हुआ। तब श्रीठाकुरजी ने उन्हें कंधा दिया। बाद में पूज्य राधाबाबा ने ठाकुरजी को स्मरण दिलाया कि उन्होंने ठकुरी बाबू को आश्वासन दिया था कि उनके अंतिम समय पर उपस्थित रहेंगे। तब श्रीठाकुरजी यह बात समझ पाए कि बाबा ने उन्हें तीन-चार दिन और क्यों रोका ?

*****

१४ पूज्य राधाबाबा का महाप्रयाण

एकबार पूज्य बाबा ने बताया कि पोद्दार महाराज ने उनसे कहा था-'बाबा मेरे चले जाने के बाद आप सावित्री की माँ (पूज्य भाईजी की धर्मपत्नी) की सँभाल करते रहिएगा।' तब उन्होंने श्रीभाईजी को इस बात के लिए आश्वासन दे दिया था। सन् १९८५ के बाद से पूज्य राधा बाबा विशेष अन्तर्मुख होते चले गए। श्रीभाईजी को पूर्व में दिए गए अपने वचनानुसार वे पूज्या मैय्या के शरीर रहने तक काल की बाट जोह रहे थे।

सन् १९९२ की ४ सितम्बर को श्रीराधाष्टमी महोत्सव और पूज्यभाईजी के जन्मशताब्दी महोत्सव के अवसर पर अनेक संत एवं विद्वानों का शुभागमन हुआ था। पूज्य श्रीमहाराजजी भी इस अवसर पर उपस्थित थे। उत्सव निर्विघ्न सम्पन्न हो जाने के बाद पूज्य महाराजजी वृन्दावन के लिए प्रस्थान करने वाले थे, परन्तु पूज्या माँ की अस्वस्थता के कारण यात्रा का विचार स्थगित करना पड़ा। पूज्या माँ बहुत दिनों से अस्वस्थ चल रही थीं। उनकी रुग्णता का वर्तमान चिन्ताजनक रूप यथार्थ के रूप में घटित हो गया। २६ सितम्बर को वे नित्य लीला में प्रवेश कर गई। पूज्य महाराज जी ने ३० सितम्बर को वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया।

वृन्दावन पहुँचने के कुछ दिनों पश्चात ही १३ अक्टूबर को पूज्य बाबा के 'अन्तर्हित' होने का अशुभ समाचार भी पहुँच गया। १३ अक्टूबर को अचानक घटित इस घटना का अनुमान किसी को नहीं था

कि बाबा श्रीभाईजी को दिए गए वचन का पालनकर इतनी शीघ्रता से लीला संवरण कर लेंगे। श्रीमहाराजजी व ठाकुरजी अभी पूज्या मैय्या के अंतिम संस्कार में सम्मिलित होकर आए ही थे कि पुनः बाबा के धाम गमन की सूचना पाकर व्यथित हो गए और तत्काल गोरखपुर रवाना हुए।

पूज्य महाराजजी की उपस्थिति में १४ अक्टूबर १९९२ के अपराह्नकाल में पूज्य बाबा को 'चिर विश्राम' के लिए उनके 'नेह-निकुञ्ज' की परम पावन स्थली के भूमि-गर्भ में विराजित कर दिया गया। बाबा के इस अंतिम कार्य को सम्पन्न करते समय श्रीठाकुरजी अत्यधिक भाव विह्वल थे। पूज्य बाबा के विछोह से पूज्य श्रीमहाराजजी का हृदय भी विदीर्ण था। श्रीठाकुरजी को पूज्य बाबा द्वारा पूर्व में कही गई वे बातें स्मरण हो रही थीं, जिसमें एकबार उन्होंने भविष्य के घटनाक्रम को संकेत करते हुए कहा था कि उन्हें अमुक स्थल पर भूमिस्थ किया जाएगा उन्होंने यह भी कहा था कि यह कार्य स्वयं ठाकुर तुमको ही करना पड़ेगा। उस समय पूज्य बाबा कि बात सुनकर श्रीठाकुरजी बहुत गंभीर हो गए थे। आज यह कार्य उन्हे ही करना पड़ रहा था।

पूज्य महाराजजी व ठाकुरजी कुछ दिन गोरखपुर में रुककर पुनः श्रीधाम वृन्दावन आ गये। वृन्दावन से श्रीमहाराजजी का एक भाव भरा पत्रात्मक उद्‌बोधन प्रेषित किया गया जिसका कुछ अंश यहाँ दिया जा रहा है :-

'...श्रीराधाबाबा कहीं चले नहीं गए हैं (लीला संवरण नहीं किया) अन्तर्हित हुए हैं। श्रीबाबा यहीं पर हैं दूर कहीं नहीं गए।

मैंने पूछा था महापुरुष लीला संवरण के पश्चात् भी दर्शन कैसे देते हैं? मिलते क्यों हैं?

श्री बाबा ने कहा-'महाप्रलय पर्यन्त महापुरुष अपने कृपा पात्रों को पथ-प्रदर्शन हेतु करुणाकर मिला करते हैं। उनका पूर्वीय स्वरूप भी नित्य है।'

इस मधुर वाक्य से यही सुदृढ़ निश्चय विश्वास पूर्वक होता है कि श्री बाबा व्याकुल साधकों का पथ-प्रदर्शन करते रहेंगे। अकारण करुणा करते रहेंगे। निकटतम होकर दर्शन भी देते रहेंगे।

हमें उनकी वाणी से अभिप्रेरित होकर कथित नियमों का पालन करते हुए अखण्डतया गीतावाटिका में ही (अनन्यतया) निवास करना चाहिये।'

स्वप्नादेश

पूज्य श्रीराधाबाबा को निकुञ्ज प्रवेश के बाद जहाँ भूमिस्थ किया गया था, कुछ दिनों बाद उसी स्थान पर एक पक्के समाधि मन्दिर का निर्माण हुआ। समाधि स्थल का निर्माण कार्य चल रहा था तभी श्रीठाकुरजी को एक रात्रि स्वप्न में पूज्य श्रीराधाबाबा ने कहा-'ठाकुर मेरे कन्धे के पास बड़ा कष्ट रहता है। तुम इसका कोई उपाय करो।' श्रीठाकुरजी जब निद्रा से जागे तो वे बड़ी देर तक विचार करते रहे कि इस स्वप्न के पीछे क्या रहस्य है। उन्हें यह अच्छी तरह याद था कि पूज्य बाबा को समाधिस्थ करने से पहले उन्होंने उस स्थान को अच्छी तरह से स्वच्छ कराया था और उनके विश्राम हेतु पर्याप्त स्थान प्रदान किया गया था। समाधि को ऊपर से भी भलीप्रकार से ढक दिया गया था। फिर भी

बाबा के द्वारा स्वप्न में यह बताने के पीछे अवश्य ही कोई गूढ़ रहस्य है और स्वप्न भी सत्यवत् सा प्रतीत हो रहा है। विचार करते-करते श्रीठाकुरजी को ध्यान आया कि बाबा की समाधि के ऊपर मन्दिर के निर्माण हेतु जो ढाँचा खड़ा किया गया है कहीं उसमें कोई ऐसी त्रुटि तो नहीं हैजो पूज्य बाबा की समाधि को हानि पहुँचा रही हो। निर्माण कार्य की देखरेख कर रहे, समिति के मैनेजर श्रीजगदीशजी शर्मा से एकान्त में विचार विमर्श किया गया। उन्होंने आश्वासन देते हुए कहा कि मैं कोशिश करता हूँ क्योंकि अब मन्दिर का निर्माण कार्य लगभग पूरा होने को है और भूमिगत ढाँचे के साथ कोई छेड़छाड़ करना भी ठीक नहीं है फिर भी मैं एक बार प्रयास करता हूँ कि कहीं ऐसी कोई बात तो नहीं।

रातो-रात समाधि के उस हिस्से में खुदाई की गई तो पाया गया कि एक 'बीम' पूज्य बाबा की समाधि के ठीक ऊपर से गुजर रही है। तुरन्त श्रीठाकुरजी को सूचना दी गई। श्रीठाकुरजी के निर्देशानुसार बीम के उस हिस्से को कटवाकर अलग कर दिया गया। श्रीठाकुरजी को दूसरे दिन पुनः स्वप्न में पूज्य बाबा आए। उन्होंने कहा-'ठाकुर तुमने बहुत अच्छा किया। मुझे अब बड़ा आराम मिल रहा है।' पूज्य बाबा की प्रत्यक्ष उपस्थिति देखकर श्रीठाकुरजी भाव विभोर हो गए।

*****

१५ श्रीठाकुरजी की दिव्यानुभूतियाँ

सात्विकता के बढ़ने से साधकों को स्वप्न आदि में देव दर्शन, सिद्धों के दर्शन, दिव्य संकेत व भावी घटनाओं का आभास आदि अनुभूतियाँ होती हैं। तन्द्रा या ध्यानावस्था में भी उनको सूक्ष्म जगत की हलचलों का आभास हो जाता है:

श्रीठाकुरजी के जीवन में भी इस प्रकार की अनुभूतियाँ प्राय: हो जाया करती थीं जिसे श्रीठाकुरजी गोपनीय रखते थे। क्योंकि श्रीठाकुरजी की दृष्टि में इन अनुभूतियों का अपनी नित्य स्वरूप स्थिति से कोई सम्बन्ध नहीं था। ये सब प्राकृत जगत की बातें हैं। इसके अलावा पूज्य महाराजजी भी इसे महत्व नहीं देते थे, वे कहते थे कि ये सब भजन में बाधक हैं।

एकबार एक गृहस्थ भक्त ने श्रीठाकुरजी से अपनी समस्या व्यक्त करते हुए कहा कि भजन करते समय मेरा मन संसार की बातों में घूमा करता है एक क्षण के लिए भी भगवान में स्थिर नहीं होता। इसपर श्रीठाकुरजी ने कहा कि आप कहते हैं कि **श्रीकृष्ण के स्मरण में आपका मन एक क्षण के लिए भी नहीं लग पाता किन्तु मेरा मन एक क्षण के लिए भी वहाँ (श्रीकृष्ण की स्मृति) से हट नहीं पाता।**

श्रीठाकुरजी का अपने इष्ट को लेकर जो अन्तरङ्ग भावपूर्ण सम्बन्ध था, उस आन्तरिक अनुभूति को तो वे सदा गोपनीय ही रखते रहे किन्तु कुछ एक छोटी-मोटी घटनाएँ जो कभी उनके मुख से साधकों के सामने प्रगट हो जाती थीं एवम् कुछ अन्य प्रसंग जिनके द्वारा श्रीठाकुरजी की

अन्तरङ्ग स्थिति का दिग्दर्शन होता है, यहाँ वर्णित किये जा रहे हैं।

रतनगढ़ में सात्विक भाव

एकबार रतनगढ़ में श्रीठाकुरजी पूज्य बाबा एवं पूज्य भाईजी के पावन सानिध्य का लाभ ले रहे थे। पूज्य भाईजी के द्वारा 'गर्ग संहिता' पढ़ने के लिए दी गई थी जिसका स्वाध्याय नित्य नियमपूर्वक करते थे। साथ ही लीला चिन्तन व जप भी किया करते थे।

उसी समय की बात है। रात्रि में एक एकान्तिक गोष्ठी का आयोजन हुआ। श्रीठाकुरजी को चर्चा के मध्य सात्विक भाव प्रगट होने लगे। अश्रु, पुलक, कम्प, रोमाञ्च आदि उनके शरीर में परिलक्षित होने लगे। पूज्य श्रीभाईजी ने उनकी ओर देखकर उन्हें नियंत्रित करने का प्रयास किया किन्तु भाव का आवेग अत्यधिक बढ़ने लगा और वे बेभान हो गये। तब पूज्य श्रीभाईजी ने एक सत्संगी भक्त से कहा कि ठाकुर को अन्दर कक्ष में पहुँचा दो। कक्ष में जाकर उन्हें लिटा दिया गया। श्रीठाकुरजी को इस बात का बिल्कुल भी पता न चला कि उन्हें सत्संग गोष्ठी से कब लाया गया। उन सत्संगी भाई ने अस्तव्यस्त मुद्रा में ही श्रीठाकुरजी को पलंग पर लिटा दिया। लगभग तीन घण्टे तक श्रीठाकुरजी एक ही मुद्रा में पड़े रहे। इस अवस्था में उनका मन नित्य धाम में सम्मिलित हो गया था। वहाँ के एक-एक वृक्ष व पत्तियों को उन्होंने स्पष्ट देखा था। चेतना आने पर उन्होंने पाया कि सारा शरीर जकड़ गया है। बड़ी कठिनता से वे सहज हो पाये। दूसरे दिन पूज्य श्रीभाईजी ने उनसे पूछा-'ठाकुर तुम्हें कल कुछ हो रहा था?' श्रीठाकुरजी बोले-'बाबूजी कुछ भी तो नहीं हो रहा था।' इस पर पूज्यभाईजी ने कहा-'कुछ भी नहीं कैसे? ऐसे में उनका प्रत्यक्ष दर्शन

भी होना चाहिए।'

नृत्य में मूर्च्छा

एकबार श्रीराधाष्टमी पाण्डाल में पूज्य भाईजी के कहने से श्रीठाकुरजी ने 'मुरलिया बाजी रे बाजी....' इस पंक्ति पर नृत्य किया और भावावेश में आ गए। उस नृत्य में ऐसे तल्लीन हुए कि घुँघरू के दाने टूट-टूटकर बिखर गए थे। उन्हें अपनी देह का भान नहीं रहा था।

पूज्यभाईजी के नित्यधाम गमन के बाद एकबार फिर पूज्य महाराजजी के कहने पर और मंच पर विराजित पूज्य श्रीराधाबाबा की प्रसन्नता के लिए श्रीठाकुरजी नृत्य के लिए खड़े हुए। सामान्य वेश में साफा बाँधकर किया गया यह नृत्य भी ज्यादा देर न चल सका। इसबार भी नृत्य करते हुए वे भावावेश में आ गए। उनको देखकर ऐसा स्पष्ट प्रतीत हो रहा था, मानो कोई गोपी मुरली की ध्वनि सुनकर अपने तन-मन की सुधि भूलकर दौड़ रही हो। कभी दायें, कभी बायें, कभी आगे, कभी पीछे व्याकुल होकर चुम्बक की भाँति खिंची-खिंची चल रही है। फिर तीव्र वेग से चारों ओर वर्तुलाकार घूमती हुई मुरली ध्वनि के स्रोत को ढूँढ़ने का प्रयास कर रही है। सहसा श्रीठाकुरजी मंच की ओर दौड़ें और मूर्च्छित हो गए। श्रीमहाराजजी ने उन्हें सम्हाला।

चिन्मय स्वरूप की स्फूर्ति

एक बार पूज्य श्रीराधाबाबा की इच्छा पर उनके समक्ष श्रीठाकुरजी ने नृत्य किया। *पूज्य बाबा ने अपनी भावना के अनुरूप अष्ट सखियों में एक सखी, श्रीइन्दुलेखा जी का भाव श्रीठाकुरजी को प्रदान किया था। श्रीठाकुरजी प्रायः इसी दिव्य भाव से भावित रहा करते थे।* पूज्य बाबा

की आज्ञा पाकर श्रीठाकुरजी ने सखी वेश धारण किया और नृत्य करते-करते पूज्य बाबा के सामने से निकले। एकाएक श्रीठाकुरजी को अपने दिव्य भावदेह (सखी स्वरूप) की स्फूर्ति हुई, उन्हें अपने दिव्य सखी स्वरूप की विशाल वेणी लहराती हुई दिखाई पड़ी। श्रीठाकुरजी निज रसमय स्वरूप की दिव्य झाँकी को पाकर बेभान होकर गिर पड़े। पूज्य बाबा की आज्ञा पर उन्हें एक किनारे लिटाया गया। लोग पंखा करने लगे। काफी देर बाद श्रीठाकुरजी को होश आया। सामान्य होने पर पूज्य बाबा ने उनसे पूछा कि भैया तुमको कैसा लग रहा था तब श्रीठाकुरजी ने वेणी वाली बात बताई।

सूक्ष्म शरीर का अनुभव

श्री वेणुविनोदकुँज में एकबार जब श्रीठाकुरजी रात्रि के समय पूज्य महाराजजी को शयन कराकर उनके पलंग के पास ही चटाई पर विश्राम कर रहे थे। लेटे ही लेटे श्रीठाकुरजी के मन में सूक्ष्म शरीर के अनुभव करने का विचार उठा-'सुना तो बहुत है कि योगीजन सूक्ष्म शरीर से पलक झपकते हुए ही कहीं के कहीं पहुँच जाते हैं और दूर की घटना जान लेते हैं। सूक्ष्म शरीर से गमन कैसे होता होगा?' इसी चिन्तन में वे आँख मूँदकर लेटे थे। उस समय रात्रि के लगभग बारह बज रहे थे। वातावरण अत्यन्त नीरव था। लेटे ही लेटे कुछ देर बाद वे स्वयं को शरीर से पृथक अनुभव करने लगे। उन्होंने जैसा अनुभव किया वह कुछ इस प्रकार का था :-

उन्होंने देखा कि उनका स्थूल शरीर तो जमीन में पड़ा है और वो इससे पृथक हैं सूक्ष्म शरीर से वे चल फिर सकते हैं। दरवाजा बन्द होने पर भी आर-पार जा सकते हैं। श्रीठाकुरजी धीरे-धीरे महाराजश्री के

कक्ष के बाहर सीढ़ियाँ उतरकर आँगन में खड़े हो गए। बाहर लकड़ी के भारी दरवाजे में ताला बन्द था। तब उन्होंने यह सोचा कि मैं तो इससे बाहर स्वतः ही निकल सकता हूँ, साँकल खोलने की आवश्यकता नहीं है। और सहज ही उसे पार करके बाहर सड़क पर आ गए। वहाँ खड़े होकर सोचने लगे कि कहाँ जाया जाए। तब सन्त ऊषा बहिनजी के यहाँ जाने का निश्चय किया कि देखें इस समय वे क्या कर रही हैं? क्षणभर में ही वे सन्त ऊषा बहिनजी के यहाँ पहुँच गए और कक्ष के बाहर ही खड़े रहे। उन्होंने देखा कि कमरे की खिड़की आधी खुली हुई है। खिड़की से अन्दर झाँककर देखा की पूज्या ऊषा बहिनजी लेटी हुई हैं, उनके सिराहने की ओर उनके सेवित श्रीराधाकृष्ण विग्रह विराजमान हैं। श्रीविग्रह से नीलवर्ण की कान्ति फूट रही है जिसकी किरणें सन्त श्रीऊषाजी के मुख पर पड़ रही हैं। उनके नेत्र मुँदे हुए हैं और वे किसी दिव्य मादकता में छकी हुई विश्राम कर रही हैं। अचानक उन्होंने करवट बदली तक श्रीठाकुरजी वहाँ से श्रीमनोहर बाबा की कुटिया की ओर चल पड़े। श्रीमनोहरबाबा की कुटिया श्रीमदनमोहन मन्दिर के पास थी। वहाँ जाकर श्रीठाकुरजी ने देखा कि कुटिया का दरवाजा थोड़ा खुला हुआ है और श्रीमनोहर बाबा अपने रात्रि पाठ के लिए बैठ रहे हैं। श्रीठाकुरजी दरवाजे के बाहर कुछ देर खड़े रहे, पुनः श्रीवेणुविनोदकुञ्ज वापस लौट पड़े।

कक्ष में श्रीठाकुरजी ने अपने स्थूल शरीर को पूज्य महाराजजी के पास चटाई पर लेटा हुआ अनुभव किया। बिना किसी प्रयास के एकदम सहजरूप से सम्पन्न हुई इस अनुभूति के आनन्द में वे शान्त लेटे रहे। उन्हें पता ही नहीं चला कि कब चार बज गए। दूसरे दिन सन्त श्रीऊषा

बहिनजी श्रीवेणुविनोदकुञ्ज पधारीं। बातों ही बातों में उन्होंने श्रीठाकुरजी के सामने व्यक्त किया कि कल रात मुझे ऐसा लगा कि श्रीठाकुरजी आप मेरी कुटिया आए। श्रीठाकुरजी मुस्करा दिए। इसके बाद इनके मन में यह विचार था कि श्रीमनोहर बाबा भी यदि ऐसा कोई संकेत दें तो समझ जाऊँगा कि सूक्ष्म शरीर से मेरा अनुभव सफल रहा। चर्चा में पूछने पर बाबा ने बताया कि कल रात्रि के पाठ में मुझे बड़ा ही सुख मिला। मुझे ऐसा लगा कि कुटिया के दरवाजे पर कोई खड़ा है।

पूज्या श्रीऊषाजी के सेव्य श्रीविग्रह से बातचीत

एकबार श्रीठाकुरजी सन्त श्रीऊषा बहिनजी के युगल सरकार के दर्शन करने पधारे थे। श्रीयुगल के दर्शन करके आप अत्यन्त भाव-विभोर हो गए। उस समय उन्हें जो अनुभव हुआ वह उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत है जो कि उन्होंने सन्त श्रीऊषा जी को पत्र में लिखा था:-

'राधा! उस दिन युगलश्री के श्रीविग्रह रूप के दर्शन कुछ विचित्र से हुए। श्रीप्रियाजी के श्रीअंग तो हमेशा की भाँति थे पर श्रीठाकुरजी के मुखारबिन्द एवं बाँह व मुरली लिए अँगुलियों पर किञ्चित श्यामलता अधिक दिख रही थी। मन ही मन मैने पूछ लिया, ऐसा क्यों? 'मालिश करके नहलाने से ऐसा नहीं रहता' -यह उत्तर मिला। मैने कहा- 'मालिश तो गोपी चन्दन की भी होती है।' वे बोले- 'नहीं इत्र की कराओ।' मैने कहा- 'क्या मेरे द्वारा कराना चाहते हैं इसलिए यह रूप बनाया?' वे बोले-'और नहीं तो क्या!- तो मैं इत्र भिजवा दूँगा?' वे बोले-'ठीक है। ऐसा आँखों से स्वीकृति देते हुए बोले।'

'संकोचवश मैं नहीं आ सका। किसी से इत्र की शीशी भिजवानी पड़ी। आपकी आज्ञा टाली नहीं जाती इसी से कुछ संकेत कर दिया। अपने जीवन को देखते हुए तो जमीन में गड़ जाने जैसा संकोच होता है। कहाँ वे! कहाँ अपनी हीन अवस्था पर 'उनके' प्यार को कोई क्या करे।'

टॉन्सिल का ऑपरेशन

सन् १९७३ में श्रीठाकुरजी के गले में सूजन आ गई। डॉक्टर को दिखाने पर उन्होंने टॉन्सिल के ऑपरेशन की सलाह दी। इन्दौर में ऑपरेशन कराने का निश्चय किया गया। चीफ मिनिस्टर के अन्डर सेक्रेटरी श्रीहीरालालजी गुप्ता ने इन्दौर के प्रसिद्ध डॉक्टर श्रीअहलूवालियाजी से ऑपरेशन करवाया। श्रीठाकुरजी ऑपरेशन थियेटर में गए तो उन्होंने अपने मन को अपने इष्ट के ध्यान में एकाग्र कर लिया। जब ऑपरेशन पूर्ण हो गया तो डॉक्टर बाहर आकर अपने चैम्बर में बैठ गए। इसी बीच ऑपरेशन थियेटर में बेहोशी की अवस्था में लेटे हुए श्रीठाकुरजी की जीभ पलटकर गले में फँस गई और उनकी श्वाँस घुटने लगी। तभी एक नर्स ने इनको असहज स्थिति में देखा। खतरे को भाँपकर उसने तुरन्त डॉक्टर को बताया। डॉक्टरों ने शीघ्रता से इनकी जीभ को खींचकर सीधा किया। डॉक्टरों ने बाद में बताया कि यदि वे समय पर न पहुँचते तो ठाकुरजी की जान को खतरा था। इस पूरी चिकित्सीय प्रक्रिया के दौरान श्रीठाकुरजी को बेहोशी में एक विचित्र अनुभूति हुई– 'उन्होंने देखा कि एक बड़ा सा सर्प इनकी ओर विष की ज्वाला फेंकते हुए फुफकार रहा है। तभी न जाने कहाँ से एक नीलवर्ण का छोटा सा बालक इनके और सर्प के बीच खड़ा दिखाई दिया। इस बालक का शरीर पारदर्शी था। इसके हाथ में एक चमकता हुआ हाथी

दाँत की आकृति का कोई तेजस हथियार था, जिससे वह उस सर्प पर प्रहार कर रहा था। सर्प अपने मुख से लगातार आग उगल रहा था और यह बालक उस पर प्रहार करके उसे घायल कर रहा था। अंत में बालक ने सर्प को मार डाला। श्रीठाकुरजी को उस बालक की क्रिया बड़ी अद्‌भुत प्रतीत हो रही थी। कुछ क्षणों बाद यह दृश्य तिरोहित हो गया। जब श्रीठाकुरजी चेतना में आये तो देखा कि ऑपरेशन पूर्ण हो गया है। जबतक ऑपरेशन होता रहा, तब तक पूज्य महाराजजी श्रीहीरालालजी के घर में एक कक्ष में बैठकर 'वसतु मनो मम् मदन गोपाले' पद गाते रहे।

श्रीविमलनारायणजी के यहाँ अनुभूति

श्रीठाकुरजी जब भी श्रीराधाष्टमी के लिए गोरखपुर जाते, तो बीच में कानपुर में रुक जाते थे। श्रीठाकुरजी कहते कि कानपुर मेरा बीच का विश्राम स्थल है। यहाँ तक मेरी आँखों के आगे पूज्य श्रीमहाराजजी बने रहते हैं। कानपुर से आगे गोरखपुर की ओर बढ़ते ही पूज्य बाबा नेत्रों के सामने दृष्टिगोचर होने लगते हैं। मुझे ऐसा लगता कि मानों यहाँ तक पूज्य श्रीमहाराजजी मेरी सँभाल करते रहे अब इसके आगे पूज्य राधाबाबा मेरी सम्हाल कर रहे हैं। श्रीठाकुरजी कानपुर में श्रीविमलनारायणजी के यहाँ रुकते थे। ये पी.रोड के पास श्री दुर्गा मन्दिर वाली गली में रहते थे। उनके यहाँ पर युगलसरकार की सेवा होती थी। श्रीविग्रह एक अलग कक्ष में विराजमान थे। एकबार ठाकुरजी उनके घर की छत पर लेटे हुए थे। लेटे-लेटे ही स्वप्न में उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण विग्रह पसीने से भीगे हुए हैं। अचानक ऐसा दृश्य देखकर वे कुछ चिन्ता में पड़ गये और नींद से जाग उठे। तुरन्त ही वे

श्रीविमलनारायणजी के ठाकुर मन्दिर में गए। वहाँ उन्होंने पाया कि भयंकर गर्मी और उमस से कमरा एकदम गरम है। कक्ष के सभी दरवाजे, खिड़की बन्द हैं। एक मिनट भी वहाँ रुकना कठिन हो रहा है। उन्होंने तुरन्त सारी खिड़कियाँ खोली, पंखा चलाया, ठाकुर विग्रह के वस्त्रों को ठीक किया। जब उमस कुछ कम हुई बाहर की ताजी हवा भीतर प्रवेश करने लगी तब जाकर ठाकुरजी का मन प्रसन्न हुआ। उस दिन के बाद से सब लोग ठाकुर सेवा में सचेत रहने लगे।

श्रीहनुमानजी की अनुभूति

एकबार दिल्ली के ईस्ट ऑफ कैलास में पूज्य महाराजजी व श्रीठाकुरजी नित्य भ्रमण के लिए निकले। घूमते हुए जब वे एक चौराहे के निकट से गुजर रहे थे तब श्रीठाकुरजी को एक आवाज सुनाई पड़ी–'अरे भाई मैं भी यहाँ हूँ। क्या इधर नहीं आओगे? यह आवाज बड़ी मधुर व स्पष्ट थी। श्रीठाकुरजी चौंक पड़े। पूज्य महाराजजी ने उनसे पूछा कि क्या बात है? श्रीठाकुरजी ने कहा कि महाराजश्री इस ओर चलते है।। महाराजजी बोले ठीक है। दोनों लोग मुड़कर अभी कुछ आगे बढ़े ही थे कि एक प्राचीन श्रीहनुमानजी का मन्दिर दिखाई दिया। तब श्रीठाकुरजी ने श्रीमहाराजजी को वह बात बताई कि इन्होंने आवाज देकर बुलाया है। श्रीमहाराजजी ने तुरन्त श्रीठाकुरजी से भोग लगवाया। श्रीठाकुरजी ने श्रीहनुमन्त लालजी को प्रणाम किया, भोग लगाया और उनकी अहैतुकी कृपा देखकर गद्‌गद् हो गए।

अन्तर्यामित्व की झलक

ठाकुरजी के जीवन में कुछ ऐसी घटनाएँ घटित हो जाती थीं जिनसे

ऐसा प्रतीत होता था कि इनके अन्दर दूसरों के मन की बातें जान लेने व भावी घटनाओं का आभाष पा जाने की क्षमता है। कभी-कभी विनोद पूर्वक नवीन साधकों से कहते थे कि मेरे पास एक्स-रे मशीन है जिसमें सब दिख जाता है। इसके अलावा पूज्य श्रीराधाबाबा को भी इनकी स्वरूपाई के समय इनके अन्तर्यामित्व के अनेक अनुभव हुए। जिन्हें पिछले पन्नों में लिखा जा चुका है।

यथा-

- पूज्य बाबा के मन की बात जानकर उनसे कपोल में चपत लगाने के लिए कहना।
- बाबा की इच्छा जान उच्छिष्ठ अमरूद प्रसादी के रूप में देना।
- पूज्य बाबा के मनोनुकूल पदों का गायन करने लग जाना।
- उनकी इच्छा के अनुरूप हाव-भाव पूर्ण नृत्य करने लग जाना।
- उनकी शैय्या पर उनकी भावना के अनुसार पुष्प संरचना कर देना।
- सारंगी वादन में पूज्य बाबा की इच्छानुसार राग निकालना
- पूज्य बाबा के चिन्तन के अनुसार लीला का पद गाना।

इसी प्रकार पूज्य श्रीमहाराजजी के साथ रहते हुए भी अनेक बार ऐसा हुआ कि पूज्य महाराजजी के चिन्तन में आयी हुई लीला उनके हृदय में प्रतिबिम्बित हो गई। पूज्य श्रीमहाराजजी के मनोभावों को पढ़कर तत्काल उनकी यथोचित सेवा सम्पन्न कर देते। एकबार पूज्य महाराजजी ने भी श्रीठाकुरजी की अध्यात्मिक स्थिति व क्षमता के बारे में बड़वानी में श्रीकैलाश भाई के यहाँ भक्तों के मध्य चर्चा में संकेत

किया था। पूज्य महाराजजी व श्रीठाकुरजी श्रीकैलाश भाई के यहाँ बैठे थे। सायंकाल का समय था। श्रीठाकुरजी पूज्य महाराजजी से बोले-'महाराजजी मैं लघुशंका आदि से निवृत्त होकर आता हूँ आप तब तक थोड़ा विश्राम कर लें।' पास में बैठे एक भक्त विनोदजी के मन में आया कि देहधर्म सन्तों को भी नहीं छोड़ता। तभी पूज्य महाराजजी ने कहा-'विनोद! मेरे पास आओ! सुनो, श्रीठाकुरजी का यह समय नित्य रास बिहार के दर्शन का है। लघुशंका के लिए जाना तो एक बहाना है। श्रीठाकुरजी हमसे पर्दा रखना चाहते हैं। मेरे सामने इस बात को आने नहीं देना चाहते हैं किन्तु हमसे छुपा कैसे सकते हैं। **श्रीठाकुरजी पराकाष्ठा की योग्यता प्राप्त सन्त हैं। हमको भविष्य की घटनाओं का संकेत भी देते रहते हैं,** यद्यपि मैं स्वयं भी जानता हूँ। सभी लोग इन्हें साधारण मानते हैं जबकि वे साधारण नहीं हैं।'

अन्य लोगों के साथ घटित कुछ ऐसे ही प्रसंग नीचे दिए जा रहे हैं :-

श्रीकैलाश भाई के यहाँ की ही एक अन्य घटना है। एक अवसर पर उनके यहाँ पूज्यमहाराजजी व श्रीठाकुरजी का आगमन हुआ। उस समय श्रीकैलाश भाई के पिताजी भी थे। श्रीठाकुरजी ने कैलाश भाई से कहा-'पिताजी की सेवा ठीक से करना।' उसी समय पूज्य महाराजजी बोले कि ठाकुरजी को भविष्य की घटनाओं का आभास हो जाता है। इसलिए इनकी बात को ध्यान में रखिएगा। कैलाश भाई पिताजी की सेवा के प्रति विशेष सजग हो गए। कुछ ही महीनों बाद उनके पिताजी का देहावसान हो गया।

एक साधक श्रीगणपतिजी श्रीगिरिराज गोवर्धनजी में रहकर भजन करते हैं। ये द्रव्य का स्पर्श नहीं करते थे। एकबार किसी भक्त के साथ

मोटरसायकिल पर बैठकर ये पूज्य महाराजजी के जन्मोत्सव में सम्मिलित होने वृन्दावन आए। साथ के व्यक्ति किसी आवश्यक कार्य से इनको वृन्दावन छोड़कर चले गए। कार्यक्रम की समाप्ति के बाद ये वापस श्रीगिरिराजजी जाने का विचार कर रहे थे। अब गोवर्धन वापस कैसे जाएँ। साथ वाले व्यक्ति तो पहले ही चले गए थे, जेब में पैसा होता तो टेंम्पों वाले से कहते कि किराए भर के पैसे निकाल लो। फिर भगवद् योगक्षेम पर निर्भर होकर चलते समय ये श्रीठाकुरजी को प्रणाम करने गए। प्रणाम करके जैसे ही ये चलने को हुए तभी श्रीठाकुरजी ने उन्हें रोक लिया और उठकर अपने कक्ष में गए। भीतर से ठीक उतने ही रुपये लेकर आए जितना कि गोवर्धन तक जाने के लिए किराया होता था। श्रीठाकुरजी ने उन रुपयों को गणपतिजी की जेब में डाल दिया। श्रीगणपतिजी कुछ बोल न पाए और आश्चर्यचकित थे कि मैंने अपनी समस्या की चर्चा किसी से भी नहीं की श्रीठाकुरजी को कैसे पता चल गया।

एक बहिन सुमन अपने घर में रहकर भजन किया करती थीं। उन्होंने विवाह नहीं किया था। लोगों से यह सुनती थीं कि बिना गुरू किए भजन में उन्नति नहीं होगी। अतः गुरु की तलाश में रहा करती थीं। कई परिचितों ने अपने गुरुओं की ओर इनका ध्यान आकर्षित किया किन्तु इनका मन कहीं नहीं जमा। एक परिचित बहिन के साथ ये उनके गुरु के दर्शन करने वृन्दावन आई। ये बहिन पूज्य महाराजजी की कृपा पात्रा थीं। जब दोनों लोग श्रीवेणुविनोदकुञ्ज में घुसे और घुसते ही शशि बहन जी (मेरठ वाली शशि बहन जी) ने बाबा बनबारीशरणजी को प्रणाम किया। सुमनजी के मन में यह विचार उठा कि इनको तो मैं गुरु

नहीं बनाऊँगी। कुञ्ज में अन्दर जाने पर श्रीठाकुरजी बैठे हुए मिले। उनको देखकर इनके मन में उन्हें भी गुरु बनाने या ना बनाने के विषय में उहापोह थी। जब ये शशि बहिन जी के साथ श्रीठाकुरजी को प्रणाम कर रही थीं तभी श्रीठाकुरजी बोल पड़े-'मैं तेरा गुरु-वुरु नहीं हूँ। पूज्य महाराजजी तो अन्दर विश्राम कर रहें हैं। उनसे अपराह्न चार बजे भेंट करना।' श्रीठाकुरजी के मुख से यह बात सुनकर इन्हें आश्चर्य हुआ और दुविधा समाप्त हुई। शाम को चार बजे पूज्य महाराजजी के दर्शन किए और प्रथम दर्शन में ही इनका मन पूर्णरूपेण समर्पित हो गया।

एक अन्य घटना में सुमनजी एकबार श्रीगिर्राजजी की परिक्रमा करके टैम्पो से आ रही थीं रास्ते में इनका टैम्पो दूसरे टैम्पों से टकरा गया। टैम्पो क्षतिग्रस्त हो गया किन्तु यात्रियों को कोई चोट नहीं आई। जब ये श्रीवेणुविनोदकुञ्ज में आकर श्रीठाकुरजी को प्रणाम करने लगी तो श्रीठाकुरजी ने पूछा-'तेरी हड्डी पसली ठीक तो है, टूटी तो नहीं?' इन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया बाद में इन्हें आश्चर्य होता रहा कि श्रीठाकुरजी ने टैम्पो दुर्घटना के कारण मेरी कुशलक्षेम पूछी है। इन्हें उस घटना का कैसे आभास हो गया।

इन्दौर में श्रीराधेश्यामजी गुप्ता के घर पूज्य श्रीमहाराजजी ठहरे हुए थे। उनके दर्शन के लिए प्रतिदिन अनेक लोग आते थे। एक छात्रा तरूणा महाजन अपनी कक्षाएँ छोड़कर लगातार आठ-दस दिन तक नित्य पूज्य महाराजजी के दर्शन हेतु आती रही। एकदिन इनके मन में विचार आया कि कक्षाएँ छोड़ रही हूँ कहीं इस बार मैं फेल न हो जाऊँ। सामने श्रीठाकुरजी बैठे हुए थे। इधर इनके मन में विचार उठा ही था तभी श्रीठाकुरजी ने तरुणा के सिर पर हाथ रखते हुए कहा-'ऐसा नहीं

सोचते।' बाद में जब रिजल्ट निकला तो ये पूरे विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान पर आई और उन्हें गोल्ड मेटल से विभूषित किया गया।

इन्दौर की अनिता गुप्ता का विवाह जिस लड़के से तय किया जा रहा था। वह लड़का इन्हें पसन्द नहीं था। मन में अनिता बहुत उलझन में थीं किन्तु किसी से भी अपने मन की उलझन को व्यक्त नहीं किया था। इसी बीच एकदिन श्रीठाकुरजी का पत्र इनके छोटे भाई कमलेशजी के नाम से पहुँचा। लिखा था–'अनिता से कहना चिन्ता ना करे।' पत्र का भाव तब समझ में आया जब लड़के ने ही विवाह से इन्कार कर दिया।

एकबार अनिता श्रीवेणुविनोदकुञ्ज आई थी। मन में इच्छा हुई कि श्रीठाकुरजी के हाथ से प्रसाद मिलता तो अच्छा होता। जब श्रीठाकुरजी के कक्ष में उन्हें प्रणाम करने गई तो श्रीठाकुरजी ने अपनी मुठ्ठी खोलकर प्रसाद का आधा पेड़ा उन्हें देते हुए कहा–'इसे तु पा ले।'

श्रीमहाराजजी के कृपापात्र श्रीअवधेश कुमार मिश्र एक बार गोरखपुर पूज्य श्रीराधाबाबा के जन्मोत्सव में सम्मिलित होने गए हुए थे। ट्रेन लेट होने से वे उत्सव में सम्मिलित नहीं हो पाए। वहाँ से वे जब वृन्दावन आए तो श्रीठाकुरजी ने पूछा क्यों तुम मुझे गोरखपुर में उत्सव के समय दिखे ही नहीं, कहाँ रहे? अवधेशजी को आश्चर्य हुआ कि श्रीठाकुरजी तो इस बार ठंड की वजह से गोरखपुर पहुँचे ही नहीं थे। मुझे कहाँ से देखते रहे। अवश्य ही वे सूक्ष्मरूप से वहाँ उपस्थित रहे होंगे।

कानपुर के एक भक्त श्रीरामकृष्णजी शुक्ल के यहाँ श्रीठाकुरजी गोरखपुर से पधारे। वे श्रीठाकुरजी को लेने स्टेशन गए। वहाँ उन्हें

श्रीठाकुरजी के सिल्क के कुर्ते को देखकर तीव्र इच्छा जागी कि ऐसा ही कुर्ता मैं भी अपने लिए बनवाऊँगा। बात मन में ही दबी रही। श्रीठाकुरजी उनके घर दो दिन रुके। बिदा होते समय वे जब श्रीठाकुरजी को प्रणाम करने लगे तो श्रीठाकुरजी ने उन्हें पॉलीथिन में रखकर एक वस्त्र दिया और बोले- यह आपके लिए एक प्रसादी वस्त्र है। बाद में उन्होंने उसे खोलकर देखा तो यह वही कुर्ता था जिसे दो दिन पहले स्टेशन में देखकर उनका मन लालायित हुआ था। वे अति आश्चर्य व संकोच में गड़ गए कि उनके मन की बात श्रीठाकुरजी ने कैसे भाँप ली।

श्रीठाकुरजी की कुटिया में रहने वाले एक साधक श्रीविठ्ठलजी एकबार बीमार हो गए। उन्हें कुटिया से तमाल कुञ्ज में लाया गया। डॉ. चन्द्रेश गुप्ता (पूज्य महाराजजी के एक परिकर) को श्रीठाकुरजी ने उनकी चिकित्सा हेतु नियुक्त किया था। एकबार उनकी स्थिति अधिक गम्भीर हो गई। उन दिनों श्रीठाकुरजी फरीदाबाद में थे। डॉ. चन्द्रेश ने उन्हें जब फोन से सूचना दी कि इनकी स्थिति बहुत नाजुक है बचना मुश्किल है तो वे वृन्दावन आ गए। श्रीठाकुरजी ने देखा कि श्रीविट्ठलजी बेहोशी में कुछ बड़बड़ा रहे हैं। उन्होंने डॉ. चन्द्रेश से कहा कि इनकी सेवा करते रहो। तुम्हें यश मिलने वाला है। देखना ये ठीक हो जाएँगे और तुमसे खाने के लिए हलुआ माँगेंगे। अति आश्चर्य कि दूसरे दिन ही उनके स्वास्थ्य में काफी सुधार दिखाई दिया और डॉ. चन्द्रेश जब देखने के लिए उनके पास गए तो विट्ठलजी ने उनसे खाने के लिए हलुवा माँगा। बाद में श्रीविट्ठलजी ठीक हो गए कई वर्ष तक जिए।

एक बार श्री तमालकुञ्ज, वृन्दावन में श्रीठाकुर जी ने निकटस्थ एक नवीन साधक से चर्चा में बताया कि- 'मैं शयन से पूर्व पूज्य श्रीभाई जी से कोई बात कहकर सोया तो रात्रि में स्वप्न में पूज्यराधाबाबा उसका समाधान करते हैं।' अर्धनिद्रा की अवस्था में पूज्य राधा बाबा के एक परम कृपापात्र दिल्ली के उद्योगपति महानुभाव के लिए कोई निर्देश दिया गया। वह इतना स्पष्ट था कि श्रीठाकुर जी के लिए उस निर्देश का पालन करना अनिवार्य था कि वो वह बात उन सज्जन को कहें। किन्तु वे बड़े संकोच में थे कि यदि उन सज्जन को बाबा की यह बात बताते हैं तो वो अविश्वास न कर बैठें और यह न समझ बैठें कि ठाकुर अपनी सिद्धाई दिखा रहा है। फिर उन्होंने युक्ति पूर्वक, बड़े ही स्नेह व संकोच से उनतक बाबा का वह संदेश पहुँचा दिया और उन सज्जन की कोई बड़ी भारी विपत्ति टल गई।

श्री ठाकुर जी कभी भी अपनी अन्तरङ्ग अनुभूतियों को प्रकट नहीं करते थे फिर भी यदा-कदा किसी कृपापात्र के सामने उनकी उच्च स्थिति प्रकट हो ही जाती थी। इसका एक उदाहरण निम्न है। - जो एक साधक के साथ घटित हुआ था। रात्रिकाल ९:३० बजे तमालकुंज में चरण सेवा के दौरान वह साधक श्री ठाकुर जी के समस्त

अपने मन की कोई समस्या रख रहा था कि ठाकुर जी ने उसे रोक दिया क्योंकि वे किसी भगवदीय विचारों में डूब रहे थे। दूसरे दिन पुनः रात्रिकाल श्रीतमाल कुञ्ज में कुछ देर बैठने के नियमानुसार श्रीठाकुर जी आए, वह साधक भी सेवा में उपस्थित हुआ और चरण सेवा करने लगा कि इतने में ठाकुर जी उस साधक से बोले तुम कल मुझसे कुछ

कह रहे थे- अब बोलो क्या बात थी, बताओ ? श्रीकृष्ण ने मुझसे कहा है कि तुम्हें उसकी बात सुननी चाहिए थी। साधक अवाक् था श्रीठाकुर जी व उनके इष्ट की इतनी प्रत्यक्ष वार्तालाप होती है इस बात को जानकर उसे अति आश्चर्य व हर्ष हो रहा था। किन्तु उसे कल की बात विस्मृत हो चुकी थी। साधक द्वारा श्रीठाकुर जी से यह निवेदन किया गया कि वह कल की बात भूल चुका है तो ठाकुर जी ने पुनः आग्रह नहीं किया पश्चात् गंभीर व दिव्य चर्चाकर उस साधक को हृदय से आह्लाद से भर दिया।

एक नवीन साधक श्री नीरव मिश्र के साथ घटी घटना उनके शब्दों में निम्नलिखित है- 'मैं लगातार एक महीने ज्वर से पीड़ित रहा कमजोरी बहुत हो गई। मुझे नित्य १०३ से १०४ डिग्री बुखार हो जाता। सारे टेस्ट कराए किन्तु डाक्टर की दवा से कोई लाभ नहीं हुआ। एक दिन मुझे स्वप्न हुआ कि पू. ठाकुर जी तमाल कुँज स्थित कमरा नं. ३ में विश्राम कर रहे हैं। दोपहर का समय है मैंने वहाँ जाकर उनसे कहा कि ठाकुर जी मुझे एक महीना हो गया, बुखार जाता ही नहीं। कमजोरी भी बहुत अधिक है। इतना कहते-कहते मैं रो पड़ा। पूज्य ठाकुर जी लेटे हुए थे, उठकर बैठ गए। उनके हाथ में माला झोली थी। उन्होंने अपना एक हाथ मेरे मस्तक पर रखते हुए साँत्वना प्रदान की, मुस्कराते हुए दृष्टिपात किया। थोड़ी देर में स्वप्न टूट गया। आँखे खोली तो प्रातः काल का समय था। उसी दिन से मुझे ज्वर में आराम मिल गया और मैं पूरी तरह स्वस्थ हो गया।

*****

१६ लोक संग्रह

श्रीधाम वृन्दावन में श्रीमहाराजजी के दर्शनार्थ अनेक भक्तों का आगमन होता था। सभी स्तर के भक्त होते थे जो अपनी-अपनी जिज्ञासाओं का समाधान चाहते। श्रीमहाराजजी समागत लोगों की जिज्ञासा के समाधान हेतु श्रीठाकुरजी की ओर इंगित कर देते थे। श्रीठाकुरजी के मुख से निकली बातें श्रीमहाराजजी के भावानुसार ही होती थीं। आबाल-वृद्ध सभी के मानसिक धरातल के अनुरूप उनकी जिज्ञासाओं का समाधान हो जाता। कई नवीन साधकों के प्रश्न बड़े अटपटे होते, जिनको सुनकर सामान्यतः लोग उनपर नाराज हो सकते है किन्तु उन्हें भी श्रीठाकुरजी बड़े स्नेहपूर्वक सन्तुष्ट कर देते। परिकरजनों को इतना प्रेम देते, सबके मन की बात सुनते और उनका मान रखते। वे कहते कि पूज्य महाराजजी के सभी परिकरजन मेरे लिए पूजनीय हैं।

श्रीठाकुरजी अपनी गंभीर व ओजपूर्ण वाणी द्वारा कम से कम शब्दों में साधकों का समाधान कर देते थे। ये अध्यात्म दर्शन की गूढ़ एवं जटिल व्याख्याओं से बचते थे और आश्रितों को भी तर्क एवं वाद-विवाद से दूर रहने की सलाह देते। एकान्त में बैठकर भगवन्नाम जप करने पर विशेष जोर देते थे। युवा वर्ग को अपने स्नेहिल व्यवहार से अपनी ओर आकृष्टकर भगवद् उन्मुख कर देते थे। किसी बाह्य वेशभूषा और चिन्हों से रहित उनका सीधा-सरल जीवन लोगों को बरबस अपनी ओर खींच लेता। उनकी सात्विक सौम्य मुखाकृति,

गंभीर व्यक्तित्व एवं आत्मीयतापूर्ण वाणी से नवीन व्यक्ति प्रथम भेंट में ही उनका हो जाता। उनकी शिष्ट एवं विनम्र चेष्टाएँ लोगों के लिए प्रेरणा का कार्य करती थीं। पूज्य राधाबाबा ने पाँच सौ से अधिक लोगों के पारमार्थिक उत्थान की जिम्मेदारी इनको सौंपी थी। इसके अलावा इनकी स्वरूपाई के समय से इनसे जुड़े हुए अनेक लोग जो इनके शरणापन्न थे एवं अनेक साधक व कृपापात्र जो ठाकुरजी पर विशेष श्रद्धा रखते थे, इन सभी के लौकिक पारमार्थिक दोनों ही प्रकार की समस्याओं का समाधान श्रीठाकुरजी किया करते थे।

परम पूज्य श्रीमहाराजजी के संकल्प से १९९० में **तमाल कुञ्ज** का निर्माण हुआ और उनके आदेशानुसार एक पारमार्थिक न्यास का भी गठन किया गया। जिसकी सारी जिम्मेदारी श्रीठाकुरजी बड़ी कुशलता से निभाते रहे। इनका व्यवहार व परमार्थ दोनों ही सधा हुआ था। ये अभावग्रस्त लोगों की आर्थिक सहायता गुप्त रीति से कर दिया करते थे। श्रीठाकुरजी की प्रेरणा से ब्रज की अनेक स्थलियों का जीर्णोद्धार करवाया गया जिसमें ग्राम करहला में स्थित श्रीघमण्डदेवाचार्यजी की प्राचीन रास स्थली, नंदगाँव के श्रीयशोदा कुण्ड के निकट प्राचीन गुफा (पूज्य महाराज जी की भजन स्थली), ग्वाल पोखरा, ऊँचागाँव में श्रीललिताजी का मन्दिर आदि स्थान प्रमुख हैं।

*****

१७ श्रीमहाराजजी से वियोग

पूज्य श्रीराधाबाबा के गोलोक गमन के पश्चात पूज्य महाराजजी की ऐसी इच्छा थी कि गीतावाटिका गोरखपुर में पूज्यश्रीराधाबाबा की समाधि पर भव्य मन्दिर का निर्माण व उनके श्रीविग्रह की प्रतिष्ठा कराई जाए तथा नियमित रूप से संकीर्तन – पदगान – भोग –आरती की सुंदर व्यवस्था हो जाए। उनके इस संकल्प को श्रीठाकुरजी ने सभी भक्तों के सहयोग से मूर्त रूप दिया। पूज्य महारज इन दिनों अस्वस्थ चल रहे थे फिर भी पूज्य राधाबाबा के श्रीविग्रह की प्राण प्रतिष्ठा हेतु गोरखपुर गए। कमजोरी के कारण चलने फिरने में असमर्थ थे इसलिए कार्यक्रम स्थल पर उन्हें व्हील चेयर द्वारा ले जाकर एक चौकी पर विराजमान कर दिया गया। ठाकुरजी के द्वारा जय–जय प्रियतम काव्य का गान प्रारंभ किया गया। एकाएक पूज्य महाराजजी को भावावेश हो गया। उनको पूज्य बाबा प्रत्यक्ष भ्रू नचाते हुए दिखने लगे। पूज्य महाराजजी पूज्य बाबा के श्रीविग्रह के सामने भावमय नृत्य करने लगे। अश्रु प्रवाह होने लगा। मुख से अस्फुट शब्द निकल रहे थे– अद्‌भुत! अद्‌भुत वैभव!... ...। मेवे का भोग लगाया गया था जिसे पूज्य बाबा ने पाया ऐसा पूज्य महाराजजी को अनुभव हुआ। श्रीठाकुरजी ने शीघ्रता से उठकर पूज्य महाराजजी को सम्भाला और व्हील चेयर में बैठाकर विश्राम कक्ष में लाए। श्रीमहाराजजी वहाँ पर भी भाव अवस्था में ही बने रहे। रात्रि 9 बजे तक इसी स्थिति में रहे। बाद में स्वस्थ होने पर पूज्यश्री ने श्रीठाकुरजी से कहा– 'मैं बाबा के साथ ही चला जाना चाहता था। मुझे यहाँ क्यों लाए। 'यह प्रसंग दिनांक १५ सितम्बर सन् १९९४ का है।

पूज्य महाराजजी के स्वास्थ में धीरे-धीरे शिथिलता आती गई ठाकुरजी, पूज्यश्री की सेवा में अत्यधिक सजग रहने लगे। पूज्य महाराजश्री भी श्रीठाकुरजी को हर क्षण अपने पास ही देखना चाहते। यदि कभी किसी कार्यवश कुछ समय के लिए ठाकुरजी को इधर-उधर जाना पड़ता तो तुरन्त महाराजश्री का बुलावा आ जाता--'ठाकुरजी कहाँ हैं? उन्हें बुलाओ।' पूज्य श्रीराधाबाबा, पूज्य स्वामी लक्ष्मणजू महाराज, पूज्य पण्डित गयाप्रसादजी महाराज (गोवर्धन) सभी एक-एककर लीला प्रविष्ट हो चुके थे। इस सभी संतो से पूज्य महाराजजी का बड़ा अन्तरङ्ग सम्बन्ध था। इनके जाने के बाद से श्रीमहाराजजी में भाव निमग्नता विशेष रूप से बढ़ती चली गई। वे प्राय: एक गम्भीर भाव में डूबे रहते। कभी शान्त, मौन अपने पलंग पर बैठे रहते अथवा लेटे रहते। कुञ्ज के उत्सव आदि पूर्ववत् मनाये जाते रहे। प्राय: कीर्तन के मध्य उनके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की धारा बहती थी।

पूज्यमहाराजश्री को चिकित्सीय परीक्षण के लिए कई बार फरीदाबाद व देहली जाना पड़ा। दवा नियमित लेते ही थे। कभी-कभी ऐसा होता कि ठाकुरजी को प्रेरणा होती और वे चिकित्सकों द्वारा बताई गई कोई दवा कुछ दिन के लिए बंद कर देते। बाद में चिकित्सकीय परामर्श में भी उसे बंद करने की सलाह दी जाती।

पूज्य महाराजजी के पलंग के पास रात्रि में विश्राम करते समय ठाकुरजी की जब नींद खुलती तो प्राय: महाराजश्री अपने पलंग पर बैठकर भगवद् स्मरण करते हुए मिलते। एकबार किसी ने पूछा कि महाराजजी आपको रात्रि में ठीक से नींद आई कि नहीं? इस पर पूज्य महाराजी बोले के हजार वाट का बल्ब आपकी आँखों के सामने जलता

रहे तो क्या आपको नींद आ सकती है? श्रीकृष्ण का कोटि सूर्य समप्रभ, कोटि चन्द्र सुशीतल मुखारविन्द निरन्तर मेरे नेत्रों के सामने छाया रहता है ऐसे में क्या नींद आ सकती है? पूज्य श्रीमहाराजजी की भावदशा उत्तरोत्तर गम्भीर से गम्भीरतम होती जा रही थी जबकि शरीर अनुदिन क्षीणता की ओर अग्रसर हो रहा था। पूज्य महाराजजी कई बार कहा करते थे कि शरीर साथ देना नहीं चाहता, पर मैं शरीर को अपने साथ घसीट रहा हूँ। ऐसी अवस्था में भी वे श्रीठाकुरजी के साथ रिक्शे मे बैठकर घूमने जाते थे। महापुरुषों को भावी घटनाओं का आभास रहता है। एकदिन वे श्रीठाकुरजी के साथ नित्य की भाँति घूमने निकले और राधाबाग (कात्यायनी देवी मन्दिर) तक गए। वहाँ एक बेंच पर बैठ गए और श्रीठाकुरजी से चर्चा के मध्य कुँज की आर्थिक व्यवस्था के बारे में पूछा और कहा कि यदि एकाएक आवश्यकता पड़े तो क्या पैसों की व्यवस्था है? श्रीठाकुरजी इसका आशय नहीं समझ सके किन्तु पैसों की व्यवस्था के सम्बन्ध में पूज्यश्री को आश्वस्थ किया। इसके एक सप्ताह बाद जेष्ठ कृष्ण एकादशी संवत् २०५२ तद्नुसार दिनाक २४ मई १९९५ को पूज्य महाराजजी ने सायंकाल लगभग चार बजे अपने एक प्रिय भक्त श्रीअचरजलाल चढ्ढा के निवास स्थान 'वृन्दावनम्' में नित्य लीला में प्रवेश किया। पूज्य श्री की इस लीला संवरण के समाचार को सुनकर समस्त परिकर स्तब्ध रह गया। सभी के हृदय में बज्राघात हुआ। श्रीठाकुरजी ने अश्रुपूरित नेत्रों से उनके अन्तिम संस्कार सम्बन्धी समस्त कार्य पूरे किए।

अब श्रीठाकुरजी बहुत उदास रहने लगे। प्राय: एकाकी रहते। अपने हृदय की वेदना यदाकदा अपनी डायरी में व्यक्त करते रहते। उन्हीं के

शब्दों में –

'उनके बिना क्या रहना ? मुझे भी उन्हीं के साथ चले जाना चाहिए था।'

'हम यहाँ क्यों पड़े है ? समझ में नहीं आता। कृपा करें तो हम भी चलें।'

'ये अक्षय नवमी क्षय ही हो गई मेरे लिए, कोई सुख नहीं, कोई आनन्द नहीं। मात्र आनन्द का भ्रम ही भ्रम है। सारा आनन्द उनके मधुर सानिध्य में ही था।'

'उनके साथ सहभोजन करते समय उनका उच्छिष्ठ प्रसाद लेते ही संसार का तिरोभाव हो जाता था। अतीन्द्रिय ज्ञानसम्पन्नावस्था होकर घण्टो मस्ती में झूमता रहता था। उनके समीप विश्राम की बात तो निराली ही थी। ऐसे-ऐसे खेल करके वे पूज्यश्री कौतुक देखते रहते और मन्दस्मित पूर्वक कहते-बस जी बहुत हो गया, अब आ जाईए यहीं पर। कहते हुए सिर को अपने कर से सहला देते थे। जिसकी वस्तु उसीको सौंपकर सदा की भाँति रह जाता था।'

'नित्य की सहज दिनचर्या न उल्लास, न उमंग जबरन शरीर चलाना है।'

'आज का पुण्य दिन (अगले वर्ष पूज्य श्री का जन्म दिवस) इस वसुन्धरा को, अनन्त जीवों को पवित्र करने परम पूज्य पधारे थे और इस पामर को ४० वर्ष निरन्तर सुख देकर लीन हो गए।'

'आज शाम को श्रद्धाञ्जलि में गया पूज्य श्रीपादजी की। आयोजन भव्य था परन्तु सर्वत्र शून्यता थी। ६ बजे तक बैठा, साथ श्रीमनोहरजी

भी थे। रहरहकर मन पूज्य महाराजश्री की स्मृति में लीन होता जाता था। रात्रि में दर्शन दे शान्ति दी।'

'मेरी सुनने वाला तो चला ही गया अब फिर क्या आवेगा? नहीं-नहीं अब भाव दर्शन ही संभव है।'

'श्री...जी ने कृपा पूर्वक झलक प्रदान करी।'

'प्रियतम तू मोहि प्राण ते प्यारो...--गाने की प्रेरणा दी और फिर सुनकर मेरा माथा भी गड़बड़ कर दिया। एकदम मन भीतर की ओर चला गया। ये मीठी सी स्मृति सुख-दुख की क्या है, तुम बोलते क्यों नहीं?'

'यज्ञोपवीत बदलते ही मेरे दृष्टिपथ पर आने लगे और मनसा यज्ञोपवीत पहना भी दिया पर पलंग पर पैर लटकाए कहाँ रहे? मेरे संग ही तो चल दिए और पुस्तक खोलते ही नयनों से इशारा कर दिया.. प्रियतम तू मोहि प्राण.......... फिर मुस्कुराकर नदारद!'

'श्रीमान! मर्जी आपकी...नादान हूँ, आपका ही तो हूँ।'

'कौन कहता है वे आते नहीं? कौन कहता है वे सुनते नहीं? बस, कृपा लब्ध है सब कुछ।'

'जीवन धन! तुम्हारे बिना जीना, क्या जीना? जबकि अज 63 वर्ष पूरे हुए क्या पूर्ण रूप से तुम्हारा सुख, आनन्द मिल सका? नहीं, फिर जीने का क्या अर्थ? हाँ कृतघ्न नहीं बनूँगा, तुम्हारी अपार कृपा है इसका प्रतिक्षण अनुभव करता हूँ।'

'सब लोग आते हैं अपना दुख सुनाकर चले जाते हैं, मेरा दुख सुनने वाला कोई नहीं।'

*****

१८ श्रीविग्रह की प्रतिष्ठा

परम पूज्य श्रीमहाराजजी के निकुञ्ज गमन के बाद उनकी पुष्प समाधि की स्थापना 'तमाल कुञ्ज' में की गई तथा एक स्मृति ग्रन्थ को छपाने का निर्णय लिया गया। अनेक विद्वान इस कार्य में लग गए और 'रसार्चन' नाम से यह ग्रन्थ तैयार हुआ। इसका विमोचन जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीश्रीराधासर्वेश्वरशरण देवाचार्य जी महाराज द्वारा किया गया। इसके बाद श्रीठाकुरजी के मन में पूज्य महाराजश्री के समाधि स्थल पर उनके अर्चाविग्रह की प्रतिष्ठा का संकल्प उठा।श्रीविग्रह के निर्माण कार्य को देखने के लिए श्रीठाकुरजी जयपुर गए। वहाँ श्रीराधाबाबा के एक कृपापात्र श्रीरामचन्द्रजी खीची के यहाँ ठहरे। श्रीठाकुरजी इस बात के लिए सचेत रहते थे कि भोजन किसी वैष्णव भक्त के यहाँ ही हो जहाँ, प्याज, लहसुन भी न खाया जाता हो। इनके खानपान को लेकर ठाकुरजी के मन में थोड़ी दुविधा थी। विश्राम के समय ठाकुर के मन में यह विचार चल रहा था तभी उन्होंने तन्द्रा में देखा कि जिस कक्ष में विश्राम कर रहे हैं उस कक्ष की एक दीवार में श्रीश्रीनाथजी का चित्रपट टंगा हुआ है। जागृत होने पर उस दीवार पर ऐसा कोई चित्रपट नहीं दिखा। श्रीश्रीनाथजी का इस प्रकार से स्फुरण होने के कारण श्रीठाकुरजी ने उन सज्जन से पूछा कि क्या आपके यहाँ श्रीनाथजी की सेवा होती है? उन्होंने बताया हाँ! हम लोग श्रीवल्लभकुल की परम्परा के अनुसार श्रीनाथजी की सेवा करते हैं। यह सुनते ही श्रीठाकुरजी के मन की सारी उहापोह समाप्त हो गई।

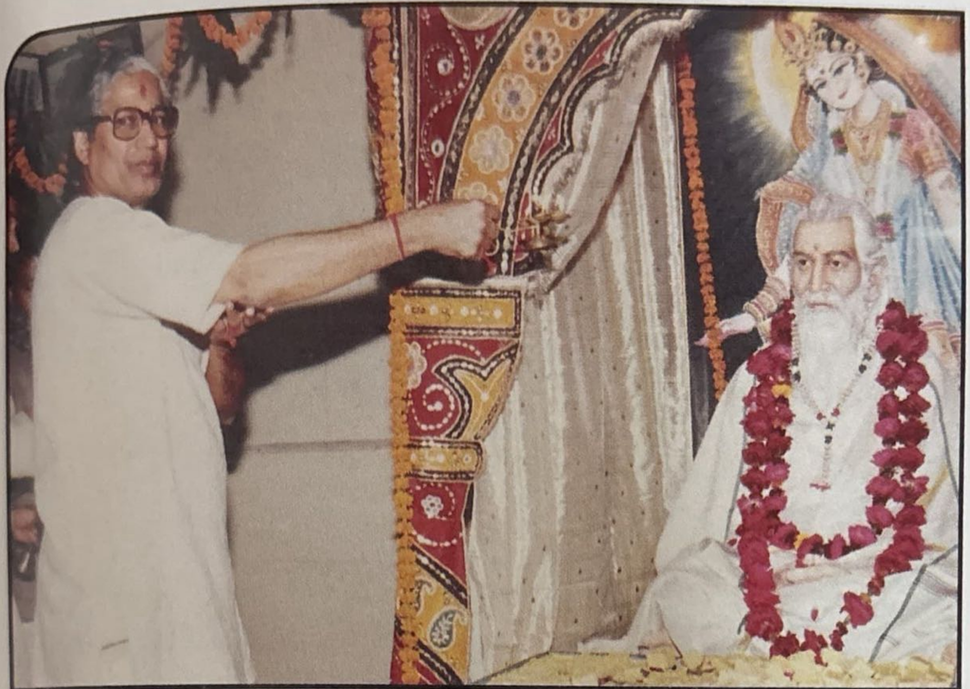
प्रसन्नता से उन्होंने प्रसाद पाया। श्रीविग्रह का कार्य पूर्ण होने पर उसे वृन्दावन लाया गया। दिनाँक २० दिसम्बर १९९६ गीता जयन्ती (पूज्य महाराजजी का जन्म दिवस) को भव्य समारोह पूर्वक अतिशय दिव्य भगवदीय वातावरण में श्रीविग्रह की प्राण प्रतिष्ठा की गई। परिकरजनों को पूज्य श्रीमहाराजजी अर्चा विग्रह के रूप में पुनः प्राप्त हो गए। श्रीठाकुरजी ने पूज्य महाराजजी के श्रीविग्रह के समक्ष नित्य प्रातःकाल पूज्य महाराजजी के द्वारा रचित पदों के गायन एवं नाम संकीर्तन की परिपाटी डाली। इन पदों को 'अलि भाव निर्झर' नामक ग्रन्थ में संग्रहित किया गया है। स्वयं श्रीठाकुरजी ने ही इनकी राग बैठाई एवं नित्य एक पद के गायन का नियम चलाया। नित्य प्रातः एवं सायंकाल श्रीविग्रह की सेवा-पूजा, आरती-भोग आदि व्यवस्थाकर सेवा-सुख का प्रदान किया।

श्रीठाकुरजी प्रतिवर्ष महाराजजी के आविर्भाव एवं तिरोभाव तिथि को उल्लास पूर्वक मनाते रहे। इस प्रकार परिकरजनों को पूज्य महाराजजी की अनुपस्थिति से आयी रिक्तता का अनुभव नहीं होने दिया। भक्तों के आग्रह पर इन्दौर, बड़वानी, महेश्वर, लोनारा, भोपाल, दिल्ली, फरीदाबाद, गोरखपुर, बनारस, लखनऊ, कानपुर आदि स्थानों में जाकर संकीर्तन की धारा बहाई। पूज्य महाराजश्री के अप्रकाशित साहित्य का प्रकाशन कराने में प्रयत्नशील रहे तथा उनके जीवन 'चरित वैभव' जिसके लेखक श्रीमनोहरदास बाबा हैं को प्रकाशित करवाया। साथ ही एक संक्षिप्त जीवन चरित्र को गोरखपुर के भूतपूर्व कुलपति श्रीविश्वम्भर शरणजी पाठक द्वारा अंग्रेजी में तैयार करवाकर वेब साइट www.raswaridhi.com के रूप में उपलब्ध कराया। वेणु विनोद कुँज

में स्वामी श्रीरामजी की रास मंडली द्वारा पूज्य महाराजजी की जीवन लीलाओं का भव्य मंचन करवाया। परिकरजन के विशेष आग्रह पर पूज्य महाराजजी के द्वारा रचित 'अलि भाव निर्झर' के पदों को गाकर चार भागों में कैसेट के रूप में बनवाकर जनसाधारण को उपलब्ध कराया। श्रीठाकुरजी की प्रेरणा से कई उत्साही गृहस्थ भक्तों ने श्रीधाम वास करना शुरू कर दिया। स्वयं जाकर उनके निवास हेतु श्रीठाकुरजी ने उपयुक्त स्थान का चयन किया और अनेक भक्तों को वृन्दावनवास की प्रेरणा दी।

श्रीठाकुरजी के सामने अनेक लोग प्रश्न रखते तो कई बार श्रीठाकुरजी कहते–कल महाराजजी से पूछकर बताऊँगा और दूसरे दिन उनका समाधान कर देते। पूज्य महाराजजी उनके लिए प्रत्यक्ष थे। स्वप्न में अथवा तन्द्रा में उन्हें उनके आदेश प्राप्त होते। एकदिन श्रीठाकुरजी को पूज्यमहाराजजी ने स्वप्न में कहा–'ठाकुरजी! ठाकुरजी! उठो मुझे पानी पिलाओं। बड़ी प्यास लगी है। ये हड़बड़ाकर उठ बैठे। देखा सचमुच ही उनके पलंग के निकट नित्य रखे जाने वाले जल के कलश को सेवक ने नही रखा था। तब श्रीठाकुरजी ने उसी समय जल लाकर पूज्य महाराजजी को भोग लगाया। एकबार उन्होंने बताया कि बाबूजी से कहकर सोता हूँ तो बाबा जवाब देते हैं, बाबा से कहकर सोता हूँ तो महाराजश्री जवाब देते हैं। वे कहा करते थे कि महापुरुष कहीं जाते नहीं हैं, कृपापात्र के हृदय में समाहित होकर रहते हैं।

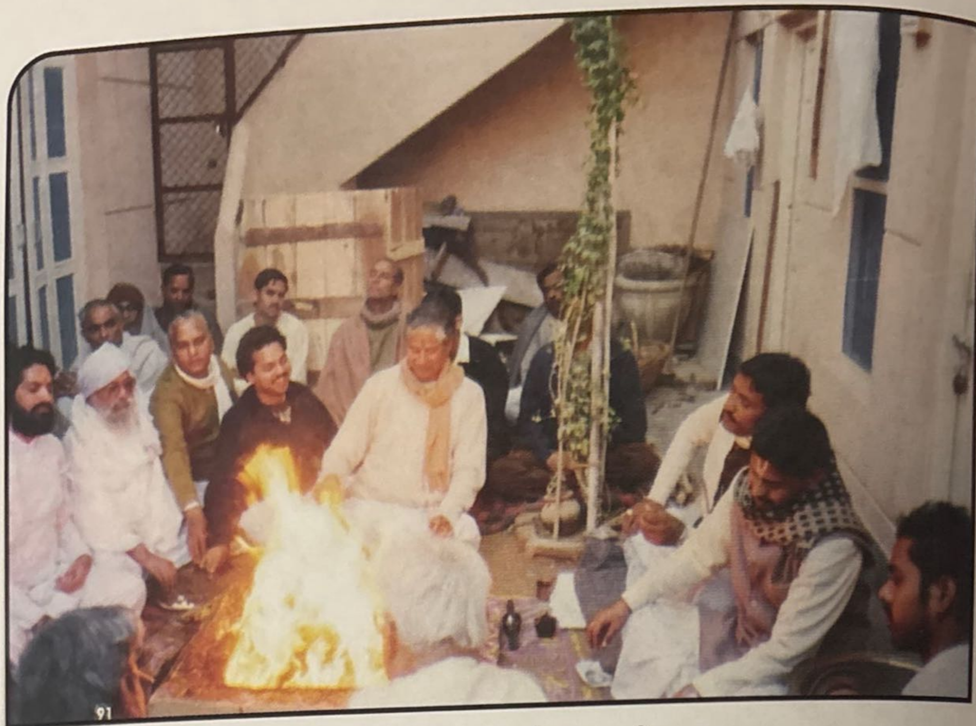
वृन्दावन में जिन-जिन गलियों में पूज्य महाराजजी प्रातःकाल टहलने के लिए जाया करते थे उन्हीं–उन्हीं गलियों में वे भी घूमने जाया करते थे। कहते थे कि जिन गलियों से पूज्य महाराजजी गुजरते थे उन्हीं



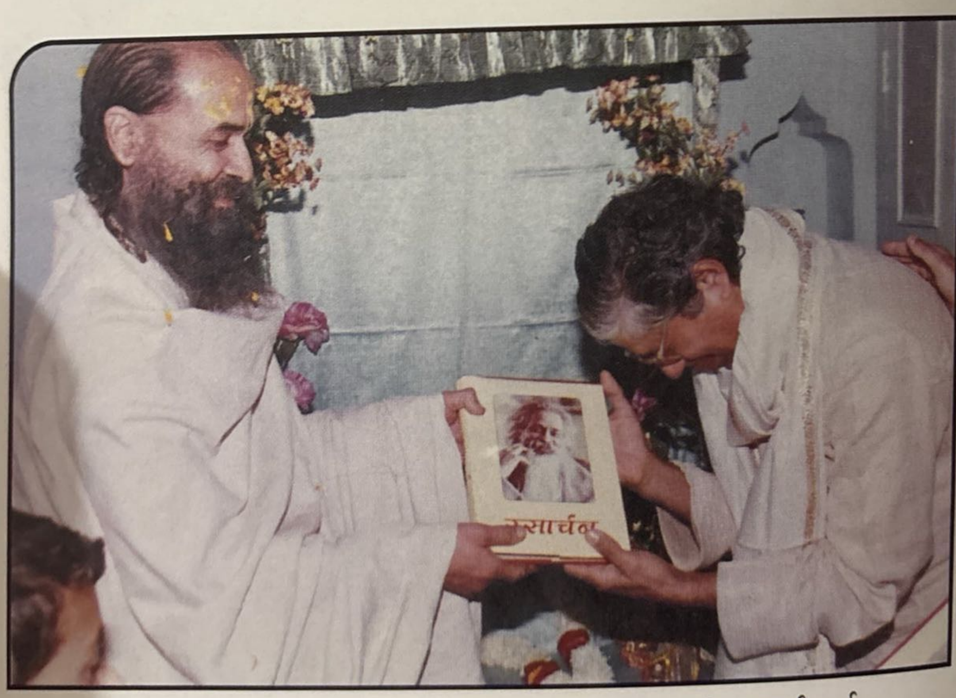
पूज्य महाराजश्री के श्रीविग्रह प्रतिष्ठा के अवसर पर
आरती करते हुए



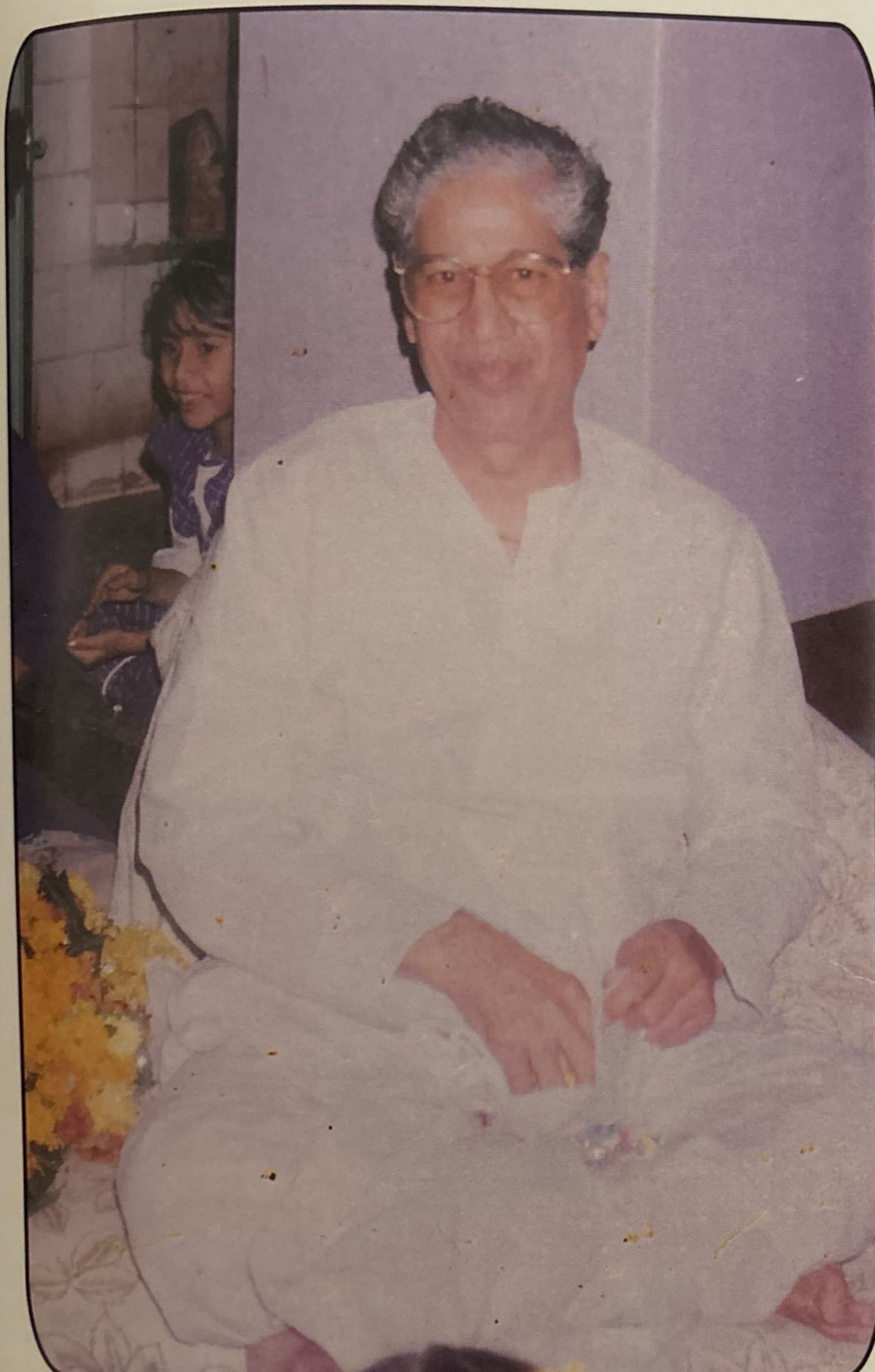
पूज्य महाराजश्री के श्रीविग्रह स्थापना के अवसर पर
शोभायात्रा में पूज्यश्रीपाद बाबा के साथ



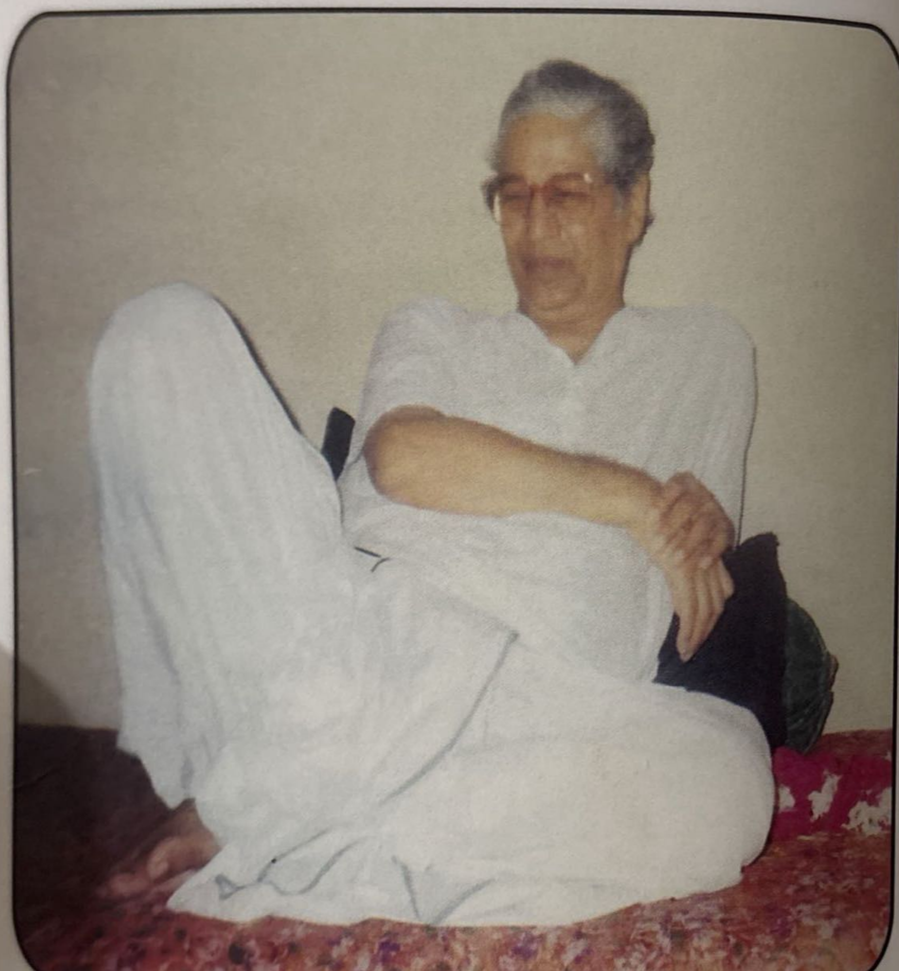
हवन करते हुए श्रीठाकुरजी



रसार्चन ग्रन्थ के विमोचन के अवसर पर जगद्गुरु निम्बार्काचार्य
श्री श्रीजी महाराज के साथ



बड़वानी मन्दिर प्रांगण में



विचार में निमग्न

गलियों में विचरना अच्छा लगता है। श्रीठाकुरजी जब आरती में खड़े होते थे तो उनका ऐसा अभ्यास था कि वे अपने आगे पूज्य श्रीमहाराजजी के लिये स्थान छोड़कर ही खड़े होते थे। उनकी यह भावना थी कि पूज्य महाराजजी पहले की भाँति ही मेरे आगे खड़े हैं।

अन्तर्मुखता

पूज्यश्री के धाम गमन के बाद उनमें विशेष अन्तर्मुखता परिलक्षित होती। प्रायः एकान्त में रहते। वृत्तियाँ किसी अन्य राज्य में ही तल्लीन रहतीं। शरीर से बेभान से रहा करते थे। एकबार उन्होंने एक अनुगत से अपनी मन:स्थिति व्यक्त करते हुए कहा-'भईया विचित्र स्थिति हो जाती है। कुटिया से यहाँ तक अभ्यासवश चला आता हूँ। मन कभी-कभी इतना तन्मय हो जाता है कि संसार दिखता ही नहीं। ज्ञानेन्द्रियाँ काम नहीं करतीं। कोई आवाज देता है तो मन एकदम संसार को पकड़ नहीं पाता। निकला तो ठोकर लग गई। 'जिनटेक' की जगह 'टेनोरमिन' ले ली... एकबार मैने महाराजजी से पूछा था कि कान है पर सुनाई न दे, नेत्र हैं पर जगत दिखाई न दें। अब जैसे श्रीमहाराजजी उन सभी बातों का अनुभव करा रहे हैं।'

इन्हीं दिनों की बात है श्रीठाकुरजी अपनी कुटिया 'राधा केलि कुंज' गए हुए थे। लघुशंका हेतु गली में गए तभी एककाले विषधर सर्प ने अपना फण इनके पाँव में रख दिया। श्रीठाकुरजी को पहले तो कुछ भान नहीं रहा किन्तु कुछ ठंडा स्पर्श होने से उन्होंने अपना पाँव झटका तो देखा एक बड़ा सा सर्प रेंगता हुआ चला जा रहा है। ठाकुरजी कहते कि सबसे खूब हाँ, हाँ करके हँसकर बात करता हूँ लोग समझते हैं कि ये खूब रुचि से सुन रहे हैं किन्तु मुझे कुछ भी याद नहीं कि क्या बात की।

वृत्तियाँ उधर पकड़ती ही नहीं। एकबार टहलते समय वे एक खण्डहर के सामने रुक गए और कहने लगे कि दीवारें क्या कहती हैं? साथ के व्यक्ति ने उत्तर दिया कि दीवारें कहती हैं कि कभी हम भी जवान थे। वे बोले नहीं, ये कहती हैं कि एकदिन सभीकी यही परिणिति होनी है। श्रीठाकुरजी के जीवन के अंतिम तीन वर्षों की अवधि वही कालावधि थी जिसके लिए पूज्य बाबा ने पूर्व में संकेत करते हुए कहा था कि जीवन के अंतिम तीन वर्षों में श्रीकृष्ण तुम्हारे लिए प्रत्यक्ष रहेंगे और इस बात का किञ्चित आभाव निकट के परिकरों को उनकी चेष्टाओं द्वारा मिल जाता था कि वे किसी गंभीर भाव में रसास्वादन में डूबे हैं।

वे नित्य प्रति अपनी डायरी में दिन की विशेष बातों को लिख लिया करते थे। उसमें लिखित कुछ वाक्यों द्वारा यह प्रतीत होता है कि अपने गुरुदेव से उनकी कितनी अधिक एकात्मता थी :-

'परम पूज्य ही थे व रहेंगे भरोसा करने के लिए, रात्रि में दीखते हैं, स्वप्न में पर बोलते क्यों नहीं?... बोलो-बोलो मेरे नाथ थोड़ा बोलो।'

'तन्द्रा लग गई मुस्कराते हुए दृष्टिपथ में आए'

'नाम रूप सब कुछ उनमें समा गया केवल साँस लेती देह मात्र है'

'श्रीजी ने कृपापूर्वक झलक प्रदान करी'

'क्या हुआ ये जो वदन में सहसा प्रवेश कर गए'

'कुछ आज्ञा दी स्वप्न में ... 'नारायण कवच' के तीन पाठ प्रतिदिन वे ही कराएँगे।'

'कुछ दिन ही अब इस जगत में हूँ। शीघ्र जाना है उनके मधुर चरणों में। ऐसा पूरा विश्वास है।' ट्रस्ट की मीटिंग में एकबार श्रीठाकुरजी ने

कहा था कि मेरे बाद पूज्य महाराजजी के दोनों उत्सव इसीप्रकार मनाते रहना अब मुझे शीघ्र जाना है।

श्रीधाम गमन

अगस्त २००१ में गीतावाटिका की राधाष्टमी महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए श्रीठाकुरजी गोरखपुर गए। वहाँ विभिन्न कार्यक्रमों में सम्मिलित हुए। नवमी तिथि को पूज्या मैया (पूज्य भाईजी की धर्मपत्नी) के विग्रह प्रतिष्ठा पर अत्यन्त भावपूर्ण 'जय माँ..जय माँ. जय जय माँ' का गान किया। दशमी तिथि को पूज्य भाईजी की तिरोभाव तिथि पर 'पद रत्नाकर' के पदों का गान होता है। श्रीठाकुरजी ने पिछले कई वर्षों से इस उत्सव में गाना छोड़ दिया था किन्तु इस बार जब इन्हें गाने के लिये कहा गया तो उन्होंने बिना किसी ननु-नच के गाना शुरू कर दिया-

'सजनी! चल वा पिय के देस।

जहँ न मोह-ममता की रजनी, जहाँ न बिछोह कलेस।।

जहँ नहिं आवन-जावन कितहूँ, पिय संग नित्य मिलाप।

जहँ नहिं ग्राम्य चर्चा को डर कछू, जहँ न अजस को पाप।।

जहँ नहिं होत अंग-संग कबहू, मिले रहैं दिन-रैन।

बिछुरत नाहिं एक पल मन सौं मृतक सजीवन मैंन।।

सहज अकिंचन तन-मन सगरे भरे रहैं पिय नेह।

आठों जाम धाम प्रियतम के बरसत रस कौ मेह।।

दूसरे दिन एकादशी तिथि को पूज्य बाबा के श्रीविग्रह के सामने

सायंकाल कीर्तन रखा गया। द्वादशी तिथि को आदरणीया सावित्रीबाई फोगला से विदाई लेकर देहली के लिए रवाना हो गए। उपस्थितजनों के यह पूछने पर कि आप वृन्दावन कब पहुँचेंगे उन्होंने कहा ११ सितम्बर को पहुँचूगा। ३१ अगस्त को दिल्ली पहुँचकर डालमिया कोठी में दिनांक ४ सितम्बर को श्रीकुँजबिहारी शर्मा, वृन्दावन की रामण्डली द्वारा पूज्य महाराजजी के जीवन चरित्र का मञ्चन करवाया। लीला में जिस समय श्रीमहाराजजी का जन्मोत्सव का दृश्य आया तो उठकर खड़े हुए और बड़े उल्लास से न्यौछावर बाँटी। उसी दिन रात्रि में श्रीठाकुरजी अस्वस्थ हो गए। उन्हें अस्पताल में भर्ती कराना पड़ा। अस्वस्थ स्थिति में भी उन्होंने महाराजजी के लीला मञ्चन को स्थगित न करने के लिए कहा। कई दिन अस्पताल में रहे। दिनाँक १० सितम्बर २००१ को अपने पास खड़े हुए बाबा मनोहरदासजी से कहा– 'मनोहरजी! मुझ पर महाराजजी की कृपा बरस रही है मैं एक मिनट भी उससे बाहर नहीं आ सकता।' उनकी उस समय की मुखमुद्रा का वर्णन करते हुए बाबा श्रीमनोहर दास जी ने बताया था– 'इतने कष्ट में भी उनके चेहरे पर एक तेज व भावमत्तता स्पष्ट झलक रही थी। मैं स्तब्ध रूप से उनकी ओर देखता रह गया।' दिनाँक ११ सितम्बर २००१ को ब्रह्ममुहुर्त में श्रीठाकुरजी ने नित्य लीला में प्रवेश किया और उसी दिन श्रीधाम वृन्दावन लाए गए। ११ सितम्बर की यह तिथि के बारे में उन्होंने पहले ही कह दिया था।

'सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग।'

वे कहा करते थे कि महापुरुष कहीं जाते नहीं वे तो अपने लीलाराज्य में पूर्ववत् ही स्थित रहते हैं।

*****

प्रेरणापद प्रसंग

१६

श्रीठाकुरजी कभी-कभी कुछ छुटपुट प्रसंगों की चर्चा किया करते थे जो बड़ी प्रेरणाप्रद होते थे। उन्हें उन्हीं के शब्दों में यहाँ दिया जा रहा है। :-

पूज्य बाबा ने मुझे नियम दिया था कि बाहर की कोई चीज मत खाना किन्तु मैने एकबार चोरी से पन्द्रह पैसे की कचौड़ी दिल्ली के बाजार से खरीद कर खाई। क्या करता परिस्थिति ही ऐसी थी की अगर नहीं खाता तो बेहोश हो जाता। गोरखपुर जाकर मैने पूज्य बाबा को बताया तब पूज्य बाबा ने कहा कि तुमने मुझे बता दिया इसलिए इसमें अब तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा।

* * *

एक बार मैने एक व्यक्ति के पैसे ले लिए। वह मेरा इतना घनिष्ट था कि उसके पैसों से मैं कुछ भी करूँ तो उसे खुशी होती किन्तु मैने उसके पैसे बिना बताए ले लिए। इससे मेरा भजन रुक गया। श्रीमहाराजजी को बताया तो वे बोले-'आपका मन साफ है अतः आपको इसका पता चल गया अब जितना पैसा आपने लिया था उसका दुगना पैसा वहाँ रख दीजिए, पीछे उसे बताकर क्षमा माँग लीजिएगा।' मैने ऐसा ही किया तब जाकर मेरा मन शान्त हुआ।

* * *

व्यक्ति एकान्त में रहे तब ना योगक्षेम का पता लगे। पहले से ही सब सुविधा जुटाए बैठे हैं तब क्या पता चले। मैं एकबार भजन के लिए एकान्त स्थान की खोज करते-करते घने जंगल में चला गया। दिनभर बैठा रहा कहीं भिक्षा के लिए नहीं गया तभी जोर की वर्षा व आंधी आने लगी। मेरे मन में विचार आया कि धाम में श्रीराधारानी किसी को भी भूखा नहीं सोने देती हैं किन्तु आज मैं भूखा ही रह गया हूँ। रात होने को आ गई थी तभी अचानक कहीं से एक ग्वाला दूध लेकर आया और दूध पीने का आग्रह करने लगा। मैं आश्चर्य में पड़ गया कि इस ग्वाले को कैसे पता चला कि मैं बैठा हूँ और भूखा हूँ। फिर मैने दूध पी लिया। मेरा हृदय अत्यन्त द्रवित हो रहा था। मन ही मन अपने को धिक्कारने लगा कि मैने 'श्रीजी' की करुणा पर सन्देह किया।

* * *

मुझे पूज्य बाबा के स्पर्श से वैराग्य मिला। पूज्य महाराजजी से भजन पद्धति एवं पूज्य श्रीभाईजी की कृपा से लीला चिन्तन। मैं बीस-बाईस वर्ष का था। मेरे मन में कोई दाग नहीं, एकदम उजली चादर थी। महाराजजी ने कहा कि एक सफेद चादर को कीचड़ में लपेट दो फिर उसे कितना भी साफ करो उसमें वैसी सफेदी नहीं आएगी और रंग भी वैसा चटक नहीं चढ़ेगा पर नई चादर उनके (श्रीकृष्ण) रंग में झट रंग जायेगी। अवस्था ही मुख्य होती है। बीस-बाईस की उम्र के बाद व्यक्ति में संस्कार स्थाई बनते जाते हैं।

* * *

सन्तों के अन्तर्मन में झाँकने से पहले अपने आप को परम निर्मल

करना चाहिए। उनकी आज्ञा पालन व निर्देशानुसार चलने में ही कल्याण है। धीरे-धीरे मन निर्मल होने पर यह सम्भव है कि सन्त के अन्दर की बात किसी श्रद्धावान साधक के मन में प्रतिबिंबित हो जाए।

❋ ❋ ❋

सन्त अपने संकल्प शक्ति से कुछ भी कर सकते हैं। यह घटना आज भी घटती है। मुझे इसका प्रत्यक्ष अनुभव है। मैने किसी को अपने संकल्प से बुलाया तो देखा कि वह आ गया। किसी प्रेमी सन्त के संकल्प से मैं उनके पास खिंचा-खिंचा चला गया।

❋ ❋ ❋

चतुर साधक तुक्ष भोगों में नहीं अटकता। वह अपने मन को श्रीकृष्ण के नाम, रूप लीला में निरन्तर अटका कर रखता है। उसे एक क्षण के लिए भी वहाँ से हटने की फुरसत नहीं रहती।

एकबार एक राजा ने घोषणा की जो व्यक्ति अमुक समय तक अमुक स्थान पर सबसे पहले आ जायेगा उसे राजपद प्रदान कर दिया जायेगा। राजा ने लोगों के स्वागत के लिए मार्ग में जहाँ-तहाँ बहुत प्रलोभन बिछा दिए। जगह-जगह सुख-सुविधा, खाने-पीने की सामग्री व दुर्लभ भोग हीरे-मोती, सोने-चाँदी की सामग्रियाँ उपलब्ध करा दीं। अनेक व्यक्ति राजपद पाने की इच्छा से निकले किन्तु मार्ग में ही कहीं न कहीं भोगों में अटकते गए। अरे, अभी जल्दी क्या है पहले इसका सुख भोग लूँ फिर पहुँच जाऊँगा किन्तु वे अटके ही रह गए। उनमें एक चतुर था। उसने उन भोगों की ओर देखा तो जरूर किन्तु अटका नहीं, सीधे

अपने लक्ष्य की ओर चलता रहा। वह जानता था कि कल यह सारा राज्य ही मेरा होने वाला है और राजा की सेवा में तो यह सब वस्तुयें सहज ही उपलब्ध रहती हैं। इसलिए इनमें क्या अटकना! साधक को इसी तरह सावधान रहकर भगवान की ओर बढ़ते रहना चाहिए।

❋ ❋ ❋

एकबार भोपाल निवासी श्रीहीरालालगुप्ता के घर में संकीर्तन के मध्य मुझे रोमांच होने लगा। कीर्तन जब तेज हुआ तो मन और भी डूबने लगा। पुलक, कम्प, रोमाञ्च व अश्रु बहने लगे। मैने नियंत्रण करने की बहुत कोशिश की किन्तु स्थिति मेरे हाथ से निकलती जाए। मैने सोचा कि संवरण कर लूँ ताकि महाराजजी के सामने कोई तमाशा न हो जाए। मन में आया कि लघुशंका के बहाने उठ जाऊँ पर बाथरूम कहाँ है भूल गया। पलंग के साथ ही बाथरूम का रास्ता था किन्तु मैं भूल गया। इशारे से बाथरूम का रास्ता पूछा और किसी तरह अन्दर जाकर किवाड़ के सहारे खड़ा हो गया। वहाँ पुलक, कम्प आदि और बढ़ गए। लगभग आधे घंटे खड़ा रहा फिर बैठ गया। जब पौन घंटा हो गया तो लोगों ने महाराजजी से कहा कि श्रीठाकुरजी को बड़ी देर हो गई। तब श्रीमहाराजजी बोले अच्छा-अच्छा। फिर उन्होंने धीरे-धीरे कीर्तन को विराम दे दिया। मैं बाहर निकला और कमरे में जाकर लेट गया। वहाँ न तो लघू न दीर्घशंका पड़ा रहा चार घंटे। थोड़ी देर बाद फिर पूज्य महाराजजी भी आए और चुपचाप लेट गए। वे कब आए इसका मुझे पता न लगा। जब उठे तो उन्होंने कहा कि भावों को संवरण करना चाहिए। मैं देख रहा था कि आपको कुछ हो रहा है।

❋ ❋ ❋

एकबार मैं श्री..जी के साथ पूज्य बाबा सुबलदासजी महाराज के दर्शन के लिए गया था। बड़े मस्त सन्त थे। ऐसे छिपकर रहते थे कि कोई भी उनके पास नहीं पहुँच सके और पहुँच जाए तो निहाल हो जाए। उस समय जाड़े का मौसम था। वे कोपीन पहने हुए शौच से बाहर आए थे। मैने उन्हें दो पद सुनाएँ। पद सुनते ही उनके मुख पर भावावेश में श्रमबिन्दु छलक आए थे। ये खुली आँख लीला दर्शन करते थे।

* * *

एकबार एक व्यक्ति ने गोरखपुर गीतावाटिका में स्थापित श्रीगिरिराजजी की रज में श्रीराधानाम लिख दिया और ऐसे ही छोड़कर चला गया। पूज्य श्रीराधाबाबा की दृष्टि रज पर लिखे हुएश्रीराधा नाम पर गई। पूज्य बाबा रज पर ही बैठे गए और उस नाम की सँभाल करने लगे कि कहीं किसी का पैर न पड़ जाए। पूज्य बाबा ने भिक्षा भी नहीं करी। सभी लोग चिंतित हो गए कि इसका क्या उपाय किया जाए। मैंने कहा कि बाबा आप थोड़ी देर विश्राम कर लें मैं यहाँ बैठ जाऊँगा। श्री बाबा बोले उस व्यक्ति को यह नहीं पता कि श्रीराधा नाम भी इतना ही चिन्मय है जितना कि साक्षात् श्रीराधा। बाबा ने कहा कि मैं सोच रहा हूँ कि इसका क्या किया जाए। बाद में बाबा को एक उपाय समझ में आया। उन्होंने मुझसे कहा कि तुम इस रज को लेकर मेरे आँचल से बांध दो। मैं इसे तुलसी कानन में विसर्जित कर दूँगा और मैंने वैसा ही किया। इस प्रकार बाबा की भावनाओं को बहुत विश्राम मिला।

* * *

एकबार अपने भोपाल प्रवास के समय एक महाशय के बहुत आग्रह पर पूज्य श्रीमहाराजजी के साथ श्रीठाकुरजी एवं श्री हीरालालजी सांध्य बेला में घूमते हुए उनके निवास पर गये। भोपाल के एक अन्य परिकर श्री रमेशजी सराफ को ज्ञात हुआ तो वे भी अपने स्कूटर से उन महाशय के यहाँ पहुँच गये। वहाँ पहुँचने पर श्रीरमेशजी को यह पता चला कि किसी कारण से पूज्य श्रीमहाराजजी को वहाँ रुकना रुचिकर नहीं लगा अत: वे वहाँ से श्रीहीरालालजी के साथ तुरंत उठकर चले गए पर श्रीठाकुरजी वहाँ रुके रहे। श्रीठाकुरजी को उन महाशय को यह समझाने में कुछ समय लग गया था कि हम लोग फिर कभी आयेंगे। उनको समझाकर श्रीठाकुरजी, श्रीरमेशजी के साथ श्रीहीरालालजी गुप्ता के निवास की ओर चल दिये। कुछ दूर चलने के पश्चात् श्रीरमेशजी ने श्रीठाकुरजी से स्कूटर पर बैठकर चलने का आग्रह किया। श्रीठाकुरजी ने पैदल ही चलने के लिये कहा। रास्ता २ किलोमीटर का काफी ऊँचा-नीचा था। श्रीरमेशजी पसीने से तर-बतर स्कूटर घसीटते हुए श्रीठाकुर जी के साथ चलते रहे। वहाँ पहुँचकर देखा कि पूज्य श्रीमहाराजजी पूर्व से ही विराजमान थे और ज्ञात हुआ कि पूज्य महाराजजी पैदल ही चलकर वहाँ तक आये थे। श्री रमेश जी की ओर देखकर श्रीठाकुरजी मुस्कुरा उठे तब श्री रमेशजी को समझ में आया कि श्रीठाकुर जी क्यों पैदल चलकर आए। उन्हें यह पूर्वाभास था कि पूज्य महाराजजी पैदल ही गए होंगे और जब पूज्यश्री पैदल भ्रमण कर रहे हैं तो वो स्वयं स्कूटर पर कैसे बैठ सकते थे।

******

२० रोचक प्रसंग

एकबार श्रीठाकुरजी वृन्दावन से गोरखपुर जा रहे थे। जिस ट्रेन के कोच में बैठे थे। उसी में एक सज्जन इनकी सीट के नीचे वाली बर्थ में बैठे थे। उन सज्जन को धूम्रपान करने का व्यसन था और श्रीठाकुरजी को धुँआ सहन नहीं हो रहा था। उन्हें सारी रात नींद नहीं आई। जैसे-तैसे इन्होंने गोरखपुर तक की यात्रा पूरी की। ट्रेन से उतरकर श्रीठाकुरजी सीधे गीतावाटिका में पूज्य श्रीराधाबाबा के पास गए। पूज्य बाबा ने इनसे पूछा कि ठाकुर क्या हाल है। आँखें लाल क्यों हैं? श्रीठाकुरजी ने पूज्य बाबा को बताया कि बाबा एक सज्जन के रुप में श्रीकृष्ण की एक लीला के कारण ऐसा हुआ और सारी बात बताई। पूज्य बाबा ने कहा भईया जरा पीछे घूमकर देखों कहीं वे सज्जन इनमें से तो नहीं हैं। हुआ भी वही वे सज्जन भी गीतावाटिका आए थे। दूसरे दिन उन सज्जन को लेकर पूज्य श्रीभाईजी पूज्य बाबा के पास आए और उन्हें मिलाते हुए कहा कि ये अमुक व्यक्ति हैं। पूज्य बाबा ने कहा कि आइए नन्द-नन्दन महाराज कहिए आपकी क्या सेवा करूँ और उन्होंने एक पत्ते के ऊपर रखी हुई दो सिगरेट उन सज्जन को एक निकटस्थ व्यक्ति के द्वारा दिलवाई। (जो कि पूज्य बाबा ने पहले से ही अपने पास मँगवाकर रखी थी।) पूज्य श्रीभाईजी चौंके- बाबा यह क्या? पूज्य बाबा बोले-'पोद्दार महाराज जैसे नन्द-नन्दन वैसे ही इनकी सेवा।' बाबा ने उन सज्जन से कहा आप जी भरकर सिगरेट पीजिए। और बाद में पूज्य भाईजी को सारी घटना बताई। पूज्य भाईजी उनकी ओर देखने लगे तब उन्होंने अपनी भूल स्वीकार की और पूज्य भाईजी के सामने ही सदा के लिए

धूम्रपान छोड़ने का संकल्प किया।

* * *

एक सरल सद्‌गृहस्थ महिला जो गीतावाटिका में ही पूज्य भाई जी एवं पूज्य बाबा के आश्रय में रहकर भजन किया करती थीं। उनके सरल हृदय में उनके इष्ट लाला कन्हैया साक्षात् प्रगट रहते थे। उनसे बातें करना, लाड़-लड़ाना बस यही इनका भजन था। राधाष्टमी के अवसर पर उत्सव पण्डाल में होने वाले पदगान के कार्यक्रम में ये बैठी थीं। श्रीठाकुरजी इस कार्यक्रम में कुछ देर सम्मिलित होने के बाद पूज्य बाबा के साथ अपनी कुटिया में आ गए थे। इधर उन माताजी के कृष्ण कन्हैया ने बार-बार उन्हें तंग करना शुरू कर दिया। वे कहने लगे- 'मैया चल! यहाँ मत बैठ।' उनके बार-बार तंग करने पर अम्मा उठकर चल दीं। उनका लाला उन्हें खींचकर सीधे श्रीठाकुरजी की कुटिया में ले गया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि श्रीठाकुरजी कुटिया में बैठकर कोई कैसेट सुन रहे हैं। कैसेट में ठेठ ब्रज भाषा में गाए गए होरी के पद चल रहे थे। इनमें परम्परागत दुर्लभ गालियों का संग्रह था। जिसे सुनकर मैय्या का हृदय खिल उठा। उनका आनन्द यहाँ पर आकर द्विगुणित हो गया। श्रीठाकुरजी उनके अचानक आगमन से चकित थे। तब मैय्या ने सारी बात प्रगट की कि कैसे उनका कन्हैया उन्हें उत्सव पण्डाल से खींचकर यहाँ लाया है जिसे सुनकर ठाकुरजी गद्‌गद हो गए।

* * *

एकबार निमाड़ क्षेत्र में नर्मदा तीर पर स्थित एक गाँव के नवग्रह मन्दिर में श्रीमहाराजजी एवं श्रीठाकुरजी बैठे हुए थे। सन्ध्या की

अंधियारी छाई थी। श्रीठाकुरजी ने देखा के नर्मदा जी में गर्दन तक जल में डूबा हुआ एक व्यक्ति बड़ी देर से स्थिर खड़ा हुआ है। उस व्यक्ति को इंगित करते हुए श्रीठाकुरजी ने श्रीमहाराजजी से कहा–'महाराजजी देखिए कोई साधू गर्दन तक जल में डूबा हुआ तपश्चर्या कर रहे हैं।' महाराजश्री ने एक दृष्टि डाली फिर श्रीठाकुरजी से बोले–'अभी देखिएगा कि यह व्यक्ति क्या करता है।' थोड़ी देर बाद वह व्यक्ति जल से ऊपर आया और अपने दोनों हाथ ऊपर किए तो देखा गया कि उसके हाथ में मछली पकड़ने वाला बहुत बड़ा एक जाल था। पूज्य श्रीमहाराजजी एवं श्रीठाकुरजी खूब जोर से हँसे। फिर महाराजजी बोले–'अंधेरी रात में और ठंडे जल में घंटों डूबकर इतनी तितिक्षा व कष्ट सहन करके इसको थोड़ी से मछलियाँ प्राप्त हुई। साधक यदि इसकी आधी भी तितिक्षा भगवद् भजन के लिए करे तो काम ही बन जाए।'

* * *

श्रीठाकुरजी प्रतिवर्ष ऋषिकेश में होने वाले पूज्यभाईजी के सत्संग में सम्मिलित हुआ करते थे। एकबार वृन्दावन से वहाँ जाने के लिए पूरी तैयारी कर ली। जाने से पहले वे पूज्य महाराजजी के पास बैठ गए। पूज्य महाराजजी ने सत्संग की चर्चा शुरू कर दी। सत्संग बहुत देर तक चला। उस दिन ठाकुरजी नहीं जा सके क्यों कि उनकी ट्रेन छूट गई थी। अगले दिन फिर सामान बाँधा रास्ते के लिए पूड़ियाँ बन गई। चलते समय एक महत्वपूर्ण व्यक्ति मिलने आ गए, रुकना पड़ा। सामान खोला, यह देखकर पूज्य महाराजजी खूब हँसे। उन्हें हँसता देखकर ठाकुरजी ने कहा–'आपको नहीं भेजना है तो मनाकर दीजिए।' पूज्यश्री

बोले-'नहीं जी, आप अवश्य जाइए। अगले दिन श्रीठाकुरजी ने पुन: तैयारी की और रिक्शे में बैठ गए। श्रीमहाराजजी उनको देखकर मुस्कराए। ठाकुरजी सशंकित हो गए कि अब क्या खेल करने वाले हैं। इतनें में देखा कि सामने से ठाकुरजी की पूज्या माताजी गाँव से पैदल चली आ रही हैं। श्रीठाकुरजी रिक्शे से उतर पड़े। श्रीमहाराजजी उनका थैला खोलने लगे और बोले कि पूड़ी निकालो भूख लगी है। अन्तत: उस वर्ष श्रीठाकुरजी को यात्रा स्थगित करनी पड़ी।

ऐसे ही एकबार श्रीठाकुरजी ऋषिकेश जाने के लिए टिकट लेकर ट्रेन में बैठने जा रहे थे कि एकाएक कहीं से वंशी की ध्वनि सुनाई पड़ी। ठाकुरजी मन में विचार करने लगे कि वृन्दावन से बाहर कहाँ जा रहा हूँ। उन्होंने टिकट फाड़ा और वापस आ गए। इन्हें वापस आया देखकर श्रीमहाराजजी हँसे व बोले आप कहाँ से आ गए, हमने तो सोचा था कि आप हाथरस पहुँच गए होंगे। बाद में श्रीमहाराजजी ने कहा कि मेरा भेजने का मन नहीं था।

* * *

एकबार गोरखपुर मेंश्रीठाकुरजी से मिलने एक परिचित विद्वान व भक्त हृदय महानुभाव आए। ये पूज्य श्रीराधाबाबा के परम कृपा पात्र थे। उन्हेंाने श्रीठाकुरजी से एकान्त में मिलने का समय माँगा। निकट ही वृक्षों की छाया में बैठकर श्रीठाकुरजी को अपनी मानसिक उलझन बताते हुए उन्होंने कहा कि अमुक व्यक्ति को देखते ही मुझे बहुत क्रोध आता है और मुझे उससे चिढ़ होती है। उन्होंने उस व्यक्ति के आचरण व स्वभाव में गड़बड़ियों सम्बन्धी अनेक बातें कहीं जिनके कारण उन्हें

उद्वेग होता था। श्रीठाकुरजी ने उनकी सारी बातें सुनी फिर बोले–' आपने जो बातें अमुक व्यक्ति के बारे में बताई है वह सब मैं भी जानता हूँ किन्तु मुझे कोई उद्वेग नहीं होता क्योंकि पूज्य श्रीराधाबाबा ने इस व्यक्ति के विषय में कहा है कि कालान्तर में इस व्यक्ति की परिणति अमुक भाव के ब्रजपरिकर के रूप में होगी। सूर्य–चन्द्र मिथ्या हो सकते हैं किन्तु मेरी बात मिथ्या नहीं होगी। इस प्रकार का आश्वासन जिसे बाबा ने दिया है उसके सम्बन्ध में अन्य कुछ विचार करने की बात रही ही नहीं। यह भविष्य में उस भाव समुद्र में निमज्जित होने वाला ही है। मैं तो उनको अभी से ही उस रूप में देख रहा हूँ। उसके वर्तमान स्वरूप को देखते ही मुझे पूज्य बाबा की याद आ जाती है। हो सकता है कि भविष्य में उसे गले लगाकर न मिल सकूँ क्यों न अभी ही उससे गले लग कर मिल लूँ। मानो मैं ब्रजपरिकर से ही गले मिल रहा हूँ। उसके वर्तमान जीवन के क्रियाकलापों पर मेरा ध्यान ही नहीं जाता। आप साधक हैं इसीलिए मैं यह बात आपसे कह रहा हूँ। यदि आपको पूज्य बाबा की वाणी पर कोई सन्देह नहीं है तो फिर उद्वेग का कोई कारण नहीं होना चाहिए।"

श्रीठाकुरजी के इस स्पष्ट समाधान से वह सज्जन परम सन्तुष्ट हुए। उनके मन का मलिन भाव जाता रहा। वे बोले– ' श्रीठाकुरजी आपने मेरे सिर का मनोबोझ उतार दिया है। ' ऐसा कहकर वे खिलखिलाकर हँस पड़े।

* * *

एकबार श्रीठाकुरजी श्रीपाद सनातन गोस्वामीजी के समाधि स्थल समाजवाड़ी वृन्दावन में दर्शन करने गए और एक परिक्रमा लगाकर

उसके पिछले हिस्से में बने हुए प्राचीन कूप से सटी हुई दीवार पर बैठ गए। यहाँ से परिक्रमा पथ स्पष्ट दिखाई देता है। इन्होंने देखा कि सामने परिक्रमा मार्ग पर एक घुड़सवार अपने घोड़े को दौड़ा रहा है और उसे नचाने की ट्रेनिंग दे रहा है। वह अपने कार्य में इतना मग्न है कि आने जाने वालों की तरफ उसकी दृष्टि नहीं है। श्रीठाकुरजी काफी देर से उसकी क्रिया को देख रहे थे। कुछ देर बाद उन्होंने अपने समीप बैठे हुए साधक से कहा कि घोड़े वाले को सोते समय भी घोड़ा दिखाई देता होगा और पशु भय ग्रस्त होकर इस घुड़सवार का चिन्तन करता होगा। दोनों एक दूसरे का चिन्तन करते होंगे। यदि ऐसे में इन दोनों का शरीर छूट गया तो अगले जन्म में चिन्तन के प्रभाव से घोड़ा तो आदमी बन जायेगा और घुड़सवार निरन्तर घोड़े का ध्यान करने के कारण घोड़ा बन जायेगा। जैसे कीट भृङ्ग का चिन्तन करते-करते भृङ्ग हो जाता है।

* * *

इन्दौर में श्रीराधेश्याम गुप्ता के घर पर श्रीठाकुरजी ठहरे थे। घर के बाहर सारा परिवार श्रीठाकुरजी के साथ खड़ा था। सावन का महीना होने पर भी वर्षा का नाम नहीं था। पास में खड़े परिवार के बालकों में से किसी ने कहा-'ठाकुरजी आपके रहते हुए भी क्या वर्षा नहीं होगी?' उसकी बात सुनकर ठाकुरजी ने भाव विभोर होकर सूरदासजी के पद की पंकित गानी शुरू कर दी।

'बरसो रे मेहा बरसो।

पिया बिन जैसे मेरी अखियाँ बरसे।।'....

सभी को महान आश्चर्य हुआ कि एकाएक थोड़ी देर में बादल छा

गए और खूब वर्षा हुई।

एकबार गुजरात में किसी भक्त के यहाँ श्रीमहाराजजी ठहरे हुए थे। साथ में श्रीठाकुरजी भी थे। श्रीठाकुरजी का परिचय देते हुए महाराजजी ने कहा ये ठाकुर हैं, इनके लिए भी भोजन की व्यवस्था करें। उन लोगों ने महाराजजी के लिए भोजन की व्यवस्था की और श्रीठाकुरजी के लिए थोड़ी दूर पर एक पीढ़ा व पत्तल बिछा दी। महाराजजी को यह देखकर कुछ अटपटा सा लगा। उन्होंने पूछा कि ठाकुरजी के लिए इतनी दूर आसन क्यों लगाया। इस पर वे लोग बोले कि हमारे यहाँ ठाकुरों की अलग पंगत रहती है। यह सुनकर महाराजजी खूब हँसे और ठाकुरजी के बारे में ठीक-ठीक परिचय देते हुए कहा कि ये ब्राह्मण हैं और बचपन में श्रीकृष्ण बना करते थे। ब्रज में श्रीकृष्ण को ठाकुर कहते हैं। जिसे सुनकर और महाराजजी के पास ही उनके प्रसाद की व्यवस्था की।

*****

२१ सदुपदेश

श्रीठाकुरजी के श्रीमुख से निसृत एवं साधकों को लिखे गए पत्रों से उद्धृत कुछ उपदेशात्मक वाक्यों को यहाँ संग्रहित किया गया है।

★ खाली मन से संत के पास बैठे रहो लहर आएगी और तुम्हें कहाँ से कहाँ उड़ा ले जाएगी।

★ कितने ही व्यक्ति संत के सम्पर्क में आते हैं और उनमें से कितने ही छिटक जाते हैं। संत आज्ञा का बारम्बार उल्लंघन करते हुए भी अपने को महान सत्संगी प्रदर्शित करते हैं। जरा सोचो श्रीकृष्ण ने मिलवाया संत से किसलिए अरे, वे स्वयं हमसे मिलना चाहते है।

★ 'ओज रूपे श्रीकृष्ण शक्ति, जीव याही ते करे नेह भक्ति।' ब्रह्मचर्य की भित्ति पर ही भजन की इमारत खड़ी होती है।

★ यहाँ की सब वस्तुएँ छूटेंगी ही इसमें कोई दु:ख की बात नहीं क्योंकि यह जगत अपूर्ण है अपूर्ण ही रहेगा किन्तु हम पूर्ण के अंश हैं और इस अपूर्ण जगत से हमें कभी सुख नहीं मिल सकता। इसलिए जो पूर्ण हैं (श्रीकृष्ण) इनहीं के मधुर नाम, रूप लीला स्मृति में रहना चाहिए। बस, मृत्यु और भगवान को याद रखना।

★ मान-अपमान के चक्कर में पड़ना नहीं चाहिए। वे जैसे चाहें रखें इस बात के लिए उनपर निर्भर हो जाओ।

★ पूज्य बाबा की कही हुई बात है। दु:ख भोगने वाला व्यक्ति यदि अपनी कर्म राशि को देखभर ले तो पागल हो जाए। प्रभु बहुत दया

करके उसके भोग को अल्प से अल्प करके भेजते हैं और शेष कर्म राशि को वे अपनी अकारण कृपा द्वारा नष्ट कर देते हैं। इतने थोड़े से कष्ट में व्यक्ति तिलमिला जाता है। यदि पूरा भोगना पड़े तो पता चले। जब कह दिया कि ये निषिद्ध कर्म है। नहीं करना, तो मत करो पर जब करते हो तो भुगतो। व्यक्ति निषिद्ध कर्म करते समय तो अहम् में रहता है पर जब कष्ट उठाता है तो हाय! हाय! करता है। भईया ये कष्ट इसलिए आया कि इसे अभी भोगकर समाप्त कर दें और दुबारा जन्म न लेना पड़े। यह इनकी कितनी बड़ी कृपा है।

★ दैवी माया बड़ी विचित्र है। सब कुछ सामने होते हुए भी प्रगट नहीं होने देती भ्रमित कर देती है। अर्जुन को निरन्तर अपने साथ रहने वाले श्रीकृष्ण मित्र ही दिखाई पड़ते थे। अरे! ये तो बुआ के लड़के हैं तब इन्हें अपना विराट स्वरूप दिखाना पड़ा। फिर जाकर कहीं वास्तविकता को जान पाए। इसलिए भगवान का स्वभाव है 'पामरन से प्रीति' पामर प्राणी तो सभी हो सकते हैं इसलिए सब पर प्रीति है। बस प्रीति है यह विश्वास हुआ कि उद्धार निश्चित हो गया समझना। इसका यह मतलब कदापि नहीं है कि पामर-पतितों से प्रीति है तो हम वही बने रहें।

★ भजन का फल है भाव की वृद्धि। कहीं भजन के फल में भाव का अभाव हो रहा हो तो समझना वहाँ भजन के नाम पर वज़न ही बढ़ रहा है। सावधान हो जाना चाहिए। मन, प्राण अत्यन्त कोमल होते जाएँ सेवा में आनन्द बढ़ता जाए। अपने दोषों के प्रति दृष्टि रहे, अन्यों के प्रति आदर-भाव बढ़ता जाए। मन एक अचिन्त्य रस में डूबा रहे। किसी की कटुता पर ध्यान ही न जाए। कटुता है यह भी विचार न आवे बस

एकदम वहीं-वहीं (अपने रस में एकरूप) बना रहे। मन के सामने वे ही वे ही दिखते रहें। न दिखने पर क्यों नहीं दिखते? ऐसी चटपटी इतनी जोर की रहे कि खान-पान, विश्राम हराम हो जाए। ऐसा होना उनकी कृपा से संभव है। कृपा तो है ही बस अनुभव करना है। भविष्य के लिए हमने छोड़ा है नहीं तो अभी इसी क्षण हो जाता अनुभव।

★ गुरुतत्व व्यापक है। एक देशकाल में आबद्ध नहीं रहता। वह सर्व देशकाल में सर्वत्र सबको सुख-शान्ति देता रहता है।

★ सब साधन का फल उसे मिल गया जो अपने निज निकेतन में पहुँच गया। निजधाम ही तो ब्रजधाम है। नित्य गोलोकधाम ही अपना निजधाम है। हृदय के अन्दर और बाहर वही तो प्रकाशित हो रहा है। इस बात पर विश्वास हो जाए तो काम बन गया। हम वृन्दावन धाम में हैं अवश्य पर न जाने कौन-कौन से सुख सुविधा धाम में निरंतर विचरते रहते हैं। धाम में रहकर धामी में, नाम में रहकर नामी में जो रहे वहीं ठीक से रह रहा है।

★ श्रीकृष्ण की महती कृपा से ही जीव इस पथ की तरफ देख सकता है अन्यथा पामर विषयरत, काम-क्रोध का गुलाम क्या कर सकेगा? भगवद् कृपा, पूज्यजनों की कृपा को लेने के लिए कुछ योग्यता की आवश्यकता होती है। जो कि मात्र उनमें शरीर वाणी मन से लगे रहने से ही आ जाती है। कोई अलग प्रयास की जरूरत नहीं।

★ भगवान की कृपा सब तरफ व्याप्त है हमें उन्हीं के श्रीमुख की ओर देखते रहना है। क्या हुआ? क्यों हुआ? कब हुआ? आदि द्वन्दों में नहीं पड़ना है। सत्संग सुनने सुनाने का नहीं है अपितु मनन पूर्वक चलने

का विषय है। सुख-दुःख, हानि-लाभ, जय-पराजय आदि से हमारा क्या मतलब? हमें यहाँ तो रहना नहीं है, जाना है, अनिवार्य जाना है। वहाँ के लिए क्या व्यवस्था की है उसी को ध्यान में रखना है। मैं यह शरीर था नहीं, यह रहेगा भी नहीं फिर मेरा क्या स्वरूप है। उसी को देखने प्रयत्नशील रहना चाहिए। आयु में बड़े होने से, धन में, मान में बड़े होने से कोई बड़ा नहीं होता। जीवन लाभ जिसने कर लिया वही बड़ा है, सर्वमान्य है।

* देखो मैने पूज्य बाबा की पुस्तक के ऊपर रखकर चैक में हस्ताक्षर नहीं किए क्योंकि बाबा मूर्तिमान हैं।

* भावना का बहुत महत्व होता है। हम जैसी भावना करते हैं वस्तु वैसी ही दिखाई पड़ती है। भगवान भावना के भूखे होते हैं। सोचो भगवान पूर्ण तृप्त आप्तकाम हैं। भक्त के हृदय की भावना से उन्हें भूख लग आती है, वे तृप्त से अतृप्त हो जाते हैं और वे भोग ग्रहण करते हैं। छप्पन भोग में देखो कितना समान बनता है- कढ़ी, भात, रोटी, कई प्रकार की दालें, हलुआ, दही-बड़ा, खीर, पकौड़ी........ आदि-आदि कितना भोजन बनता है। सब भगवान प्रेम से आरोगते हैं और अनेक लोगों को प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि कभी पूड़ी खाई हुई मिलती है, कभी लड्डू पर दाँत के चिन्ह स्पष्ट दिखाई देते हैं। मुख्य बात है अपनी भावना की ही।

* भगवद् कृपा अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों के रूप में आया करती है परन्तु हम अज्ञ व्यक्ति समझ नहीं पाते हैं यदि समझ ही जाएँ तो सन्त की श्रेणी में आ जायेंगे।

★ स्वरूप प्राप्त हो जाने के बाद एक अनिर्वचनीय स्थिति हो जाती है। यहाँ के देशकाल से उनके स्वरूपगत देशकाल का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। वह अपने भावराज्य में तन्मय रहा करता है। जब प्राणों के निकलने में मानों एक पल का समय रह गया है। प्राण कंठ से ऊपर निकलने वाले हैं ऐसी स्थिति में कहीं जाकर साक्षात्कार होता है।

★ जीवन के मधुर क्षण पलक गिरते न गिरते बीत जाते हैं परन्तु दुःख के क्षण पहाड़ जैसे प्रतीत होते हैं। भगवद् विश्वासी इन्हीं क्षणों में अडिग, अचल बना रहता है। "त्राहिमाम्" वाली बात भी नहीं आती। कारण उसे पूर्ण विश्वास रहता है कि वे मेरी हर परिस्थिति को जानते हैं, अन्तर्यामी जो ठहरे। यह सत्य है कि ऐसी परिस्थिति में बड़े-बड़े डिग जाते है। धीरज, धर्म, मित्र आदि का पता समय पर ही लगता है। मात्र भगवान एवं सन्तजन ही हर समय हर परिस्थिति में हाजिर रहते हैं। मन को प्रसन्न एवं शान्त रखना चाहिए।

★ ज्ञानी को भी शरीर से मन को अलग हटाना पड़ता है और भक्त को भी। कारण असत्य कभी टिकता नहीं है। इसकी पृथक सत्ता ही नहीं है। यह सत्य हो ही नहीं सकता। जो जलकर राख होने वाला है उसके दुःख में दुखी होना एवं नित्य मधुर सुन्दर अपने जीवन धन को भूले रहना कितनी बड़ी मूर्खता है।

★ शरीर से सेवा मन से उनका चिन्तन तभी काम बनेगा।मन को संसार में लगाया तो बड़ी कठनाई पड़ेगी क्यों कि संसार का स्वरूप चंचल है यह अस्थिर है जो टिकने वाला ही नहीं है जबकि हृदय में स्फुरित होने वाले श्रीकृष्ण नित्य स्थिर हैं।

★ **चलत चितवत दिवस जागत स्वपन सोवत रात।**

हृदय ते यह श्याम मूरति छिन न इत उत जात।।

यह दिनचर्या गोपीजनों की थी वही होनी चाहिए हमारी भी कारण हम वहीं के हैं हमें वहीं पहुँचना जो है।

★ कर्तव्यनिष्ठ होकर भी भगवद् विस्मृति पूर्वक रहना क्या बुद्धिमानी है। ये कर्म भी उन्हीं के हम भी उन्हीं के जिनका यह सम्पूर्ण संसार है। स्टेज पर कार्य करके अभिनय कर्ता घर जाने की त्वरा में रहता है इसी प्रकार कर्तव्य पालन के समय भी उनका स्मरण बने रहना चाहिए। अपनी पाठ-पूजा, जप आदि तो चलना ही चाहिए।

★ भगवान के सामने रोने से शरीर, मन, बुद्धि सभी पवित्र होते हैं। पवित्र होने पर वे (श्रीकृष्ण) आविष्ट होते हैं। बस काम बन गया। मूल है रोना उनके लिए।

★ मन मुग्ध रहे चाहे बोले या मौन रहे। मन माधव में रहे चाहे बैठे या दौड़ लगाए। मन मानिनी के मनन में रहे चाहे चुपचाप, गुपचुप चाहे प्रत्यक्ष उनके निकट। मन मोहन से जुड़ा रहे चाहे गृह कार्य करे या न करे। मन, प्राणों की एकता हो जाए उनसे (श्रीकृष्ण से) तो काम पूर्ण हो गया जीवन का चाहे यहाँ का कार्य अधूरा रहे। अब उसके लिए कोई कर्तव्य शेष नहीं रहा। सुखद सुन्दर बेला वही जब अलबेला, छैलछबीला ठुमक चाल से सघन लताओं से निकलता नजर आ जाए फिर चाहे अन्य नजर में आएँ या न आएँ। सब जगह वही-वही नजर आए तो आने न आने की बात भी खत्म हो गई पर यह सब हो कैसे? केवल और केवल कृपा से। कृपा कैसे हो? वह होती है मात्र चातकवत् प्रतीक्षा से और पूर्ण समर्पण से।

यह आशा लागी रहै अलि गुलाब के मूल।

अइहैं बहुरि बसन्त ऋतु इन डारिन पे फूल।।

* हमारा मार्ग विज्ञानानन्दघन प्रभो नहीं हैं। सगुण साकार श्याम सुन्दर हैं। भगवान तो सर्वत्र हैं और परिपूर्ण हैं। तुम जितने में सन्तोष कर लोगे उतनी ही अनुभूति कराकर तुम्हें संतुष्ट कर देंगे।

* जीवन में विरह का दु:ख केवल श्यामसुन्दर के लिए होना चाहिए जगत के किसी व्यक्ति व वस्तु के लिए विरह नहीं होना चाहिए।

* मन, प्राणों को श्रीकृष्ण में उलझा दो तभी जीवन की सार्थकता है। शान्ति का श्वास तभी निकले जब मञ्जुल मुख दृष्टि पथ पर आ जाए।

* हमें जो वस्तु कल मिलने वाली है वह आज मिल सकती है बस उनकी कृपा पर आश्रित रहकर उस ओर उन्मुख रहना चाहिए।

* निन्दा बहुत बड़ा शत्रु है। एकबार पूज्य बाबा से किसी व्यक्ति के गुण दोष के बारे में मैंने कुछ टिप्पणी कर दी तो बाबा ने चौबीस घंटे का उपवास किया। तब से मैने आजीवन के लिए यह नियम ले लिया कि किसी की निन्दा नहीं करूँगा।

जग चर्चा को जान महाअघासुर से मलिन।

इसके गरल बयान गन्धवाह तक से बचें।।

* सन्तों मे भूलकर भी दोष दर्शन नहीं करना चाहिए। यदि उनकी कोई बात समझ में नहीं आ रही हो तब यही सोचना चाहिए कि या तो वे हमारी परीक्षा ले रहे हैं अथवा यह उनकी कोई अटपटी लीला है।

* वे अवश्य ही किसी न किसी दिन कृपा करेंगे। दिव्योन्माद की

मधुरिम धारा में मन, बुद्धि अवगाहन करते रहें एक क्षण के लिए भी बाहर जगत में आना न हो। वही रस, वही स्पर्श, वही गंध, वही रूप की खुमारी चढ़ी रहे।

जहि लगन लगी घनश्याम की।

धरत कहूँ पग परत कितहु, सुरत न छाया घाम की।।

जब तक यह दशा नहीं हुई तब तक चैन कैसा? सुख विश्राम कैसा?

कब देखूँ मनभर मनमोहन, कब निरखूँ शुचि पद जलजात।

किसी भी सामयिक भावदशा के जागृत होने से संतोष कैसा? और. .... और .... बस यही बेचैनी दिन-रात सवार हो जाए।

* यदि आपका विश्वास किसी एक सन्त पर अडिग है तो आप अवश्य पार हो जायेंगे। ढुलमुल-ढुलमुल होने से कुछ नहीं बनेगा। अनन्य रूप से एक सन्त के बताए मार्ग पर चलते रहिए।

* मुख से हमेशा उनका नाम, मन से उनके कोमल मधुर रूप का ध्यान बस इसके अलावा सब बेकार हैं। जीवन निष्कपट भाव से सन्त भगवन्त के सामने रहे कारण-

निर्मल मन जन सो मोहि पावा, मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

ऐसा कहा ही गया है, फिर हममें चाहे कितने दोष हों वे क्षमा कर ही देंगे। सरल मन से कह दें कि मेरे से अमुक भूल हो गई है। यद्यपि तुम्हारे कहने से पूर्व ही वे जानते हैं फिर भी तुम्हारी निष्कपटता का परिचय ले

रहे हैं तो अवश्य ही दे देना चाहिए। कभी भी किसी से भय करने की आवश्यकता नहीं है। प्रियतम! प्राणधन! नित्य तुम्हारे साथ हैं। बस मस्त हो जाओ। तुम लोगों को मेरी इन बातों पर विश्वास करना ही पड़ेगा अन्यथा प्रमाण के लिए मेरे पास कुछ है ही नहीं।

★ भगवान श्रीकृष्ण की दो लीला प्रतिक्षण चलती रहती है। एक है मधुरातिमधुर तथा दूसरी है वीभत्स लीला। भयंकर लीला में तो हम सब हैं ही इसकी ओर क्या देखना। अपने को तो मधुर की स्मृति में मन प्राणों को शीतल करना है।

नवल बसन्त नवल श्रीवृन्दावन नवलहि फूले फूल।

नवलहि कान्ह नवल सव गोपी नवलहि बसन अमूल।।

★ वह साधु ही क्या जिसकी रसनेन्द्रिय व जननेन्द्रिय वश में नहीं हैं।

★ श्रीकृष्ण की अहैतुकी कृपा से सत्संग, सन्त, भगवन्त का संग मिल गया बस पर्याप्त है। अब विशेष उलझन में पड़ने की आवश्यकता नहीं। वे अपनी ओर से जो कुछ कृपा किरण बरसाते जाएँ उसी में निहाल होते रहो। अनन्य भाव से श्रीमुख निसृत सन्त वाणी को हृदयंगम कर मस्त होकर उन्हीं के सम्मुख नाँचते गाते रोते रहो। दुख से नहीं प्रेम से अश्रु बहाते हुए शीघ्र दर्शन की भीख माँगते रहो। बच्चों की पुकार बहुत ही शीघ्र सुनते हैं।

★ सर्वदा सत्य बोलने का व्रत ही ले लेना चाहिए। जो कठिनाईयाँ आयेंगी सब सह लेंगे। ऐसा साहस बटोरना चाहिए। तनिक सी भी वैचारिक अपवित्रता जीवन को दूषित कर देती है, एक भूल ही जीवन

भर पश्चाताप की आग में जलाती रहती है और सन्त कृपा से ही इसका मार्जन होता है और दुख दूर होता है।

★ प्रियतम, प्राणधन, श्यामघन, महामधुर रसराज-महाभाव स्वरूप मदनमोहन को हृदय में लाने के लिए हमें जितना भी प्रयत्न करना पड़े वह सब थोड़ा है। नाम, रूप, लीला, गुण चिन्तन में मन मग्न रहना चाहिए।

★ विनोद में कही हुई वाणी सन्त की मिथ्या नहीं होती। पूज्य महाराजजी जैसे सन्त प्राप्त होने पर हमें क्या हो जाना चाहिए? विचार करने की बात है। वे विनोद-विनोद में क्या दे जाते हैं इसकी कल्पना भी करना कठिन है। यदि हम सावधान नहीं रहे तो परम पुरुषार्थ जीवन लाभ से वंचित रह जाएँगे।

★ मन को प्रसन्न रखकर खूब स्नेहमय वातावरण में रहो और समय-समय पर पाठ, कीर्तन, नाम-जप आदि करते रहो बस यही खास है। तनिक-तनिक सी बात पर क्रोध जो हो जाता है उस पर विजय पाने का प्रयत्न करना, हाँ, करना ही चाहिए। जीवन अमूल्य है, इस पर काम, क्रोध, लोभ, मोह का अधिकार हो गया तो वास्तविक रूप में पराधीन जीवन बन गया। स्वतंत्र वही है जो इनके वश में नहीं है। ये सब भगवद् कृपा से सहज सम्भव है। मुझ पर कृपा है ऐसा विश्वास कर लेने भर से कृपा का अनुभव होना शुरू हो जायेगा और धीरे-धीरे मन, प्राण, बुद्धि उसी रंग में रंग जायेंगे। पर विश्वास ही प्रधान है-'विश्वासे मिले हरि, तर्के बहु दूर'।

★ हमारे सबके बीच में पूज्यश्री महाराजजी हैं। ये कब क्या करते हैं

ये नहीं देखना है। ये क्या कहते हैं इसी की ओर ध्यान पूर्वक देखना है तथा वही करना है। वही करते रहना है। श्रद्धा का स्वरूप ही ये है। कई बार अपनी बुद्धिमानी दुख दे जाती है उससे सावधान रहना चाहिए। भाव ..... भाव .... बस भाव ही अभिवर्द्धित होता रहे तो बुद्धि उसमें बह जायेगी। भाव ही घटता बढ़ता है वस्तु नहीं। बस भाव न घटे, बढ़ता ही रहे इस ओर दृष्टि रखनी है।

★ 'भजन भेद न्यारो परमानन्द जानत बिरलो कोई' बिरला ही जान पाता है कि भजन किसको कहते हैं। मेरी तुक्ष बुद्धि में तो 'आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा' बस यही भजन है। यदि वे कहें कि खाकर सो रहो तो वह भी भजन है। नहीं तो लाख-लाख जप करना भी भजन नहीं है।

★ श्रीवृन्दावन आनन्द का मूल है। यहाँ आकर संसार की विस्मृति होनी कोई विशेष बात नहीं। पर वहाँ रहकर भी यहाँ रहा जा सकता है। ऐसे रहने को ही वास्तविक रहना कहते हैं। 'चित्त ना इत उत जावे हो'।

★ सारा ज्ञान जहाँ बह जाता है। वहीं प्यार की विमल धारा है। उनकी इच्छा चाहें जिस रूप में रखे। मान दें, अपमान दें, प्यार दें, दुत्कार दें, जो चाहें सो करें। दोनों में मात्र कृपा की ही प्रतिक्षण अनुभूति करना अपना वास्तविक स्वरूप है। 'जब जैसे जो चाहे बर्तो अपनी वस्तु सर्वथा जान'। कभी भी अनुकूलता की माँग न हो एवं प्रतिकूलता का भान न हो। बस फिर कृपा का स्रोत कभी बन्द हो ही नहीं सकेगा।

★ अधिकांश समय ऐसा होता है कि कृपा तो हुई परन्तु सामने वाला सम्भाल न सका। ऐसा क्यों होता है ? वो होता है सन्त के स्वरूप, महत्व, महिमा को न जानने से। हाँ, जानना अत्यन्तकठिन है पर निरन्तर

अभिलाषा तो यही रखें कि इनके अद्‌भुत गुण-गणों का दिग्दर्शन मुझे कब होगा ? बस प्रार्थना करता ही रहे। वास्तव में हम जितना देख रहे हैं, सन्त महापुरुष उससे अनन्त-अनन्त गुने अधिक महिमा वाले हैं। उन्हें यदि कोई पहचान सकता है तो वह श्रद्धावान होकर ही, श्रद्धा पूरित लोचनों से ही उनके वास्तविक तत्व का रूप रहस्य का ज्ञान होना सम्भव है अन्यथा असम्भव ही है। देखिए पर दोष दर्शन, समालोचना वही कर सकता है जिसें दोष न हो और जब दोष नहीं रहेंगे तो दृष्टि विमल हो जायेगी तब किसी के दोष देखने का प्रश्न ही कहाँ रहता है। प्रसंग आने पर भी मन उसमें न जाए सावधान रहे वही तो साधक है। सन्तों की बात अलग है उनको हम कैसे समझ सकेंगे।

★ संसार गुण देखकर प्रेम करता है पर सन्त निर्गुण प्रेम करते हैं। क्योंकि जब गुण से प्रेम है उस व्यक्ति से नहीं पर परमार्थी न गुण से न गुणी से (व्यक्ति से) वह तो आत्मा से प्रेम करता है जो परमात्म स्वरूप ही है।

★ प्रेम एकत्व चाहता है। चाहता नहीं, उसका स्वरूप ही है, चाह तो समाप्त है वहाँ। कारण प्रेम स्वरूप वे स्वयं जो हैं। किसी से यह कहना कि मैं तुम्हें बहुत प्यार करता हूँ, प्यार की गरिमा को घटाना है। हृदय हृदय ही साक्षी रहता है, न कार्य न व्यवहार ही। गुरु-शिष्य के अगाध प्यार में गुरु जनार्दन ने एकनाथ को अपने में समा लिया 'एका जनार्दन एकै भए'।

★ मन में किसी के प्रति न आर्कषण ही होना चाहिए और न उपेक्षा ही। सब में, सब प्राणी पदार्थ में वे अपने परम इष्ट ही तो अभिव्यक्त हो रहे हैं फिर राग-द्वेष की छाया भी क्यों छू जाए अपने मन को। जीवन में

सबकुछ आचरण में लाने के लिए है चाहे एकदम न आ पाए पर प्रयत्न तो करते ही रहना है। कृपा दृष्टि की वृष्टि हुई कि काम बना। प्रतीक्षारत ही रहना अपना स्वरूप होना चाहिए।

★ बीमारी में या तो भगवद् चिन्तन में रहो या इस भाव में रहो कि मैं तप कर रहा हूँ।

★ प्रतिक्षण तृष्णा बढ़ रही है और आयु घट रही है। इसलिए सावधान हो जाओ।

★ मन में दुख होना चाहिए कि जीवन भगवदोन्मुखी क्यों नहीं हो रहा है। विषय दुखदाई क्यों नहीं प्रतीत हो रहे हैं। इसके लिए भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए कि आप ही कृपा करके हमसे भजन करवाइए।

★ कुविचार आए तो टाल जाओ। विषय सम्पर्क से दूर रहो। यथा सम्भव उनसे बचो। भईया विषयों से लड़ना सम्भव नहीं है। बस टाल जाओ संयम रखो।

★ एक मन एक बार में एक ही कार्य कर सकता है। दो जगह मन को फँसाने से कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। एक दिग्विजयी पण्डित श्रीहरिवंश महाप्रभु से शास्त्रार्थ करने आए। महाप्रभु जी उस समय खिचड़ी का भोग बना रहे थे। पण्डित जी उनसे तत्काल समाधान चाह रहे थे तो यह देखकर महाप्रभु जी ने पतीली नीचे उतार दी और आग बुझा दी फिर बोले अब बात करो। मन से एक ही कार्य उचित तरीके से हो सकता है। इसलिए जो भी करो वह पूर्ण एकाग्र होकर करो।

★ मानव जन्म मिला है अकारण कृपा से। उन्होंने अपने आप से मिलाने के लिए इसे प्रदान किया है।

★ पारस लोहे से स्पर्श होते ही लोहे को सोना बना देती है। किन्तु जंग एवं मैल से लिपटे लोहे में कितना भी पारस का स्पर्श हो वह सोने में परिवर्तित नहीं हो सकता। इसके लिए हमें जंग छुड़ानी होगी और एक बिन्दु मात्रभी साफ हो गया और पारस छू गया फिर लोहा तुरन्त सोने में बदल जायेगा। फिर पूरी सफाई की आवश्यकता नहीं होगी। इसी प्रकार सन्त कृपा करके मनुष्य को अपने जैसा बना लेते हैं। केवल हमें ही अपने मन को उनके योग्य बनाने थोड़ा सा अभ्यास करना है। यदि हमने थोड़ा भी प्रयास ईमानदारी से किया उनकी बातों को आदर दिया तो निश्चित रूप से वो हमें पूर्णतया अपने जैसा बना देंगे।

★ त्याग के लिए तैयारी थोड़े ही करनी है। जो छोड़ना था वह छोड़ दिया इसके लिए किसी से क्या पूछना।

★ मन का मारना बड़ा ही कठिन है। इसलिए मन को मारो मत उसे मोड़ दो। ऐसे ही विषयों में आविष्ट चित्त को भगवान के नाम में, महिमा में, रूपमाधुरी में लगा दो। एकबार वहाँ का स्वाद मिल जाने पर फिर वह दुबारा संसार के विषयों में नहीं लौटेगा।

★ साधक का मन ही मुख्य है। उसे ही स्वस्थ रखना आवश्यक है किन्तु हमारी दृष्टि मन की स्वस्थता पर नहीं रहती। इसलिए समय-समय पर षड्रिपु आकर घेर लेते हैं और मन उनके वश में हो जाता है। इसे ही स्वस्थ रखें तो इनका प्रभाव कदापि न पड़ने पाए।

★ राग-द्वेष, परचर्चा तक से बचता रहे। पूज्य महाराजजी के आश्रय में रहकर भले ही हम परवाह न करें किन्तु ये नितान्त सत्य है कि 'अपनी करनी पार उतरनी'। बताए पथ के अनुसार न चलने से ही दुर्दशा होती है।

★ सन्त के आश्रय का मतलब ही है उसके भीतर क्रमशः भक्त के गुणों का उदय होने लग जाए। प्रत्येक क्षण, प्रत्येक अपनी क्रिया पर पूर्ण दृष्टि रखना ये ही साधक का प्रथम लक्षण है। मन मुखी होकर न चले। क्या इतने दिनों में हम उनकी आज्ञा का पालन करने में सफल हो रहे हैं? जब नहीं तो हम किस बल पर कह सकेंगे कि हम श्री.... जी की आज्ञा पर जीवन बिताने को तैयार हैं। मतलब ये है कि सम्पूर्ण जीवन का कण-कण मात्र श्रीकृष्ण की सेवा में लग जाना चाहिए। दूसरा क्या करता है क्या नहीं करता इसे देखने के लिए आपको नियुक्त नहीं किया है।

★ आपको तनिक भी क्षोभ एवं उद्वेग नहीं होना चाहिए। अभी-अभी ही तैयार होना है, कल का कार्य है ही नहीं। शरीर, वाणी, मन नित्य निरन्तर उनके अर्पण रहें। वे इन यन्त्रों से चाहे जैसा काम लें अपना आग्रह नहीं रखना चाहिए। वे अपना सा ही परम पवित्र परम मधुर काम ही लेंगे। बस अपन तो देखते ही जाएँ कि मेरे जीवन धन, मेरे हृदय रमण कितने सुखी हो रहे हैं। इन क्षुद्र यन्त्रों से।

रुचि तुम्हारी मेरी रुचि हो, चाह तुम्हारी मेरी चाह।
हो चाहे प्रतिकूल सर्वथा, इसकी न प्यारे कुछ परवाह।।

★ पूज्य बाबा कहते हैं कि प्रतिकूलता भी दिखे और प्रेमी भी बना रहे यही कठिन है। प्रेमी को सर्वत्र प्यारे का मन्द हास ही दिखता है, अनुकूल ही दिखता है। मार में भी प्यार ही दिखता है।

★ यदि नाम लेते-लेते मन थकने लगे तो लीला सम्बन्धी पदों को मधुर स्वर में गाना चाहिए और उसमें वर्णित प्रसंगों में मन को लगाना चाहिए। इस प्रकार से स्मरण का अभ्यास बढ़ाना चाहिए।

★ जब साधक भावना करता है तो शुरू में जो भी आभास या स्फूर्ति होती है उसे कल्पना न मानें। भगवान की कल्पना भी साक्षात् होती है। बस किसी दिन ठाकुर उसे छू देंगे और वह भावना चिन्मय हो जायेगी।

★ प्रकृति से मन को उठाने का धीरे-धीरे अभ्यास करता रहे जब तक वहाँ श्रीकृष्ण की स्फूर्ति न होने लगे तब तक अभ्यास में लगा रहे। बस इतना होते ही फिर पतन का भय नहीं रह जाता।

★ श्रीकृष्ण चाहें तो रज को मस्तक पर लगा लें और चाहें तो मुकुट को धूल में डाल दें। पर वे ऐसा खेल उसी के साथ करते हैं जिसने अपना सारा अहंकार गला दिया होता है। उसकी अपनी पृथक कोई रुचि नहीं रह जाती और अपना कोई पृथक सुख नहीं होता। बस श्रीकृष्ण की प्रसन्नता ही उसकी प्रसन्नता होती है।

★ भगवद् सम्बन्धी विचार भी तभी आते हैं जब वे कृपा करके हमको भेजते हैं। इससे हमको यह समझना चाहिए कि वह हमको याद कर रहें हैं।

★ रसराज्य में सबकुछ रसरूप है। सबमें एकात्मता है सब एक दूसरे से जुड़े हैं। शुक, सारी, वृक्ष, लता, यमुना, पुष्प, सखियाँ सब रसरूप ही हैं। सब प्रियाप्रियतम के मनोगत भावों को जानते हैं और उनके सुख के लिए इनकी चेष्टाएँ होती हैं।

★ चिन्मय देह की इस स्थूल देह से कितनी एकात्मता है कि वहाँ अनुभूति हो रही है और यहाँ इस शरीर में रोमाञ्च और कम्प हो रहा है।

★ निज स्वरूप से ही उनका अनुभव होता है। जो भी व्यक्ति उनकी अनुभूति प्राप्त करते हैं, वह निज स्वरूप से यानि सखी-सहेली परिकर के बीच होकर ही प्राप्त करते हैं। जब सभी समान परिकर ही हैं तो फिर

राग-द्वैष कैसा।

★ भजन करते-करते अचानक यदि मन में कोई लीला या रूप की स्फूर्ति होती है अथवा कुञ्जों आदि के दृश्य आते हैं तो हमें यह समझना चाहिए कि आखिर यह वस्तु आई ही क्यों? अरे! कृपा करके उन्होंने भेजी है इसलिए आई है। उसको कल्पना नहीं मानना चाहिए। धीरे-धीरे वह और स्पष्ट होकर साक्षात् अनुभव में आयेगी।

★ किसी ने पूछा कि निभृत निकुञ्ज किस प्रकार का है? क्या वहाँ सखियाँ श्रीराधाकृष्ण के श्रीअंग में विलीन हो जाती है? तब श्रीठाकुरजी ने कहा कि ऐसा नहीं है जब वे दोनों ही केवल बचते हैं और रसरूप से एक दूसरे की दृष्टि में डूबे रहते हैं तब वहाँ अन्य कुछ दिखता ही नहीं है। बस यही निभृत निकुञ्ज प्रकट हो जाता है। जब उस रस समुद्र की लीला तरंग से थोड़ा बाहर आते हैं और प्रकृति की ओर देखते हैं तब यही निकुञ्ज स्थल कहलाता है और थोड़ा बाहर आए तो आस-पास सखियों व सहचरियों का झुण्ड दिखाई देता है। बस यही कुञ्ज हो गया। थोड़ा और बाहर आए तो सखा आदि दिखे ये ही गोष्ठ हो गया। चारों घाट एक ही महा समुद्र के हैं। कोई किसी भी घाट से उस रस समुद्र में उतरे तो सही।

★ हमारा जन्म हुआ ही नहीं तो फिर मृत्यु कहाँ! हम तो सतत् उनके निकट स्थित ही हैं। बस यही हमारा स्वरूप है। ऐसी कोई स्थली ही नहीं जहाँ ये प्रकट न हों। ऐसे किसी शब्द की रचना नहीं हुई जो उनसे सम्बन्धित न हो। उन्हीं के रूप से आगमन पुनः उन्हीं की ओर गमन। हम थोड़ा रुक गए, मुग्ध हो गए बस ये ही बीच का कल्पना जगत है। जो कुछ भी नहीं है। मानो नित्य अखण्ड प्रेम साम्राज्य का आधा क्षण।

★ नाली का जल गंगा जल में मिलकर गंगाजल के रूप में शिवजी के शीश पर चढ़ता है इसीप्रकार साधारण विषयी जीव, संतों का संग पाकर ईश्वर के प्रेम का भाजन बन जाता है और सन्त ही हो जाता है। ?

मोरी को जल मिल गंग में चढ़त है शिव के सीस।

अवगुण गुण बन जात है पाय संग के ईश।।

★ मन की गति अति सूक्ष्म होती है। राह चलते किसी से राग कर बैठता है तो किसी से द्वैष। नवीन साधक को इसका पता नहीं चलता इसलिए मन की गतिविधियों पर बड़ी सूक्ष्मता से ध्यान रखने की आवश्यकता है।

★ भजन में बैठने पर खूब संकल्प-विकल्प उठते हैं एवं आवश्यक कार्य याद आते हैं। भूत-भविष्य का चिन्तन होने लगता है। नई-नई योजनाएँ दिमाग में आती हैं। आलस्य, प्रमाद, कामादिक रिपु अधिक परेशान करते हैं। यह सब भाव भजन के समय ही अधिक बढ़ते हैं क्यों कि चित्त के अन्दर जो अनन्त जन्मों के कुसंस्कार भरे होते हैं वे सात्त्विकता बढ़ने से एकदम निकल-निकल कर बाहर भागते हैं। नया साधक एकदम घबरा जाता है किन्तु ऐसा होने पर घबराना नहीं चाहिए। भजन को छोड़ना नहीं चाहिए। धीरे-धीरे यह बाधा निकल जायेगी।

★ जप करते समय कोई संकल्प नहीं करना चाहिए। इससे भजन में प्रगति मन्द पड़ जाती है। 'अन्धा बटे जेवरी पाछे पड्डा खाए' वाली कहावत चरितार्थ हो जाती है।

एक अंधा व्यक्ति दिन भर रस्सी बटता रहा। शाम को जब नापने चला कि कितनी लम्बी रस्सी हुई तो उसके हाथ में छोटा सा टुकड़ा ही बचा

था। सारी रस्सी संकल्परूपी भैंस के पड्डे ने चबा ली। साधक के संकल्प-विकल्प भी उस पड्डे के समान हैं जो भजन के फल को खाते जाते हैं।

★ साधक को एक निश्चित समय पर एक आसन से बैठकर संख्यापूर्वक भजन करना चाहिए। इस प्रकार किया गया भजन शीघ्र सिद्ध होता है। नियम आग्रह न रहने पर दीर्घकाल तक किया गया भजन भी सिद्ध नहीं हो पाता इसलिए भजन में नियमितता अति आवश्यक है।

★ मन को भगवान के नाम, रूप, लीला, गुण, महिमा में उलझाए रखें। इसे एक क्षण के लिए भी खाली ना छोड़े अन्यथा अनन्त जन्मों के अभ्यास के कारण वह नीचे की ओर चलता चला जायेगा और संसार के चिन्तन में अटक जायेगा। मन का और पानी का एक जैसा स्वभाव है। नीचे की ओर ही बहता है। मन को भ्रमर की भांति भगवान के श्रीअंग में लटकती आजानुलम्बिनी वनमाला में गोलाकार घुमाते रहें।

★ नाम जप करते रहो। मन न लगे तो भी करते जाओ। मन को ही तो लगाना है। अपने आप तो लगेगा नहीं। मन ही लग जाये तो काम ही न बन जाए।

★ भजन में रस नहीं आता तो कोई बात नहीं। पूज्य श्रीराधा बाबा कहते थे कि भईया सूखा नाम जप करो। रस की चिंता मत करो वह तो आयेगा ही। नाम जप तो साधना की नींव है, इसी पर भजन की भूमि तैयार होती है। रस के चक्कर में मत पड़ो, राग-रागिनी व संगीत का सुख यह सब तो फुलझरियाँ हैं।

★ जब तक नियम पूरा न हो जाय सोओ नहीं। रात्रि में निद्रा का समय काट कर भजन का नियम पूरा करो। नींद आए तो पानी से मुख

धोलो। घूम-घूम कर नाम लो।

★ यह निराशा का पथ नहीं है 'आशाबन्ध समुत्कण्ठा नामगाने सदा रुचि'। भजन में उत्साह रहना चाहिए।

★ समय बड़ा कीमती है। ये जो एक क्षण बीत गया अब दुबारा लौट कर आने वाला नहीं। 'एक एक घरी जात लाख लाख हीरा जैसी।' भजन अभी ही करना है। बुढ़ापे के लिए नहीं छोड़ना है। जो परिस्थिति वर्तमान में प्राप्त है उसी में अनुकूलता देखते हुए समय का सदुपयोग कर लेना चाहिए। युवावस्था में ही भजन-साधन हो सकता है, वृद्धावस्था में नहीं। जीवन भर जो किया होता है वही बात बुढ़ापे में स्मरण में आती हैं और भजन में प्रवृत नहीं होने देती। वह चाहकर भी भजन नहीं कर पाता है।

★ संसार अपूर्ण अधूरा है। यहाँ का कोई कार्य पूरा नहीं हुआ। सारे कार्य अधूरे ही छोड़कर आदमी चला जाता है। संसार के सुधार, लोक कल्याण आदि के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। अरे थोड़ा सा समय है इसी में हमें अपना काम बना लेना है। भजन कर लेना है। इसी में चतुराई है।

★ जलाशय में ढकी हुई काई को हटाकर चूल्लू भर जल पी लेना है। प्यास बुझाने से मतलब है न कि जलाशय की सफाई करने में, काई समेटने में लगना है। संसार के काम तो बनते बिगड़ते रहेंगे। हमें तो जिस किसी भी परिस्थिति में भजन कर लेना है।

★ संसार एक समुद्र की तरह है जिसमें लहरें उठती ही रहेंगी। ये कभी शांत नहीं होगी। लहरें जब शान्त होंगी तब हम स्नान करने की सोचेंगे तो कभी स्नान नहीं कर पाएंगे। जब अनुकूलता आयेगी तब

भजन करेंगे ऐसी सोच वाला व्यक्ति भजन नहीं कर पायेगा क्योंकि अनुकूलता कभी आयेगी ही नहीं।

★ दैन्य साधक का आभूषण है। भजन करते समय अभिमान बढ़ने की बहुत संभावना रहती है जिसे दैन्य रोकता है। भजन का वजन नहीं बढ़ना चाहिए। भगवान कहते हैं कि अहंकार मेरा भोजन है।

★ सन्तों का स्वभाव होता है कि उनकी कृपा उधर ही ढुरकती है जिधर दैन्य होता है। दीनता का धरातल ऐसा है जहाँ से और अधिक गिरने का भय ही नहीं परन्तु दैन्य सच्चा होना चाहिए नहीं तो *दीनता का भी सूक्ष्म अभिमान हो जाता है कि मैं बड़ा विनयी हूँ।* इससे साधना बाधित हो जाती है। दैन्य के बिना ऊँचे-से-ऊँचा साधन भी सिद्ध नहीं होता। नए साधक इसका महत्व न समझकर इसे गौण कर देते हैं। जबकि यह साधना में बहुत बड़ा सुरक्षा कवच है।

★ सन्तों ने एकान्त को आधी समाधि कहा है परन्तु एकान्त का लाभ वही ले पाएगा जो लक्षित है। नहीं तो वहाँ भी संसार का ही चिन्तन होगा।

★ इस जन्म के पूर्व हमारे अनेक जन्म हो चुके हैं जिनकी हमें याद नहीं है। इतने सारे जन्म हमने व्यर्थ ही गवाँ दिए और यह जन्म भी ऐसे ही बीत जायेगा इसलिए अब निश्चय करो कि यह जन्म हमनें इनको (पूज्य श्रीचरणों को) दे दिया। एक प्रकार का जुंआ ही सही। ऐसा दृढ़ विश्वास रखें कि ये सन्त (पूज्य श्रीचरण) केवल मेरे ही लिए यहाँ आए हैं। किसी और का भी इनके द्वारा कल्याण हो रहा है तो होने दो किन्तु इनका आगमन तो एक मात्र मेरे लिए ही हुआ है।

★ हम अपनी स्थूल बुद्धि से संतो का मूल्याँकन करने लगते हैं

इसलिए हमें संतो में दोष दिखाई देते हैं। हमारी बुद्धि रजोगुण, तमोगुण से आच्छादित है इसलिए हमें संतो में दोष दिखाई देता है। हमारी श्रद्धा यदि पवित्र है तो अपात्र के भीतर से भी भगवान की कृपा हो जाएगी।

★ सन्त निरन्तर हमारे अंत:करण की सफाई ही करते हैं और हम हैं कि धूल में लोटकर आ जाते हैं। उन्हें बार-बार हमारी सफाई करनी पड़ती है। हम उनके कार्य में सहयोग नहीं कर सकते तो कम से कम उल्टी नाव तो न खेवें।

जिसने उनकी इच्छा में अपनी इच्छा मिला दी वह बहुत शीघ्र ही उनकी समस्त सम्पति का अधिकारी हो जाता है। उसके हृदय में उनका अधिकार हो जाता है।

★ भगवत्कृपा तो सब पर बरस ही रही है किन्तु हम ही अपना दरवाजा बन्द करके रखते है जिससे हम कृपा का अनुभव नहीं कर पाते। कृपा हमारा दरवाजा खटखटाकर वापस लौट जाती है।

कृपा-कृपा सब कोई कहे, कृपा पात्र नहिं कोय।

कृपा पात्र सोई जानिए, जो आज्ञाकारी होय।।

★ साधक को कुपथ्य से बचना चाहिए तभी भजन रूपी औषधि अपना प्रभाव दिखाएगी। अपराधरहित भजन होना चाहिए। भजन भले ही कम हो परन्तु कुपथ्य न हो। अर्थात मनमानापन न हो।

★ जब दुकानदार अपना व्यवसाय बन्द करने की सोचता है तो सभी का लेन-देन बराबर करता है। दु:ख भोग आने पर भी हमें ऐसा ही सोचना चाहिए कि हमारा प्राबब्ध भुक्तशेष हो रहा है। बोझ हल्का हो रहा है।

★ श्रीकृष्ण के विरह में जब प्राण कंठ पर आने लगते हैं उनके बिना एक पल भी रहा नहीं जाए तब कहीं साक्षात्कार की बात उठती है। अभी तो हमारे रोम-रोम में संसार बसा हुआ है। स्थूलतम में रहकर सूक्ष्मतम की बात कैसे समझ में आएगी ? कक्षा एक के विद्यार्थी को एम. ए. की पढ़ाई कैसे समझ में आयेगी। इसलिए प्रारंभ में नाम स्मरण की आवश्यकता है। श्रीकृष्ण हमें स्वयं आगे की बात समझा देंगे।

★ एकदिन सभी को जाना है जहाँ जाना है वहाँ की तैयारी यहीं रहकर कर लेनी है। "सोता है बेहोश पड़ा क्या चलने की तैयारी है।"

★ कौन कैसा है ? क्या करता है ? आदि बातों के लिए मन में स्थान नहीं होना चाहिए। अपनी बात में ही रहना चाहिए। सारा भार उन्हीं पर सौंपकर उन्हीं के मनन चिन्तन में लगे रहना चाहिए।

★ जो कल नष्ट होने वाला है वह आज ही नष्ट हो जाय, इसमें दु:ख की क्या बात है।

★ कुछ लोग कहते हैं कि मैं सदैव आनन्द में रहता हूँ किन्तु आनन्द के मूल श्रीकृष्ण को भूल आनन्द का क्या अर्थ है।

★ संसार में रहते हुए यह न भूलना चाहिए कि हम कौन हैं और हमें कहाँ जाना है ? 'को हम कहाँ को जात'

★ एक सन्त अपनी सिद्धावस्था प्राप्त हो जाने पर भी माला लेकर ही जप किया करते थे। नित्य सात लाख नाम जपते थे फिर भी कहते थे कि 'मन को काषाय नाय गयौ'। बड़ी दिनता पूर्वक कहते कि माला बन्द करता हूँ तो ऐसा लगता है मानो श्रीकृष्ण छूट गए।

★ विषयों में सुख नहीं है। मन जब विषयों के सम्पर्क में आता है तो

कुछ देर के लिए वह उस विषय सुख में एकाग्र हो जाता है और मन की क्षणिक स्थिरता के कारण चित्त के ऊपर आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ने लगता है। आत्मा आनन्द स्वरूप है इसीलिए उसे एकाग्रावस्था में विषयों से सुख का भ्रम हो जाता है जबकि यह वास्तविक सुख नहीं है। इसके अलावा भी इन्द्रियों से जो सुख की अनुभूति होती है वह भी अपनी ही ओज शक्ति के कारण होती है बाहर से कुछ भी आता नहीं केवल ऐसा भ्रम होता है कि मानो वाह्य वस्तु से सुख प्राप्त हुआ हाँ केवल उद्दीपन ही कराकर भ्रमित करता है।

★ जो वस्तु साधन व प्रयास से नहीं मिलती। वह सन्त कृपा से सहज ही प्राप्त हो जाती है। मानो हेलीकॉप्टर से किसी को शिखर पर पहुँचा दिया जाए। मार्ग के श्रम का कष्ट उसे नहीं उठाना पड़ता।

★ साधक पहले भगवद् सम्बन्धी कल्पना करता है। नाम का आश्रय लेकर रूप लीला का चिंतन करता है। नाम के स्वाभाविक प्रभाव से (वस्तु गुण से) उसके चित्त पर बनी हुई विषयों की आकृतियाँ धूमिल होने लगती हैं। ऐसे में मन को श्रीकृष्ण महिमा व रूप माधुरी रूपी महौषधि प्रदान करते जाना चाहिए।

★ नाम का आश्रय जिसने लिया उसके गुण-अवगुण को न देखकर श्रीकृष्ण तत्क्षण उसके हृदय में आ विराजते हैं भले ही उसे अभी इसका अनुभव नहीं हो रहा है किन्तु वह तो स्वर्णपात्र बन ही चुका अब जैसे-जैसे जगचर्चा से दूर रहकर श्रीकृष्ण नाम का स्मरण करेगा उसे और अधिक से अधिक स्पष्ट स्फूर्ति प्राप्त होती जाती है।

★ अपने निज मूल स्वरूप को पहले ध्यान में देखा वही तो प्रत्यक्ष हुआ। माने पहले से ही ध्यान रूप मे वह मेरे पास था।

★ **"एके दिना होय नाहि साधनेर सिद्धि"**

धैर्य और विश्वासपूर्वक हमें अपने साधन में लगे रहना चाहिए। यह नहीं कि अभी बीज बोया और थोड़ी-थोड़ी देर में उसे उखाड़-उखाड़ कर देखते रहें कि अंकुर फूटा कि नहीं। ऐसे में तो कभी अंकुर फूटेगा ही नहीं।

"भूमि परै पै जामिहै उल्टौ सीधौ बीज"

★ भजन में तीन बातें आवश्यक हैं दीर्घकाल नैरन्तर्य और सत्कार सेवित।

अर्थात जो भजन साधन किया जा रहा है वह लम्बे समय तक डटकर बिना नागा चलता रहे। ये नहीं कि आज किया कल नहीं किया, परसों खूब सारा किया, फिर छोड़ दिया। निरन्तरता होनी चाहिए। जैसे रोज का भोजन रोज ही किया जाता है ऐसे ही रोज का साधन रोज करना चाहिए। उसके प्रति सत्कार की भावना होनी चाहिए निरादरतापूर्वक केवल बेगार टालना नहीं चाहिए। चाहे छोटा सा ही साधन हो अत्यन्त सम्मान से किया जाए। इस प्रकार करने से वह भजन शीघ्र फलीभूत होता है। चित्त द्रवीभूत होने लगता है और भगवान को प्रवेश करने का अवसर मिल जाता है।

*****

२२

पदावलियाँ

१.

राग-भैरवी

(श्री) गुरु हमारे रसिक शिरोमणि, बृज लीला नित गावें हो।
अति एकान्त कान्त में विलसत, लीला रस अवगाहें हो।। १
प्रथमहिं बसि नंदग्राम गुहा मधि, निशि दिन नाम रटावें हो।
लक्ष तीन मधुरे स्वर गावत, अन्तर हरिहि निहारें हो।। २
कर में माला मन नंदलाला, रसना रसहि बहावें हो।
कर करुआ अरु काँधे कमरिया, कृष तन विरह बितावें हो।। ३
मास चार पीलू के नीचे, अन्तर दाह बुझावें हो।
विरह अनल व्यापत जब सब तन, हा! कृष्णहि कृष्ण उचारें हो।। ४
फाटत हृदय व्यथा के मारे, वृक्षन सों लपटावें हो।
याहि भाँति षड मास जब बीते, कपटी कृष्ण पधारे हो।। ५
ग्वाल वेष धरि लकुटी काँधे, अर्धनिशा मधि आवें हो।
कहत कवन दुख मोसों बोलौ, हौं अबही उठि धावों हो।। ६
सुनत वचन मुख शब्द न आवत, शंका हिय मह भारी हो।
कहा ये कान्ह! कान सों लागे, कैधौं बृज तिय बालक हो।। ७
पुनि भयो महा दुसह दुख देखत, पल पल प्राण जिवावें हो।
हा! गोपाल गोपिका बल्लभ, राधा रमण कहावें हो।। ८
अब नहिं प्राण रहे मो तन में, छिन-२ आस विसारें हो।
आवहु वेग भाँवते जिय के, मो सुधि क्यों विसरावें हो।। ९

अष्ट पुलक वैचि य उदित भई, मूर्च्छित व्है पड़ि जावैं हो।
छद्म वेश धरि पुनि-२ आवत, दशा देखि हर्षावैं हो।। १०
तदपि न धीरज होत महादुख, बीचहि कौन बुलावै हो।
मानहु मधु मधि श्रवण घोल दियो, पुनि इत उत उठि धावैं हो।। ११
लिपटि कदम्बन सों पुनि पूछत, मो जीवन प्रान कहाँ हैं हो।
उतरु न देत विरह दुख व्यापत, अधरन प्रान समाने हो।। १२
इतने ही प्राची मनो उदयो, शत-शत चन्द्र प्रकाशे हो।
उद्भासित वन सघन सकल दिशि, प्रगटे मन्मथहारी हो।। १३
उभय कदम्ब मधि श्याम तमालहि, लिपटी वल्लरि न्यारी हो।
ललित त्रिभंग भंगिमा लीन्हे, स्मित शोभा अति भारी हो।। १४
कटितट पीतबसन वंशीकर, शिर शिखिपिच्छ बिहारी हो।
कोमल कम्बुकण्ठ बिच राजत, बनमाला बनवारी हो।। १५
लतिका ललित वामकर लीन्हे, जानु युगल जनु धारी हो।
किंकिणी नूपुर रव इत नाहीं, नटखट परम खिलाड़ी हो।। १६
तजि श्रृंगार लीला इत धाए, कातर भक्त विहारी हो।
दृष्टि अचंचल चंचल लखि तन, जड़िमा को नहिं त्यागे हो।। १७
काष्ठ पुतलि ज्यों भयो सकल अंग, अष्ट भाव अनुरागे हो।
विकसित भए पुनि सरसिज लोचन, मोचन ताप निवारैं हो।। १८
धाय आलिंगन कियो छली ने, 'अलि' ही देख सिरानें हो।
शीतल नील किरण आवृत व्है, अंकन्हि माँहि समाने हो।। १९
बहुत काल याही विधि बीत्यौ, मनमह तृपति न आनें हो।

अमिय सरस मधु मादक वाणी, बोले अति चतुराई हो।। २०
पुनि आऊँगो जान देहु मोहि, 'अलि' तुअ जीय जियारी हो।
करत परस्पर गाढ़ आलिंगन, तन-मन सुधि सब बिसरी हो।। २१
अहो अलि तुमहि दुसह दुख दीन्हो, छमहु ये चूक हमारी हो।
निशिदिन रहौं चरण तुअ लाग्यो, प्रिया प्राण अनुसारी हो।। २२
अस कहि त्वरित चले चिन्तामणि, नयनन नीर बहाई हो।
मुरि-मुरि, मुसकि-मुसकि तन चितवत, अन्तर व्यथा महाई हो।। २३
दृष्टि अगोचर भए लाल 'अलि', धरणि परी बौराई हो।
अष्ट विकार छिन छिन मह उदये, आनन्दाश्रु बहाई हो।। २४
अति उन्मत्त द्रुमन तर विचरत, रूपहि दृष्टि समाई हो।
पुनि बरसाने गवन कियौ चित, चंचरीक अकुलाई हो।। २५
इक-इक लीला राति दिवस की, पल-पल दृगहिं लखाई हो।
प्रीतम प्रीति सुधा रस पागी, बुद्धि न इत उत जाई हो।। २६
मानहुँ मान सरोवर बूड़्यौ, अति अद्भुत गहराई हो।
'रूप रसिक' इन चरनन चाहत, कृपा दृष्टि कण पाई हो।। २७

*****

२.

राग-आसावरि

आज को दिन धन्य-धन्य री माई।
प्रकटे 'श्री अलि' अवनि अलंकृत, भक्तन के सुखदाई।।
वट श्रृंगार कुञ्ज तहाँ विहरत, परम मनोहर ताईं।
कुसुम श्रृंगार किए निज कर सों, बनवारी मन भाई।।
सोइ सरस सरोवर इहिठाँ, विहरत संत मुकुटमणि राई।
हौं (अति) मति मंद सुयश का बरनौं, चरन शरन अरुझाई।।

*****

३.

राग-आसावरि

भू पर प्रगटी 'अलि' किशोरी।
भुवन भुवन अति आनन्द बाढ़्यो, महामोद भरि गोरी।।
श्यामा श्याम आलिंगन दीन्हे, भई मुदित रस बोरी।
'रूप रसिक' रसभीनी बानी (बतियाँ), बोलि कह्यो 'अलि' मोरी।।
(अहा! श्याम कह्यो अलि मोरी)

*****

४.

राग-आसावरि

यह रस नित प्रति रहो इन नैन।
श्याम सलोनी माधुरी मूरति, प्रियतम को सुख दैन।।
सजनी 'अली' बिनु लीला नाहीं, मधुरे बोले बैन।
यह उत्सव सुख देत लेत रहो, मन प्राणन सुख चैन।।

*****

५.

राग-सारंग

मंगल आज मोद मन भर।
सुनहु महरि ये ढोटा तुम्हरो, सुन्दरता को घर।।
अनियारे कजरारे नैना, इत-उत ताकत है डर-डर।
ठगी रहत ब्रज युवती तिहि छिन, नयन चलाय रह कर।।
औघर घाट चलत है ये, तिरछोहीं जब मसकर।
(धूर उड़ावत मुठिका भर भर)
एते पर हू सुनहु नवेली, जिय मम अटकत कारो मान्हर।।

दोहा

अलि अम्बुज बदनी सरस उर धरि श्याम तमाल।
विलसहु नित प्रति कुँज में श्याम सलोनी बाल।।१

सरस रसीली बोलनी सुखदायनी रसाल।
विहरहु गहवर वन निकट उर भरि अंक तमाल।।२
श्याम सलोनी बाल अलि रीझहु मोपर नेंकु।
निज सेवा अनपायनी देहु सदा सुख देन।।३
'अलि' अलिगन संग विलसहीं मद भरे अरूण सुनैन।
श्याम 'रूप' रस पूरही जित तित देखत सैन।।४

*****

६.

राग-सारंग

महद्भुत मंगल आजु भयो,
कमलम्बा के हृदय कमल को, शुचि पराग प्रगट्यौ,
अति लम्पट रसमत्त मधुप रस चाखत नित्त नयो।।
निज सहचरि सनमानि बहुत विधि, श्यामहि आनि दयो।
'रूप रसिक' इनहीं तन चितवत चाहत कृपा बह्यो।।

*****

७.

राग-आसावरि

भवन यह अद्भुत आज बन्यो।
सुन्दर तोरन ध्वजा पताका, कदली खम्भ तन्यो।।

गावत मंगल गान बहुत विधि, रूप अनूप बन्यो।
कमलम्बा के हृदय कमल को, प्रगट पराग सन्यो।।
देखत मुदित होय सब नारी, विहसि स्याम बरन्यो।
'रूप' महा गुण महा महाई चाहत चित चरन्यो।।

*****

८.

राग-बिलावल

महर घर अद्भुत आज बधाई हो।
गृह गृह तें सब चली मुदित मन, देन बधाई धाई हो।।१।।
अति उन्मत्त नाचत अरु गावत, भवन भीर भई भारी हो।
प्रमुदित भये सकल बृजवासी, सुख की राशि आई हो।।२।।
भानु भूप को भाग्य सराहत, ब्रज तिय कीरति रानी हो।
देखहु बाल लाल सी दीखत, माता की अनुहारी हो।।३।।
हर-हर हँसत सकल ब्रज वनिता, भूप तिहारी प्यारी हो।
मागध सूत बन्दीजन आये, गये तहाँ नृप रानी हो।।४।।
मुक्त हस्त सबहिन को देवें, दीन हृदय में मान्यो हो।
देऊँ कहा मै देत सुयश मोहि, (ये) वैभव सकल तिहारो हो।।५।।
ऋणी रहूँ मैं कमल विप्र पद, सुख सम्पद यही हमारो हो।
सुर नर मुनी नाग अरु किन्नर, हरषि-हरषि गुण गावें हो।।६।।
सुयश सूर्य वंश को राख्यो, भाग्य सराहि न आवे हो।

मन मह मुदित होत ब्रज रानी, आनन्द उर न समावै हो।।७।।
पुनि पुनि लै उछंग मुख जोवत, श्याम बरन तन आई हो।
लै लै मुख चूमत सब ब्रज तिय, साँवर को सुखदाई हो।।८।।
अति संभ्रम तब भयो महल में, आवत जात न जानी हो।
एकटक रहत निमेष न लागत, मोहन मोहिनी जानी हो।।९।।
बरस गाँठ याही विधि मनबत, यद्यपि भई सयानी हो।
नव किशोर साँवर तन चितवत, चित चंचल चतुरानी हो।।१०।।
विमल सनेह देखि दोउन के, उमगी राधा प्यारी हो।
प्रीति निरंतर बढ़ै पिया की, (मो) अनुजा अति ही वारी हो।।११।।
(यों) मन की जान रसिक मन मोहन, बिहँसे छैल बिहारी हो।
लज्जित होत लाल लखि ललना, मो रुचि सदा सँवारी हो।।१२।।
दक्षिन वाम दोनो दिशि लै कैं, चले कुँज की महियाँ हो।
'रूप रसिक' मन आस रहत नित, इन पद रज कण छैंया हो।।१३।।

*****

९.

राग-काफी

भवन भानु भूप के सोहत, अद्भुत मनिगन जाला।
चित्रित चतुर चितेरिन चहुँदिशि, शुचि मोतिन की माला।।
हीरा पन्ना तोरन रोपे, झालर गज मणि माला।
ध्वजा पताका गोरोचन की, कंचन कलश विशाला।।

चित्र विचित्र चौक सब पूरे, रंग बिरंगे लाला।
मानहु सब मिलि देन बधाई, धाए गोकुल ग्वाला।।
अद्भुत रूप देखि ये ठिठके, अपलक नयन विशाला।
कहुँ गोचारन आवनि बन ते, कहूँ सखन संग खेला।।
कहुँ पनघट कहुँ दान मान की, लीला रचि रस रेला।
रत्न खचित निरखत मणि मंडप, रीझे रसिक रसीला।।
इत श्यामा अभिरामा रीझी, लखि अंकित अलिगन लीला।
'रूप रसिक' प्रमुदित निशि वासर, भाई हिय रंग रंगीला।।

*****

१०.

राग-भैरवी

छबीली मन्द मधुर मुसकाय।
रस भरे लोचन दुख मोचन ये उर संताप मिटाय।
लालच ललित लोल लोचन को सोचत जिय सरसाय।
'रूप रसिक' रस पूरित अखियाँ अँखियन मिल सरमाय।

*****

११.

राग-पूर्वी

मेरे मन के मीत तुम्हें इक बात सुनाऊं।

सुनेंगे कहा प्रलाप-विलाप अलाप सुनाऊँ।।
क्यों झकझोरत अंग प्रीति की रीति निराली।
प्रीतिलता नहीं बनी सुनो एहो बनवारी।।

*****

१२.

"जयगान"

नव निकुञ्ज रस पुञ्ज की जै जै।
परम रम्य वृन्दावन जै जै।।
सुरभित सौरभ मलयानिल जै जै।
मुग्ध बधू ब्रज ललना जै जै।।
रासेश्वरी रसराज की जै जै।
पद्म गंध मुख पद्म की जै जै।।
श्याम सुभग पटपीत की जै जै।
अरुणिम नील दुकूल की जै जै।।
समलंकृत पग पायल जै जै।
रुनझुन नूपुर झलझल जै जै।
रुणित क्वणित कटि किंकणी जै जै।
सूक्ष्म काछनी फहरावन जै जै।।
चपल चरण चिन्हित भुवि जै जै।
कर स्पर्शित लता गुल्म की जै जै।

अलि झंकृत पथ सुमन की जै जै।

'रूप रसिक' रस दृष्टि जै जै।।

*****

१३.

जयगान

परम दिव्य आनन्द की जै जै। मो मन मोहन सोहन जै जै।।
प्रतिपल रूप चमत्कृत जै जै। नित्य अह्लादिनी अल्हादकी जै जै।।
नव नव केलि विलास की जै जै। नित नव दूलह दुलहिनि जै जै।।
तत् सुख सुखिया सहचरि जै जै। लाड़ भरी अनुरागिनी जै जै।।
लाड़ लड़ीले लालन जै जै। मंद मंद पग पटकन जै जै।।
मन्थर गति गवनी की जै जै। हिय पिय धारि बिहारिनि जै जै।।
बंकिम लोचन प्रियतम जै जै। दाड़िम दसन हसन मृदु जै जै।।
प्रतिबिम्ब बिम्बधर मोती जै जै। कुँचित कच उरझन सुरझन जै।।
वेंणी पीठ दीठ पिय जै जै। भ्रुव विलास परिहास की जै जै।।
नित नव कौतुक कानन जै जै। महामत्त शुक कुल कल जै जै।।
शारी न्यारी प्यारी जै जै। खग मृग द्रुम वन वेली जै जै।।
सर्वसार श्रृंगार की जै जै। मोदन मादन भाव की जै जै।।
कृपा निमज्जित किंकरी जै जै। सर्व 'रसिक' पद रेणु जै जै।।

*****

१४.

राग-अहीर भैरव

मीत सुनो इक बात हमारी।
कबहुँक कमल कंञ्ज से लोचन, निजकर कज्जल रेख संवारी।।
अरुण अधर पल्लव मधि-बीरी रुचि कर हौं जु सँवारी।
उभय उरोज मध्य इक रेखा निज कर सोउ संवारी।।
मृगमद लिप्त किए पुनि सब अंग आभा दीसत भारी।
स्याम कमरिया शोभित ऊपर मनु कारी बदरारी।।
बंक विलोचन भौंह काम धनु तीर कटाक्षन मारी।
'रूप रसिक' रिझवार बार ही विवश होत बलिहारी।।

*****

१५.

राग - देस

मीत प्रीत की सुनो एक बात।
देखन चहौं तव रूप सुधा निधि, बिनु देखे अकुलात।।
तृषित रहत लोचन अलि मेरे, मुख मकरन्द सुहात।
ज्यों ज्यों बरजि बरजि हौं राखत, त्यों त्यों अति अतुरात।।
जब देखौं तब कहि न सकौं कछु, सुस्थिर भए लुभात।
वाणी रूद्ध होत पुनि तबही, सरस रसमयि भूलै बात।।
नेक जु कबहू ओझल होवो, पुनि न कछू सुहात।

'रूप रसिक' यह व्यथा मरम की मरमी ही जान सिरात।।

******

१६.

राग-आसावरी

प्रगटे सम्पत संपति हेतु।
श्री राधा मुख अम्बुज प्रगट्र्यो श्याम रसासव लेत।।
अलिगन नित सरसी मे विलसत युगल परस्पर नित सुख देत।
श्री अलि अवनि अलंकृत कीन्ही तत् सुख सुखिया भाव समेत।।
रमा रमण बनवारी हित जू कुसुम सुहावत श्याम समेत।
नित ही यह सुख रहो दृगन में 'रूप रसिक' रस चाखत लेश।।

*****

१७.

राग-आसावरी

अहो मेरी लाड़ गहेली अलि, जू अवनी अलंकृत कीन्ही।
पद विन्यास हाव भाव युत, सुख दायिनी मुरकि हरि लीन्ही।।
पायल ललित बलित भुज लतिका, सहज सुभाव श्याम गल दीन्ही।
नित्य विहार करहु हिय हुलसहु 'रूप रसिक' आशीषी दीन्हीं।।

*****

१८.

राग-बसन्त

नव निकुन्ज मृदु नव पल्लव युत, अद्भुत शोभित लता वितान।
शोभित मधुमय मल्ली प्रमुदित, रासस्थलि यह सुभग सुठान।।
नाना विहंग मधुर स्वर गावत, लै लै सुन्दर सुभग सुतान।
अलि कुल विमुख कमल तजि धावत, बलि गुन गावत परम सुजान।।
वट श्रृंगार निकेतन वैभव, पुलिन युगल राजत सुख धाम।
मम दृग बसहु अली की संपति, 'रूप रसिक' चाहत विश्राम।।

*****

१६.

राग-हमीर

रस भरि प्यारी डोलत है।
डोलत है नहिं बोलत है, (ये तो) मूँदि मूँदि दृग खोलत है।।
मदमाती चाल सुहावत है, कटि किंकणी नूपुर बाजत है।।
रस पूरित नयन नचावत है, सम्भ्रम है तुमहिं बुलावत है।।
नबि द्रुमतर छिन बिरमावत है, फिर ध्यान मधुर उर लावत है।
'रस रूप' माधुरी दरसत है, उर लाल लिए हिय सरसत है।।

*****

२०.

राग-विलावल

चाल मराल मरकत मणि आँगन, रस भरे दोऊ जन डोलत।
ता पाछे 'अलि' अलिगन सोहत, रस विहार अवलोकत।।
महामहोत्सव जान प्रान पिय, अंचल पट झकझोरत।
विहँसत सरसत रस बरसत अति, नयन सयन अवलोकत।।
'रूप रसिक' रसभीनी बतियाँ, कबहुँक मुरि मुरि बोलत।
श्रवण सुनत अति होत परम सुख हिय आनन्द अतोलत।।

*****

२१.

राग-बिलावल

मधुमय स्निग्ध सुधामयि प्यारी, बात करत इठलात।
आँगन मणिमय इत उत धावत, डरत नहीं सतरात।
अति अद्‌भुत जन्मोत्सव मान्यो, सुनि सुनि हिय हरसात।।
'रूप रसिक' रस सरसत हिय में, आनन्द उर न समात।।

*****

२२.

राग-बिलावल

भू पर प्रगटी 'अली' किशोरी।

भुवन भुवन अति आनन्द बाढ़्यो, महा मोद भरी गोरी।।
श्यामा श्याम आलिंगन दीन्हो, मुदित भई रस बोरी।
'रुप रसिक' रस भीनी बानी, बोलि कह्यो अलि मोरी।।
श्याम कह्यो अलि मोरी।

*****

२३.

राग-बिलावल

यह रस नित प्रति रहो इन नैन।
श्याम सलोनी माधुरी मूरति, प्रियतम को सुख दैन।।
कहत अली बिन लीला नाहीं, मधुरे बोलत बैन।
यह उत्सव सुख देत लेत रहो, मन प्राणन सुख चैन।।

*****

२४.

राग-देशकार

कब हौं ऐसी रहनि रहूँगो।
ब्रज रज छाँड़ि छिनहु न इत उत, रसिकन ढ़रनि ढरूँगा।
युगल रूप उन्मत्त रैन दिन, प्रिय प्रेम उमहुँगो।
"रूप रसिक" हित चित की बातें, काहू सो न कहुँगो।

*****

२५.

राग-जोगकौंस

रूप अनूप भूप यह तेरो। देखत ही मन होत है चेरो।।
चतुर चकोर चन्द्र ज्यों देखे। त्योहिं नयन होत अनमेंखे।।
सरस रूप अँखियन दरसायो। पिय प्यारी मुख सुख सरसायो।।
लपक लेत लपटाय लाल को। कुँज महल सुख सदन ग्वाल को।।
चित्रित करत होत पुनि चित्रित। अधर सुधा के भई पुनि आश्रित।।
लूमि चूमि भुज धरि गहि बैठी। "रूप रसिक" यह बात अनैठी।।
कलरव कुहुक होत अति भारी। तब उठि चले दोऊ कुँजबिहारी।।

*****

२६.

राग-यमन

राग से था हृदय रंजित। प्रेम की थी चाह परिमित।।
नयन थे रस रूप परिचित। मधुर मन थी प्यास पूरित।।
थी मधुर मुसिकान अद्भुत। सर्व अंग था लास्य महाद्भुत।।
थे अमिय रस बैन चुम्बित। हास्य रेखा थी प्रपूरित।।
मिलन था या भ्रमहि सूचित। कह नहिं सकता विमूढ़ित।।
सुखद थी बेला प्रफुल्लित। रूप सुधामय सुखहि वर्षित।।

*****

२७.

दोहा

रचना करन क्यों मो सों कह्यो, मुख जु नाम लै इन्दु।
बिन्दु सुधाधर ना लह्यौ, कहा बरनौ सुख सिन्धु।।

राग-भैरव

रमी रूप प्यारे सरसि जिय भरि अधिक हुलास।
अहो पिया क्यों करत हो नयननि में उपहास।।१
नैन बैन अरु मैन मुरि हिय हुलसहु घन मेलि।
रूप प्यास दृग ना बुझै अहो रसिक रस झेलि।।२
तन मन मति अरु प्राण में तुमहि बसे जिय जान।
पै काढ़न चाहत अबहि रसिक रसीली आन।।३
चाहत हौं मिलिहौं नहीं तुम संग एकहु लेश।
हृदय हृदय छाती फटत पिय बिन कैसो देश।।४
हिय भरि अधिक हुलास, अस जिय परि रही।
सुन्दर मधुर गोपाल लाल हिय हुलसही।।५
गर्व रूप को अति बढ़यो, बढ़्यो हिए को चाव।
लूमि चूमि हिय हुलसहीं मनमथ बाढ़ी दाव।।६
नैननि रस रंजित भए, लहे लाल के नेह।
कौन इन्हे समुझाई है, नित नव नेही येह।।७
अहो लाल लोयन लखों, रत्न अरुण मणि रेख।
नख शिख मुख श्रृंगार मधि, कछु अद्भुत उपमा पेख।।८
निशदिन रूप के लालची, चित-वित रह्यौ एहि ठौर।

सरस 'रूप' प्यासे अजहुँ को, प्यावत मन भर और।।९
पल पल देखत अपल व्है, अजहु पलक लगि जाय।
दुसह दुःख जिय बसि रह्यो, हा आप पलक लगि जाय।।१०
रूप सुधा के सिन्धु में बूढ़त लगै न बार।
पै सूरा संचो सोई जो चाखत रस मझधार।।११
कीर पीर हिय की लखत, नयन सजल अरु दीन।
पिय प्यारी के प्रेम मधि, सदा रहत रस लीन।।१२

*****

२८.

राग - खमाज

तरनिजा तीर अति भीर ग्वारिन अहीर।
लै पीर जिय ज्याय रही नख शिख शरीर।।
मंद, दुति गयंद गति देख हर्षित हिये।
लोक अरु वेद की लाज तोरी।।
चतुर मणिदीप प्रदीप गोकुलेश के।
भुवन त्रय जासु की राजधानी।।
मुग्ध बाला विमुग्ध हरषि धावित चली।
जानि जिय कान्ह जू नयन जल छलकहीं।।
अंग पुलकित भए रीझ उर अंकनि लए।
लाल बलवीर जू विवश व्है चित दए।।
अहो! प्रियतमे प्राण है न्यारो कहाँ।
करत किन रास रस माधुरी महा नरी।

करत पद विन्यास लेत औघर जु तान।
मान कर देत अम्बु लाल गोपाल जी।।
रूप सहचर किशोर और बस बाल के।
लेत मुख तान बन्धान सुरालाप के।।

दोहा

पग पटकन मटकन ललित, लचकत कटि जु सुढार।
नृत्यत चक्राकृति दोऊ, सुरझत नहिं हिय हार।।
नयन सयन रस हुलसिवो नयन नयन ही मान।
नयन नयन ही झुरसिवो विप्रलब्ध ही जान।।

*****

२६.

राग-देसी

कौन सुख श्यामा तुअ नाय लह्यो।
श्याम रहत नित रुचि मुख लीन्हे, सुचि सम्पदा सह्यो।।
अलिगन सौं पूछत हैं नितही, प्यारी नाय कह्यो।
परवस विबस रहत नटनागर तुअ, अधर सुधा रस बह्यो।।
केतिक बार हौं बोलत हारी हो बिहारी।
मान करन स्यामा तुअ सिखयो केंधो टेव तिहारी।।
बलि-बलि बिहँसि चलो मो संग में जोवत बाट पियारी।
अति कोमल विधु बदनी राधा श्रम किन देत हाहारी।।
मेरी मान कान दै प्रियतम रस की रीति ये नाई।

रस की रीति प्रीति करि श्यामा नित तव रुचि उपजाहीं।।

*****

३०.

राग-दरबारी

कैसेक तेरो बदन दुराऊँ।
अंग अंग सों ज्योति छूटि रहि, कैसे ओढ़नि माँहि छिपाऊँ।।
रात अंधेरी तैं हरि लीनी शशि मुख शोभा आभा न्हाऊँ।
अति सुकुमार वदन तुअ अम्बुज बन-बन कैसे तोहि डुलाऊँ।।
सहजहिं प्रियतम आय मिलेंगे लेत रहत नित राधा नाऊँ।
'रसिक रूप' की प्राणन प्यारी कत नहिं मानत हौं बलि जाऊँ।।

*****

३१.

राग-जयजयवन्ती

मद विघूर्णित लोचन तेरे।
मदन मोहन को मन जु हरत तू, इत उत कितहु फिरत न फेरे।
मन्द मधुर मुसिकाय मनोहर, सर साँधत मृग छोना चेरे।।
पिय नंदलाल गोपाल बस ऐसे, ज्यों चातक घन घेरे।
चलत चरन जब मन्थर गति सों, मद गज केतिक हेरे।।
'रूप रसिक' तुअ मुख छवि निरखत, कोटिक शरद चन्द्र गति फेरे।।

३२.

राग-केदार

मन्द मधुर मुसिकाय छबीली।
पोषत प्रीतम को निसि बासर, सरस रसीली गुण गर्वीली।।
नयन नयन मिलि बैन सैन मिलि, तू तो प्रियतम के रस लीनी।
रसिक रूप प्यारी छवि निरखत, लालन होत रहत लव लीनी।।

*****

३३.

राग-बागेश्वरी

मेरी जीवन प्राण सखि मोहि लै चल री।
उन बिन छिन न रहत मन मेरो, विकल होत दिन रैन री।।
हा! हा! करूँ पाँव परूँ तेरे, सुख सम्पति मम तुअ री।
विरह अगनि व्यापो मम तन मन, उन बिन कल छिन नाय री।।
हृदय हृदय वे प्राण प्राण पिय, रूप सुधा सरसाय री।
'रसिक रूप' प्यारी बिनु अलि हे, कैसे मन अपनाऊ री।।

*****

३४.

राग-आसावरी

मुख अंबुज देखूँ जब तेरो। तबहि सिरावत हिय यह मेरो।।

सुनहु प्रिया मम प्राणन प्यारी। सब निशि तुअ छबि देखत जाय री।।
करत प्रतीक्षा पल पल आत। मन अभिलाषा वृथा जात।।
परम प्रसन्न इन्दु मुख तेरो। देखत ही श्रम जात निबेरो।।
'रूप' राशि मम जीवन मूरि। प्रतिपल हौं तुअ पदतल धूरि।।
कहा कहौं मैं हृदय अहलादिन। श्री अंग सुषमा बरनत जाए न।।

*****

३५.

राग-भैरवी

मेरी एक मात्र आराध्या। आराधन साधन की साध्या।।
प्यारी कर पल्लव वीणा जब गह्यो। सत्य कहौं उर धीरज न रह्यो।।
पुनि कर पीक अधर जब दीन्ही। हिय की बात हिये ही चीन्ही।।
नख मणि स्पर्श चहक उठि बोल्यो। अरुण अधर रस तारन तोल्यो।।
बिहसि विहारिन उर भरि लीन्हे। लाल विवस रस मूर्च्छित कीन्हे।।
सहचरि आवत कुँज के द्वार। सुभट उठे दोऊ बाजी हार।।
यह रस रहसि बरनि नहि आवे। रूप रसिक कछु बूड़न चहावे।।

*****

३६.

राग-भैरवी

सखिन मध्य प्यारी करत स्नान।।
अति चिक्कण स्फटिक मणी की, चौकी धरी जु आज।
तापर सुभग आसन दै दीन्हो, राजत लाड़ भरी वृषभान।।
स्वर्ण तपेला उष्णोदक भरि, आनि धर्यो है बान।
तबहि विशाखा गोदी धरिकें, चरण पखारन लगी सुजान।।
अति कोमल अति ही अरुणारे, कमलहु निंदित भए जु आन।
सूक्ष्म वस्त्र अंग में दीन्हो, सकुचत अंग जो प्रगट दिखान।।
इत उत वक्र नयन करि चितवन, मनो दीखत कहुँ रसिक सुजान।
'रुप' छके मोहन दुरि बैठे, सखिन मध्य पोषत निज प्राण।।

*****

३७.

राग-भैरवी

अलि जू हौं तुम्हरी नित दासी।
अनुदित संग रहौं तुम्हरे लगि, हौं तुअ चरन उपासी।।
नाम तिहारो नित्य निरंतर, गावौं 'अलि' अविनाशी।
रूप तिहारो अनुदिन ध्यावौं, सहज सखी बनि जासी।।

*****

३८.

राग-खमाज

आज तो सुहाती 'अलि' बनि ठनि डोलहीं।
अतिही रसीली बाल नैन डोरे लाल लाल,
भई मगन रसाल ग्वाल संग संग डोलही।।
भोरी अति भुराई लिए, चंचल चपल सी हिए,
लालन लगाय लिए उरसि उमंगहीं।।
विहँसि कहत विहारी नागर नव नेह भारी,
नैन सैन बैन उज्यारी हिये हिलोरहीं।।
बैठी तहाँ राजे अति सुन्दर उमंग भरी,
फूलन की कुँज अलि सुख शोभा धाम है।।
नयनन निहारि मृदु मुरि मुसिकात अति,
कुटिल कटाक्ष देख मैन सकबकात है।।
न्यारी ही रही है तहाँ और न संग कोऊ,
लालन ललेहि गाल बलि मन मोद है।।
निरखि भई है ठाड़ी लाय लई विहसि विहारी,
आय गोद बैठारी करि मन भाई चोज है।।

*****

३६.

जयगान

माधुर्य आनन, मधुरानन मुरली रव निसृत
अधर सुधा परिवेष्टित, रव गूंजित कानन
मध्य धावित चपल नूपुर पायल
समलंकृताओ के पीछे-पीछे धावित अनन्त
मधुप मालाओं की जै जै जै।।
नव निकुँज रस पुँज की जै जै।।
सुरभित सौरभ मलयानिल जै जै।।
परम रम्य वृन्दावन जै जै।।
मुग्ध वधू बृज ललना जै जै।।
रासेश्वरी रसराज की जै जै।।
पद्म गन्ध मुखपद्म की जै जै।।
श्याम सुभग पटपीत की जै जै।।
अरुणिम पट नील दुकूल की जै जै।।
समलंकृत पग पायल जै जै।।
रुनझुन नूपुर झनझन जै जै।।
चपल चरण चिन्हित भुवि जै जै।।
गुल्म लता स्पर्शित जै जै।।
अलि झंकृत पथ सुमन की जै जै।।
रूप रसिक रस दृष्टि जै जै।।

परम दव्यि आनन्द की जै जै।।
मो मन मोहन सोहन जै जै।।
प्रतिपल रूप चमत्कृत जै जै।।
नितय अह्लाहदनी ल्हाद जै जै।।
नव नव केलि विलास की जै जै।।
नित नव दूलह दुलहिलि जै जै जै।।
तत् सुख सुखिय सहचरि जै जै।।
लाड़ भरी अनुरागिनि जै जै।।
लाड़ लड़ीले लालन जै जै।।
मंद मंद पग पटकन जै जै।।
मंथर गति गवनी की जै जै।।
हिय पिय धरि निहारन जै जै।।
बंकिम लोचन प्रियतम जै जै।।
दाड़िम दसन हसन मृदु जै जै।।
प्रतिबिम्ब बिम्बधर मोती जै जै।।
कुंचित कच उरझन सुरझन जै।।
वेणी पीठ दीठ पिय जै जै।।
भुव विलास परिहास की जै जै।।
नित नव कौतुक कानन जै जै।।
महामत्त शुककुल कल जै जै।।
शारी प्यारी न्यारी जै जै।।

खग मृग द्रुम बन बेली जै जै।।
सर्वसार श्रृंगार की जै जै।।
मोदन मादन भाव की जै जै।।
कृपा निमज्जित किंकरी जै जै।।
सर्व रसिक पद रेणु जै जै।।

इति

*****   *****

संक्षिप्त परिचय

जन्म	:	२४ अगस्त, १६३५ (भाद्र कृष्ण एकादशी संवत् १६६२) ग्राम - घाँघोली, अलीगढ़
पिता	:	पं. लक्ष्मीनारायण जी शर्मा
माता	:	श्रीमती जावित्री देवी
गुरुदेव	:	पूज्य श्री बालकृष्ण दास जी महाराज
साधना स्थल	:	मदनमोहन मंदिर के निकट स्थित राधा केलिकुँज, वृन्दावन
	:	श्री वेणु विनोद कुँज, वृन्दावन
सत्संग	:	पूज्य श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार
	:	पूज्य श्री राधाबाबा जी
	:	पू. पं. गयाप्रसाद जी महाराज
	:	पूज्य श्री हरिबाबा जी
निकुंज गमन	:	११ सितम्बर, २००१, आश्विन कृष्ण नवमी संवत् २०५८

* 'ये साधारण बालक नहीं हैं। ये तो बाल संत हैं। इनमें संसार का तनिक भी प्रवेश नहीं है। अब तो मैं घनश्याम दास कूँ संत ही मानू हूँ।'

पूज्य पंडित गयाप्रसादजी महाराज, गोवर्द्धन

* 'श्रीकृष्ण ने मुझे बताया है कि यह बालक पूर्वजन्म में पर्याप्त साधना कर चुका है। अब इस जन्म में इसे विशेष साधना करने की आवश्यकता नहीं है।'

'इसका द्वार मुझे सदैव खुला मिलता है और जो वस्तु मैं इसे प्रदान करता हूँ यह उसे ज्यौं का त्यौं ग्रहण कर लेता है।'

पूज्य राधाबाबा, गीतावाटिका, गोरखपुर

* 'ठाकुरजी में गजब का अर्न्यामित्व है इनको भविष्य की घटनाओं का आभास हो जाता है।'

पूज्य बालकृष्ण दास जी महाराज, वृन्दावन

* 'आया तो था मैं ठाकुर घनश्याम को समझाने किन्तु अब स्वयं ही समझकर जा रहा हूँ। इन्होंने अपना रास्ता चुन लिया है। अब ये हमारे आपके दायरे से परे हो गए हैं।'

आ. श्री सुदर्शन सिंह जी 'चक्र'